राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान-प्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डा० पद्मधर पाठक

ग्रन्थाङ्क 141

रसिक गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

मुद्रक

साधना प्रेस एवं पंकज प्रिण्टर्स, जोधपुर

विक्रम संवत् 2039

विषयानुक्रम

* * *

प्रधान-सम्पादकीय

परिश्रम एवं अध्यवसाय से एकत्र इस संकलन ग्रंथ को यदि संकलनकर्त्ता की अन्वेषक साहित्याभिरुचि की संज्ञा दी जाय तो कोई नई बात न होगी। अनेक प्रसिद्ध कवियों एवं आचार्यों की लेखनी का पग-पग में प्रयोग कर उनके साये में आकर कवि गुविन्द ने अपनी रसाभिव्यक्ति क्षमता और काव्य की परख की बीच-बीच में झलक दिखलाई है और जो उनका अपना है वह भी एक जिज्ञासु पाठक के लिए महत्त्व का है, नया है।

जिस प्रकार एक सच्चा भक्त अपने प्रिय विषय में रम जाता है, प्रायः उसी तन्मयता से गुविन्दजी ने रीतिकालीन काव्य के शृङ्गारिक चमत्कारों, रसों के निरूपण, नायक-नायिका-भेद आदि को लेकर व्रजभूमि की झीनी चदरिया उघाड़ी है।

राजस्थान के भूतपूर्व मत्स्य प्रदेश (अलवर, भरतपुर, डीग आदि) के हिन्दी साहित्य पर अपनी स्वतंत्र पुस्तक तैयार करते समय विद्वान् सम्पादक डा० मोतीलाल गुप्त ने गुविन्दजी को अपने पृथक् अध्ययन का विषय बनाकर आगे के लिए छोड़ रखा था। उनका यह निश्चय पूरा होने पर प्रतिष्ठान और डा० गुप्त दोनों को ही संतोष का अनुभव होना स्वाभाविक है। ग्रंथकार ने श्री वृन्दावन-धाम में निवास कर इसकी रचना की है और इसके मूल्यांकन एवं रसास्वादन का रोचक भार डा० गुप्त ने वृन्दावन में ही बैठकर उठाया है।

व्रजभाषा के इस काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के अतिरिक्त गुविन्द कवि की अन्य रचनाओं का भी डा० गुप्त ने अपनी भूमिका में उल्लेख कर शोधार्थियों का ध्यान आकर्षित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण, प्रूफ-शोधन आदि व्यवस्था में श्री गिरधरवल्लभ दाधीच कनिष्ठ तकनीकी सहायक का पर्याप्त परिश्रम सराहनीय है। इनकी ही देख-रेख में श्रीमती गणेशी आत्रेय पुस्तकालय सहायक ने कवि-नामानुक्रमणिका तैयार की है। एतदर्थ ये दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

जोधपुर
५-१-८३

पद्मधर पाठक
निदेशक

भूमिका

गोविंदानंदघन का प्रथम-दर्शन पूर्वी राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों का अनुशीलन करते समय हुआ। इस ग्रंथ में मेरी विशेष रुचि के कई कारण थे—

(१) ब्रजभाषा का काव्यशास्त्रीय ग्रथ।

(२) जयपुर के गोविंद कवि द्वारा लिखित। गोविंद कवि खंडेलवाल वैश्य वर्ग में नाटानी-गोत्रोत्पन्न विशिष्ट व्यक्ति थे। मैं भी वैश्य वर्ग के इसी वर्ग में उत्पन्न हुआ।

(३) वृन्दावन से संपर्क। मथुरा-वृन्दावन भरतपुर के अति निकट है। यहां आना-जाना प्रायः होता रहा है और यहां के कवियों में रुचि होना स्वाभाविक है।

(४) सलेमपुर के श्रीजी महाराज तथा वृन्दावन के अधिकारी श्री-वल्लभशरण जी से निकट परिचय।

(५) काव्य-शास्त्र के निरूपण में विविध ब्रजभाषा-कवियों के उद्धरण।

(६) कठिन प्रसंगों का सरस और स्पष्ट विवेचन। पद्य के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार गद्य का भी प्रयोग।

तब मैं 'मत्स्य प्रदेश' के काव्य-ग्रंथों का अध्ययन कर रहा था अतः प्रासंगिक रूप में ही इस ग्रंथ की चर्चा की जा सकी। दूसरी बात यह भी थी कि मेरा आलोच्यकाल ईस्वी सन् १७०० से १९०० तक था और यह कृति यद्यपि इसी काल में आती है, परन्तु इसका निर्माण-स्थल मत्स्य प्रदेश न होकर वृन्दावन है अतः उस स्थान पर इस ग्रंथ का विशेष विवेचन उपयुक्त नहीं समझा गया। इस ग्रंथ को जब विस्तार के साथ देखा गया तो विदित हुआ कि यह एक महत्वपूर्ण रीतिग्रंथ है और इसके कर्त्ता निश्चय ही आचार्य की महत्वपूर्ण पदवी सुशोभित करते हैं और इसीलिए इसका सम्यक् निरूपण आवश्यक समझा गया।

कवि-परिचय

परिचय से संबंधित कुछ पंक्तियां सन् १९६० में ब्रिटिश म्यूज़ियम

लंदन में लिखी गई थी क्योंकि वहीं इस कवि के कई अप्रकाशित और अप्रच-लित ग्रंथों का पता लगा था। उस साक्ष्य के आधार पर कवि की जीवन सम्बन्धी सामग्री के चयन में जहां 'गोविंदानंदघन' का आधार लिया गया है वहां कवि के अन्य ग्रंथ भी ध्यान में रखे गये हैं। शोध करने पर कुछ सामग्री बाहरी स्रोतों से भी एकत्र की गई जिसका स्थान-स्थान पर उल्लेख किया गया है। गोविंद कवि के बारे में बल्देव उपाध्याय ने भी कुछ अच्छी सामग्री दी है और उसका उपयोग भी धन्यवाद सहित किया जा रहा है।

मत्स्य प्रदेश के हस्तलिखित ग्रंथ की खोज करते समय मुझे गोविंद कवि रचित 'गोविंदानंदघन' नामक रीति-ग्रंथ की अनेक प्रतियां मिलीं—भरतपुर, अलवर दोनों जगह के पुस्तकालयों में इस ग्रंथ की अनेक प्रतियां हैं, काशी नागरी प्रचारणी सभा तथा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में भी इसकी प्रतियां हैं और जब मैं लंदन में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कर रहा था तो गोविंद कवि के अन्य ग्रंथों के साथ 'गोविंदानंदघन' की भी प्रतियां मिलीं। इस सब का अभिप्राय यह हुआ कि कवि का यह रीति-ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित था और इसके आधार पर निश्चयपूर्वक गोविंद कवि को आचार्यों की श्रेणी में बिठाया जा सकता है।

इस कवि का नाम 'रसिक गोविंद' और इनकी पुस्तक (रीतिग्रन्थ संबंधी) का नाम 'रसिक गोविंदानंदघन' लिखा गया है। यह बात भ्रामक है। कुछ लोग यह भी कहते है कि 'रसिक गोविंद' और 'गोविंदानंदघन' दो अलग-अलग पुस्तकें हैं। 'रसिक गोविंद' नाम की पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई है। 'गोविंदानंदघन' की अनेक प्रतियां देखी है। इन प्रतियों में पुस्तक का नाम स्पष्ट रूप से 'गुविंदानंदघन' लिखा गया है, 'रसिक गुविंदानंदघन' नहीं। पंडित रामचंद्र शुक्ल, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डाक्टर नगेंद्र आदि ने भी 'रसिक' ही लिखा है। मेरे कथन के प्रमाण में नीचे लिखी पंक्तियां देखिए—

(१) 'रच्यौ गुविंदानंदघन वृंदावन रसवंत'
(२) 'यह गुविंदानंदघन नाम धरच्यौ इहि हेत'
(३) 'रच्यौ गुविंदानंदघन रसिक गुविंद विचारि'

इस 'रसिक गुविंद' से भ्रम उत्पन्न होता है। कवि अपने को रसिक मानते थे उनका सम्प्रदाय—सर्वेश्वर संप्रदाय ही ऐसा था, इसका अभिप्राय

यह नहीं कि हम उनके नाम में भी उनके इस गुण की धारणा को शामिल कर दें। उन्होंने अपना नाम भी स्पष्ट रूप से 'गोविंद' या (गुबिंद) बताया है—

(१) 'रसिक, भक्त, लेखक **गुविंद** कवि कोक काव्य विलसैया'
(२) सुकवि **गुविंदादिकनि** कृत यह आनंद समूह, यातै नाम आनंदघन धरचौ रहत प्रायूह
(३) मित्र '**गुविंद**' को चित्र चुरावे
(४) वारी वैसवारी उजियारी श्री **गुविंद** कहें।

सच तो यह है कि पुस्तक का नाम 'आनंदघन' और कवि का नाम 'गोविंद' है। दोनों को मिलाकर पुस्तक का नाम 'गोविंदानंदघन' हुआ। हस्तलिखित पुस्तकों पर भी 'श्री गोविंदानंदघन' नाम लिखा हुआ है। तीस-पेंतीस वर्ष पूर्व 'रसिक गोविंद और उनकी कविता' नाम से एक पुस्तक श्री बटुक नाथ शर्मा तथा श्री बल्देव उपाध्याय लिखित बलिया हिंदी प्रचारिणी सभा से सं० १९८३ में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक में कवि का आलोचनात्मक परिचय कराया गया है। यदि आलोचनात्मक नहीं तो कुछ रचनाओं के नाम इस पुस्तक में अवश्य मिलते हैं।

शिवसिंह सरोज. ग्रियर्सन के वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव हिन्दुस्तान तथा मिश्र बंधु विनोद तीनों में इनका नाम आया है। हिंदी-साहित्य के प्रत्येक इतिहास में इनके नाम का उल्लेख है, परन्तु विस्तृत परिचय नहीं दिया गया है। इनकी कृतियों पर काम करने की आवश्यकता है।

इनके ग्रन्थों की अनेक प्रतियां स्थान-स्थान पर बिखरी पड़ी हैं। ब्यावर निवासी बाबू रामनारायण के यहां इनके अनेक ग्रंथों के होने की बात कही जाती है। मिश्र बंधु विनोद में नं० ११३९ पर इनके ७ ग्रंथों की बात कही गई है। इनके धार्मिक विचार तो नितान्त स्पष्ट हैं। स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय में यह शिष्य थे, किन्तु अनेक स्थलों पर हितहरिवंश के प्रति भी इनकी आस्था है। सर्वेश्वर सम्प्रदाय का नाम इनके ग्रंथों में अनेक स्थानों पर आता है। वृन्दावन के विभिन्न घरानों में भी इनके कई ग्रंथ पाये गये हैं। नीचे लिखी कुछ पंक्तियां देखिए—

(१) वैष्णव रसिक
(२) श्री सर्वेश्वर सरन गुरु वास वृंदावनधाम (रसिक गोविंद)

(३) जै जै श्री राधिका सर्वेश्वर श्री हंस
(४) श्री परमउद्धार परमेश्वर सर्वेश्वर सर्वोपरि विराजमान तिनकी परंपरा यह। हंस वंस सनकादिक (लछिमन चंद्रिग) नारद निम्बादित्य सम्प्रदाय के सिरोमनि आचारज श्री हरिव्यास देवजू महाराज की गादी। श्री परसराम देवजी। श्री हरिवंशदेवजी। श्री नारायनदेवजी। श्री वृंदावनदेवजी। श्री गोविंददेवजी। श्री गोविंद सरन देवजी। श्री सरवेस्वर सरणदेवजी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र वैष्णव रसिक गोविंद कहत।

(५) ऐसे सर्वेसर सरन सुखकारी गुरुदेवदं। निम्बार्क-सरणदेवजी

इनकी कई पुस्तकों के नाम मिलते हैं—

(१) **अष्ट देश भाषा** –आठ भिन्न भाषाओं में राधाकृष्ण के शृंगार का वर्णन पंजाबी, खड़ी, पूर्वी, रेखता आदि में पद्य सं० ७५।

उदाहरण—

(१) **पंजाबी**

बोलियां मुक्ख लगावदीं लाल गुलाल अबीर उड़ावदी झोलियां।
खोलियां गोलियां तालिया देंदां करेदों गली विच बोलियां ढोलियां।
घोलियां किसी न साउदी जिंदि उसी से काटी दिल प्रीति कलोलियां।
चोलियां रंग गुविंद भिजावदां गावदां रंग रंगीलियां होलियां॥

(२) **पूर्वी** –

रंग भरि भरि भिजवई मोरि अंगिया, दुहु कर पिहिस कनक पिचकरवा।
हम सन ठनगन करत डरत नहिं मुखसन लगवत अतर अगरवा॥
अस कस वसियत सुनु ननदी हो फगुन के दिन एहिं गोकल नगरवा।
मोहिं तन तकत वसत प्रति मुसिकत रसिक गुविंद अभिराम मंगरवा॥

(२) **पिंगल ग्रन्थ**—छंद शास्त्र संबंधी

(३) समय प्रबंध—भिन्न भिन्न ऋतुओं में राधा कृष्ण की जीवन चर्या (८४ छंद)

(४) रसिक गोविंद—

अलंकार ग्रन्थ—इसमें लक्षण उदाहरण दोनों मिलते हैं। इसे गोविंदानंदघन से भिन्न ग्रंथ माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है, यह वृद्धावस्था का ग्रथ है। यह ग्रंथ अभी मेरे देखने में नहीं आया। गुविदानंदघन का समय १८५८ विक्रमी है, किन्तु 'रसिक गुविंद का वि०सं०१८९० नीचे लिखें अनुसार—

नभ निधि वसु ससि अब्द (१८९०) रवि दिन पंचमी बसन्त।

इसी बसंत पंचमी को 'गोविंदानंदघन' भी समाप्त हुआ था। 'रसिक-गोविंद' इस प्रकार काफी महत्वपूर्ण ग्रन्थ होना चाहिए। क्या यह संभव नहीं कि २२ वर्ष पूर्व जिन सिद्धान्तों को लेकर 'गोविंदानंदघन' की रचना की गई थी उसमें परिवर्तन, परिशोधन आदि करने के उपरान्त इसका नाम 'रसिक गोविंद' प्रचलित हुआ हो। एक बात और है कि कभी-कभी ग्रंथ का परिचय उसके कर्त्ता के नाम से भी होता है। यह प्रवृत्ति भारत तथा विदेश दोनों में अमर रही है। 'शेक्सपियर' तथा 'पाणिनि' पढना अति प्रचलित है। इसी प्रकार 'गोविंदानंदघन' अपने रचयिता रसिक गोविन्द के नाम से कालान्तर में चल निकला हो। किन्तु, इसके निर्माण का समय जो अलग दिया गया है वह एक वाधा उत्पन्न करता है। आज तक खंडेलवाल वैश्य जाति में वसंत पंचमी बहुत ही महत्वपूर्ण दिन समझा जाता है। कम से कम तीन ग्रन्थ खंडेलवाल वैश्य कवियों के लिखे इस दिन समाप्त हुए।

(१) 'रसिक गोविंद' नभ निधि वसु ससि अब्द(१८९०)रवि दिन पंचमी बसन्त
(२) 'गोविन्दानंदघन' वसु सर वसु ससि अब्द(१८५८)रवि दिन पंचमी बसन्त
(३) 'विचित्ररामायन' त्रय नभ नव ससि(१९०३)समय में माघ पंचमी खेत।

अत: उनके नाटानी वंशोत्पन्न खंडेलवाल वैश्य होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं। और भी कारण—

(१) जयपुर निवासी होना जहां खंडेलवाल वैश्यों का आधिक्य है
(२) वालमुकुन्द के भाई होना—ये वालमुकुन्द खंडेलवाल वैश्य जयपुर राज्य में उच्च अधिकारी थे।

(३) नाटानी गोत्रीय खंडेलवाल वैश्यों के अस्तित्व अब भी विद्यमान हैं। नाटानियों का रास्ता जयपुर में अभी भी एक प्रमुख मार्ग है। वहां नाटानियों की हवेली भी है।

(४) नाटानी शब्द का नट' से कोई संबंध न होना। 'नटानी' नाटानी का ही पर्याय है। छन्द की दृष्टि से मात्रा कम है।

(५) **रामायण सूचनिका**

३३ दोहा ककारादि क्रम से रामायण की संक्षिप्त कथा-यह १८५८ से पहले की रचना प्रतीत होती है क्योंकि इसके कई दोहे 'गोविंदानंदघन' में प्रयुक्त हुए हैं—

उदाहरण—मंगलाचरण के दो दोहे —

अति उदार सुखसार सुभ, राजत सदा अभेव।
अमल चरण तारन तरन, जय जय श्री गुरुदेव ॥१॥

श्री रघुवर महाराज को, रस जस परम प्रकास।
जथा वुद्धि वसत करत, रसिक गोविंद निज दास ॥२॥

'क' 'ख' क्रम से **रामायण** कथा –

क– कृपा सिंधु पर ब्रह्म प्रभु, अजरअविनासी स्याम।
सुर हित कर भुव आ रहा, प्रगटे रघुकुल राम ॥३॥

ख– खेलत नृप दसरथ सदन, लखन भरत रघुवीर।
वाल चरित लखि मातु वलि, वारत भूषण चीर ॥४॥

ग— गोर श्याम गोरी जुगल, रूप अनूप सुजान।
चढ़त नन्वावत चपल हय, हाथ लिये धनु-वाण ॥५॥

स— स्वर्ग सिंहासन छत्र जुत, सोभित सीता-राम।
लपन भरत ढोरत चंवर, वरषि सुमन सुर वाम ॥३०॥

ह— हृदय ध्यान धरि है यहै, ते धनि धन्नि विसेस।
तीन लोक महं सुख भयो, राजत राम नरेस ॥३१॥

उपसंहार –

इहि बिधि प्रभु कीरत सदा, निगम अगम कहि नेति
पढत सुनत गावत कहत, मन वांछित फलदेत ।।३२।।
उग्र सेस पा रन लहे, राम चरित अति गूढ़ ।
इक रसना क्यों कहि सके, रसिक गोविंद अति कूट ।।३३।।

(६) कलिजुग रासो –

१६ कवित्तों द्वारा कलियुग के दुष्प्रभाव का अनुभवपूर्ण वर्णन ये कवित्त वृंदावन में सगृहीत ह० लि० प्र० में भी लिखे हुए मिले । मेरे द्वारा स्वयं अवलोकित किए गये । प्रत्येक कवित्त के चौथे चरण की पंक्ति एक ही है ।

कीजिये सहाय जु कृपाल श्री गुविन्द लाल,
कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है ।

दो कवित्त देखिए—(चित्रण बहुत स्पष्ट है और कवि की गहरी पेंठ को बताता है)

(१) राजनि की नीत गई, मित्रन की प्रीति गई,
नारिन की रति गई जार जिय भायौ है ।
शिष्यन को भाव गयो, पंचनि को न्याव गयो,
सांच को प्रभाव गयौ झूंठ ही सुहायो है ।
मेघनि की वृष्टि गई, भूमि सुतौ नष्टि गई,
सृष्टि में सकल विपरीत दरसायौ है ।
कीजिए सहाय जु कृपाल श्री गुविंद लाल,
कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है ।।

(२) मुलक इमानों नाहीं भले को जमानों नाहीं,
धरम को थानो अधरम ने उठायो है ।
छमा दया सत्य शील संतोषादिक दूर दुरे,
काम क्रोध लोभ मोह मद सरसायो है ।।

चोर ठग अधिक असाधु भये ठोर ठोर,
साधुन नें ऐसे में अपनपो छुपायो है ।
कीजिए सहाय० —...........

का०ना०प्र० सभा द्वारा प्रस्तुत ह०लि०ग्र० की खोज के अनुसार इसका रचनाकाल १८६५ वि० निर्धारित किया गया है। यह ग्रन्थ जो प्राप्त हुवा, है स्वयं ग्रन्थकार का लिखा प्रतीत होता। है । ग्रन्थ के अंत में लिखा है-
लेखक स्वयं कविराज : (?)

(७) **युगल रस माधुरी**-विचित्र पुस्तक है । इसमें प्राकृतिक छटा-वर्णन तथा रास लीला का सुन्दर व अनूठा चित्रण है । काव्य की दृष्टि से उत्तम कोटि की रचना है । बहराइच के श्री माधवदास द्वारा १९७२ वि० में प्रकाशित भी हो चुकी है । १६ पृष्ठ की इस पुस्तक का मुद्रण बालार्क मुद्रणालय द्वारा हुआ । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) अरुन नील सित पीत कमल कुल फले कूलनि ।
जनु वन पहिरे रंग रंग के सुरंग दुकूलनि ।।

इन्दीवर कल्हार कोक नद पद्मनि ओभा ।
मनु जमुना करि द्रग अनेक निरखति वन सोभा ।।९।।

तिन मधि झरत पराग प्रभा लखि दृष्टि नहारति ।
निज घर की निधि रमा रीझि जनु वन पर वारति ।।१०।।

सरस सुगंध पराग छके मधु मधुप गुंजारत ।
मनु सुषमा लषि रीझि परस्पर सुजस उचारत ।।११।।

पुलित पवित्र विचित्र चित्र चित्रित जहां अवनी ।
रचित कनक मनि खचित लसत अति कोमल कमनी ।।१२।।

सुघर घाट वहुरंग छवीली छतरी सोहैं ।
कुसुम भार झुकि लता परसि जल मन को मोहैं ।।१३।।

जल में छांही झलमलाति प्रतिविम्वित सरसें ।
जल के भ्रमर तरंग रंग रंजित के दरसें ।।१४।।

तट पे ताल तमाल-साल गहवर गरु छाये ।
सभा काज ऋतु-राज वितान यनहु तनवाये ।।१५।।

(ब) दोउ तन दर्पण अंग अंग प्रतिबिम्बित सरसें ।
दुगुन तिगुन चौगुन अनेक गुन भूषन दरसें ।।

अंग संग विहरतु कुंज विहारति कुंज विहारी ।
दामिनि घन रति काम कनक मनि छबि पर वारी ।।

जावक रंग सुरंग अरुण, महमृद पिय पग तल ।
प्रिय हिय को अनुराग लग्यो, जनु प्रणवत पल पल ।।

(स) ऊखि पियूष मयूष आदि जग जिती मिठाई ।
ते सब नीरस यहै मधुर-रस सरस निकाई ।।
स्वर्ग सुधारस पिये छीन तप भुव पर परई ।
प्रेम सुधानिधि महामधुर कोइ पार न पाहे ।
अलप मीन मन मोर ताहि की हे विधि अवगाहे ।
जलधर धार अनेक एक चातक किमि पीवे ।
कह जलवन मुख परे सु ले सुख पावै नोवे ।

(८) **लछमनि चंद्रिका**—यह एक लक्षण ग्रन्थ है। इसकी चर्चा ना०प्र० की खोज रिपोर्ट में भी नहीं आती। विनोदकारों ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि छोटा ग्रन्थ गोविंदानंदघन की सूचनिका है। गोविंदानंदघन उदाहरणों के कारण बहुत बड़ा हो गया है। संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करने के लिए 'चन्द्रिका' का आयोजन किया गया। इस कल्पना की पुष्टि में कवि स्वयं कहता है -

रसिक गुविन्दानन्दघन रच्यौ ग्रन्थ श्रीधाम ।
ताकी लछिमन चन्द्रिका 'सूचनिका' अभिराम ।।

इससे ग्रन्थ का नाम 'रसिक गुविंदानद घन' भी लिया जा सकता है। अन्यथा रसिक शब्द यहां निरर्थक है। 'रसिक' शब्द को कवि के लिए प्रयुक्त अवश्य कहा जा सकता है। 'लछिमन चन्द्रिका' निश्चित रूप से सूचनिका है। यह ग्रन्थ क्यों लिखा गया इसका कारण भी दिया हुआ है—

कान्यकुब्ज जगनाथ सुत **लछिमन** लछिमन रूप ।
ना हित 'लछिमन चन्द्रिका' रची गुविंद अनूप ।।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणोत्पन्न जगन्नाथ के पुत्र 'लछिमन' के हितार्थ स्वयं कवि ने इस चन्द्रिका का निर्माण किया। ये लछिमन कौन है इसका पता केवल जाति और पिता के रूप में ही लगता है। आश्रयदाता होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि गोविंद दरबारी कवि नहीं थे, राधा-माधव के परम भक्त थे। संभवतः वृन्दावन में भगवद्‌भक्ति करते कोई जगन्नाथ जी रहे होंगे उनके पुत्र को काव्यशास्त्र का ज्ञान कराने हेतु इस चन्द्रिका की रचना हुई हो।

नीचे कुछ और सूचना मिल रही है—

काशी मांहि सुभाइ तेहि पुनि वृंदावन आय।
रामचंद्र के व्याह में लिखि तेहि दई पठाय॥

लिपित श्री वृंदावनें। लेखकः स्वयं कविराज। मिती ज्येष्ठ शुक्ल १ भोम सं० १८८६। 'गोविंदानंदघन' के २८ वर्ष पश्चात् यह सूचनिका लिखी गई। इसका प्रचार निश्चय रूप से बहुत बढ़ गया होगा। कवि काशी गए, परिचय हुआ, वहां से वृन्दावन लौटे और किन्हीं रामचन्द्र के विवाह-अवसर पर लछिमन के हितार्थ लिखकर यह सूचनिका भेज दी गई। ऐसा विदित होता है कि कवि ने काफी अवस्था पाई क्योंकि गुविंदानंदघन भी एक प्रौढ़ रचना है। यह वि.सं. १८५८ में लिखी गई, सूचनिका वि. सं. १८८६ में और रसिगोविंद वि.सं.१८९० में। यदि 'घन' लिखने के समय कवि ५० वर्ष के भी थे तक ८२ वर्ष तक उनका जीवित रहना तो सिद्ध ही होता है।

(६) **गोविंदानंद घन**— इनका प्रधान ग्रन्थ है। इसकी रचना १८५८ वि० में हुई। इस की पत्र संख्या काफी है और बहुत-सी ह०लि० प्रतियां पाई जाती हैं। इस पुस्तक में चार प्रबंध है—

(१) रस वर्णन (रस, भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक) प्रथम ग्रंथ २८५ छंद।
(२) नायक नायिका भेद (द्वितीय अनुबंध) २४८ छंद।
(३) काव्य दोष विचार (दूषण उल्लास निरूपण) तृतीय अनुबंध ३५ छंद।
(४) गुण-अलंकार (चतुर्थ अनुबंध) ८७८ छंद।

1. यह कृति श्रीजी के मन्दिर वृन्दावन में विद्यमान है। इसमें और भी कई कृतियां शामिल हैं।

इस ग्रन्थ में उदाहरण-रूप स्वरचित छंद ही नहीं अन्य कवियों के छंद भी दिए गए हैं। मीमांसा को अधिक स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी उपयोग किया गया है। कहीं कहीं तो प्रश्नोत्तर के रूप में विवेचन बहुत ही साफ हो जाता है। विषय-प्रतिपादन में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है। 'रस-निरूपण' प्रकरण का एक प्रसंग देखिए—

अन्य रस निरूपणं

अन्य ज्ञान रहित जो आनंद, सो रस।

प्रश्न–अन्य ज्ञान रहित आनंद तो निद्रा हू है।
उत्तर–निद्रा जड़ है यह चैतन्य है।

भरत आचारज सूत्रकार को मत—

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संजोगं तें प्रकट होय, सो रस।

मिलाइए—'विबावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'

अथ काव्यप्रकास को मत

कारण कारज सहायक है जे लोक में इन ही को नाट्य में, काव्य में विभाव, अनुभाव संचारी भाव संज्ञा है। इनके संयोग तें प्रकट होय जो स्थायी भाव, सो रस।

अथ साहित्य दर्पण को मत—

सोरठा— सत्व विशुद्ध अभंग, स्वप्रकास आनंदचित।
अन्य ज्ञान नहिं संग, ब्रह्मास्वाद सहोदरसु॥

मिलाइए– सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।

साहित्य दर्पण—तृ०परि०२

अथ अभिनवगुप्त पादाचार्ज को तत्व लक्षण—

रसिकनि के चित्त में प्रमुदादि कारण रूप करि कें ।। वासना–रूप करि कें स्थिति ।। नाट्य के काव्य कें विषैं विभाव, अनुभाव, संचारीभाव साधारणता करि कें प्रसिद्ध ।

अलौकिक ।। जैसे निकरि कें प्रगट कीनौं हुवौ ।। मेरे शत्रु के उदासीन के मेरे नहीं शत्रु के नहीं उदासोन के नहीं ।। या ही तें साधारण ।। जहां स्वीकार परिहार नहीं तो साधारण ।। साधारण उपाय बलि करि कें ततछिन उतपत्ति भयौ । आनन्द स्वरूप । विषयोत्तर रहित । स्व प्रकास अपर्मित जो भाव । स्व स्वरूप की सी नांही । न्यारौ नहीं तौ हू जीव ने विषय कीनौ हुवौ । विभावादिक की स्थिति जा को जीवित आनंद वृत्ति जाके प्राण । प्रयान कर सा याय्र करि कें अनुभव कीने हुवौ अगारीं फुरत सौ । हृदय में धरत सौ । अंगिनी को आलिगति सो । और ज्ञान को छिपावत सौ । परब्रह्म अस्वाद को तजावत सो । अलौकिक चमत्कार करे जो इत्यादि स्थायीभाव, सो रस ।।

सो नव विधि —

प्रश्न— सांति कछु कैसे ।
उत्तर—सांति काव्य में कहियत नाट्य में नाहीं, याते ।

स्पष्ट होता है कि कवि ने ऊपर लिखी सभी काव्य-शास्त्र की पुस्तकों का गंभीर अध्ययन, मनन और अनुशीलन किया था । भरत, मम्मट, विश्वनाथ, अभिनव गुप्त आदि चोटी के आचार्यों के विचार देते हुए रस का निरूपण किया गया है । ये पुस्तकें सर्वदा से साहित्य-क्षेत्र में प्रामाणिक मानी जाती रही है । स्थल-स्थल पर कठिन प्रश्नोत्तरों के रूप में भी समझा गया है । काव्य-शास्त्र का ज्ञान कराने के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है ।

सुनी सुनाई बातों के अतिरिक्त इन्होंने अपनी बुद्धि का भी सफल प्रयोग किया है । कहीं कहीं मत प्रतिपादन हेतु विचित्र उक्तियां भी दी है । शृंगार के रस राजकत्व का प्रतिपादन ग्रन्थकार इन शब्दों में करता है—

शृंगार रस लक्षणं—

"शृंग 'कहिये' मुप्यता" और 'कहिए' 'प्राप्ति' मुप्यता प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि में होइ—सो शृंगार ।

सो दुविध - संयोग, वियोग —इसी प्रकार से

अन्य संजोग लक्षणं—

विलासी जाई अवलंव्य करिकें परसपर सेवन कौं, सो संजोग। नाइका नायक परसपर आलंबन। चन्द्रचंदन कुहू सब्दादि उद्दीपन। भ्रू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव। आलस, चिंता, लज्जा, निद्रा, उत्कंठा हर्षादिक संचारी भाव। रति स्थायी भाव। स्याम वर्ण। श्री कृष्णदेवता।

सवैया—

सरवीन के आछे अलापन तें उह कुंज में क्यों हू गई सुष दैंन।
विलोक पिया रसिया को नई दुलही सु गई भय चक्रत नैंन॥
लष्पो पुनि त्यौं अपने तन कों अति गाढे गुविंद रह्यौ रस तैंन।
विलजाती हे केतवे रस कूजित कूजन को लगी कोमल दैंन॥

इहां नायका विषायालंबन, कुंज उद्दीपन—रति कूजित अनुभाव-लज्जा त्रास संचारी भाव —रति—स्थायीभाव।

इनके अतिरिक्त कवि ने आनन्दघन, आलम, देव, कान्ह, कालिदास, काशीराम, दलपति, कृष्ण लाल, केशव, गिरिधर, गंग, चन्द्र, तुलसी, देवीदास, नरोत्तम, ध्रुवराम, नागरीदास, नाथ, निवाज, नन्ददास, प्रह्लाद, ब्रह्म, भूधर, मतिराम, मुकुन्द, मोतीराम, रसखान, लाल, वृंद, बेनीजू, श्रीपति, सूर, सेनापति, सोमनाथ, सोभनाथ, हरिराम, घनस्याम, 'कवित्त कोई कौ' आदि के उदाहरण देकर अपने भाव को स्पष्ट किया है। यह ग्रंथ वास्तव में विलक्षण है क्योंकि इतना सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण समाधान तथा तुलनात्मक विश्लेषण जिसमें संस्कृत कवियों का आचार्यत्व और हिंदी कवियों का कवित्व एक ही स्थान पर मिश्रित हो, अन्यत्र मिलना असंभव है। तभी तो कवि ने कहा है इस ग्रन्थ का अधिकारी वही है जो—

कोक, काव्य, भाषा, मिथुन, कवि, पंडित जो होय।
जिज्ञास, हरिजन, रसिक, अधिकारी है सोइ॥

यह पुस्तक इस बात को सर्वथा प्रमाणित कर देती है कि गोविंद कवि प्रथम कोटि के आचार्य थे। इस पुस्तक में विस्तार काव्य वर्णन की स्पष्टता, काव्य-शास्त्र परिचय, काव्य के विभिन्न अंगों की विवेचनात्मक प्रणाली, मौलिकता आदि इनके आचार्यत्व की घोषणा कर रहे हैं। इनमें छिछोरापन या उस समय की सामान्य प्रवृत्ति का आभास नहीं मिलता विवेचन में स्पष्टवादिता इनका प्रमुख गुण है। दोनों का उदाहरण देते समय प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवियों के काव्य में भी दोष बताये हैं। इनकी रचना केवल शृंगार के लिये ही नहीं होती वरन् उसके दो उद्देश्य देखे जाते हैं—

(१) राधा-कृष्ण के शृंगार द्वारा इनके सम्प्रदाय से संबंधित साहित्य की रचना जिसमें माधुर्य की प्रधानता है।
(२) रस के प्रसंग में उपयुक्त उदाहरणों द्वारा शृंगार के विषय-प्रतिपादन।

इनके निरूपण का आधार प्रचीन संस्कृत-ग्रन्थ हैं और ये मम्मट से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। उदाहरण के रूप में अनेक संस्कृत के श्लोक के सुन्दर हिंदी अनुवाद भी किए हैं। विश्वनाथ के श्लोक का एक अनुवाद देखें।

मूल श्लोक लताकुञ्जं गुञ्जन् मद्‌वलितपुञ्जं चपलयन्।
समालिगन्नगं द्रुततरमनंगं प्रवलयन्।
मरुन्मन्दं मंदं दलितमरविंदं तरलयन्।
रजो वृन्दं विन्दन् किरति मकरंदं दिशि दिशि ॥

सोमनाथ का भाषानुवाद —

करि कुंज लतानि की गुंजित मनु अमीन के पुंज नचावत है।
अंग अंग अलिगी, उतंग अतंग गुविन्द की सो सरसावतु है ॥
विकसे वन कंजनि सो मिलिके रज रंजित है चलि आवतु है।
यह मन्द समीर चहूं दिसि वृन्द सुगन्धिनि के वरसावतु है ॥

इनकी भावुकता सर्वत्र प्रकाशित है। इनका संप्रदाय ही ऐसा है जिसमें भावुकता को सर्वोपरि स्थान है।

इस प्रकार कवि का व्यक्तित्व वहुत ही महत्वपूर्ण है। ये जहां उच्च-कोटि के भक्त हैं वहां उत्तम कोटि के कवि भी और काव्य-क्षेत्र में आचार्यत्व तथा कवित्व दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। विविध भाषाओं के ज्ञाता ये कवि अपने काव्य द्वारा उच्च स्थान के अधिकारी हैं। यह खेद का विषय है कि इनका पठन पाठन अभी नहीं हो पाया। शुद्ध काव्य की दृष्टि से 'युगल रस माधुरी' वहुत ही सुन्दर कृति है जिसमें वाह्य और मानवी प्रकृति के सुन्दर चित्रण से युक्त कवि की भक्तिभाव विभूषित भाव-प्रवणता भी है। पढ़ने उपरान्त तथा पढ़ते समय भी ऐसा विदित होने लगता है जैसे चारों ओर नव जीवन संचरित करने वाले अमृत की वृष्टि हो रही हो-इतनी गति, लय, संगीत और माधुर्ययुक्त कृति है यह। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से पिंगल छंद, 'रसिक गोविंद' गोविंदानन्दघन, ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें कोई भी विषय छूटने नहीं पाया। छंद, अलंकार, नायक नायिका भेद, गुण, दोष, सभी कुछ का विस्तृत विवेचन है। प्रमुखतः परमभक्त थे, किन्तु आचार्यत्व की दृष्टि से ये उससे भी वढ़कर हैं। इतने उच्च कोटि के भक्त होते हुए इनकी यह 'रीति ग्रन्थ माला' इनके गम्भीर अध्ययन और अनूठी सूक्ष्म बुद्धि का प्रमाण है। विविध भाषाओं का दर्शन इनकी 'अष्ट देश भाषा' में होता है। किसी ग्रन्थ को संकलित रूप देने में कवि कितना प्रवीण हो सकता ? इसका उदाहरण 'लछिमन चन्द्रिका' है साथ ही इनकी व्यवहार कुशलता की ओर भी उनके संकेत मिलते हैं। कवि कलियुग के प्रभाव को अच्छी तरह समझता है, उनकी दृष्टि सूक्ष्म है और अनुभव गहरा तथा विस्तृत है। कलियुग का चित्र जो इनके द्वारा खींचा गया है वह वहुत ही विस्तृत तथा विचारपूर्ण है, कलियुग के प्रभाव से समाज क्या से क्या वन गया इसकी अच्छी झांकी इनके 'कलियुग रासो' में मिलती है – साथ ही कलियुग ने जो भयंकर परिस्थिति खड़ी कर दी है उसकी व्यजना 'रासो' शव्द में है। संकेत किया है—

हम कह सकते हैं कि इनके ग्रन्थों में कवि-हृदय ने हमें विद्वत्ता, भावुकता और काव्य-मर्मज्ञता की त्रिवेणी प्रवाहित होती प्रतीत होती है। अपने ग्रन्थों में -- (अ) नायक नायका का आधार साहित्य दर्पण और रसमंजरी है।

(व) **दोष**-काव्य प्रकाश पर आधारित हैं।

(स) **गुण**-काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण पर।

(द) **अलंकार**-चन्द्रालोक और कुवलयानंद के आधार पर।

कहीं कहीं भाव को उसी रूप में ही ग्रहण कर लिया गया है, परन्तु स्पष्टता की ओर सदा ही ध्यान रखा है।

अंतःसाक्ष्य के आधार पर जीवन संबंधी प्रसंग—

(१) पिता गोत्र—

सालिग्राम सुत जाति नटानी, बाल मुकंद कौ भैया ।
जैपुर जनम जुगल पद सेवी, नित्य विहार गवैया ।

(२) गुरु-भक्ति स्थान—

श्री हरिव्यास प्रसाद पायभौ वृन्दाविपिन वसैया

(३) परिवार—

बेटा बालमुकुंद को, श्री नारायण नाम ।
रच्यौ तासु हित ग्रन्थ यह ······· ··· गोविदानंदघन ।

(४) ग्रन्थ-रचना-काल—

(१) रसिक गोविंद, गोविंदानंदघन के पीछे दिये हुए है ।
१८६०,१८५८
(२) लछिमन चंद्रिका कवि के लेख द्वारा—१८८६

(५) लछिमन चन्द्रिका से—

जैपुर जन्म, माता गुमाना, बेटा सालिगराम जी नाटाणी का ।
मोतीरामजी का भतीजा । भाई छोटा बालमुकुन्दजी का ।

(६) रसिकगोविंद—

मातु गुमाना गुविंद के पिताजु सालिग्राम ।

(७) गुरु-सम्प्रदाय—

(१) श्री सर्वेसर सरन गुरु वसि वृन्दावनधाम ।

(2) अन्य–जै जै जै श्री राधिका सर्वेश्वर श्री हंस ।
सनकादिक नारद सद निम्बादित्य असंस ।।

(3) श्री सरवेस्वर सरणदेवजी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र
वैष्णव रसिक गोविन्द ।

(8) पितु ह्वै प्रतिपाल्यो प्रकट प्रभु ह्वै दिय निज धाम ।
गुरु है अभय कियो सदा जय श्री **सालिगराम** ।।
रामकृष्ण सुत ज्येष्ठ पितु **मोतीराम** अभिराम ।
दाधक्षर दुख हर प्रखर सरलगुवितर धाम ।।

(9) **गोविंदानंदघन नाम का कारण**
इनके मित्र आनन्दघन नाम के एक चौबे थे ।
रसिक गोविन्द को मित्र आनन्दघन चौबे यातें ग्रन्थ को नाम
रसिक गोविन्दानन्दघन धर्यो ।।

(10) **नाम** (अ) सुकवि **गुविंद** (ब) मित्र **गुविंद** को चित्त चुरावै
(स) वारी बैस वारी उजियारी श्री **गोविंद** कहै

इस सम्बन्ध में मेरी बातें श्रीजी की कुंज वृन्दावन में प्रतिष्ठित निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिर-अधिकारी श्री वल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ से विस्तार के साथ हुई । वे भी इस बात का निर्णय करने में अभी तक असमर्थ हैं कि कवि का नाम 'गुविंद' था या 'रसिक गुविंद', किन्तु निश्चित रूप से उनका कहना है कि निम्बार्कों की गुरु परम्परा में गुरु-सर्वेश्वर-शरण श्री महाराज से पहले 'गोविंद शरण' जी थे और किसी भी शिष्य विशेष का नाम गुरु के नाम पर हो यह सामान्यतः उचित नहीं समझा जाता अतः कवि के पहले 'रसिक' लगाना सार्थक रहा । इस विशेषण के लगने से उनके नाम में परिवर्तन की सम्भावना ठीक नहीं । वे सर्वेश्वर सम्प्रदाय के थे, काव्य रस का आस्वादन करने वाले थे, गुरु के चरणारविंद में भ्रमर बनकर रस लेते थे, राधाकृष्ण-लीला और युगल सरकार के रस में निमग्न रहते थे अतः उनके नाम के पहले 'रसिक' शब्द का प्रयोग होना सार्थक प्रतीत होता है । इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर 'अलि रसिक गोविंद' का प्रयोग भी मिलता है । 'अलि' के साथ 'रसिक' का प्रयोग भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है । गुरु-चरणारविंद के 'रसिक' 'अलि'–युगलमाधुरी के पराग का 'रसिक' अवगाहक 'अलि' भक्त प्रवर गोविंद इन दोनों विशेषणों के सर्वथा योग्य हैं, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि उनका नाम ही 'रसिक गोविंद' हो जाय । बहुत सम्भव है अपने सम्प्रदाय में भी उनका यही नाम चलता हो क्योंकि केवल 'गोविंद' नाम लेना आचार्गवर के प्रति अनादर की भावना थी ।

अतः मैं इसे इस प्रकार मानता हूं कि उनका नाम 'गोविन्द' था औ 'रसिक' उनके नाम से संबंधित विशेषण था।

सलेमाबाद-किशनगढ़ स्थित निम्बार्काचार्य पीठाधिपति के मतानुसा गोविंद नाम के एक प्रसिद्ध भक्तकवि इस सम्प्रदाय में हुए हैं और उनके पदे के कुछ संग्रह संभवतः उनके पास भी हैं। जोधपुर में जो निम्बार्कों का मंदि है उनके पुजारी जी के पास भी गोविंद कवि द्वारा लिखित कुछ 'पद' थे ज खुले हुए पन्नों पर लिखे गए थे और कुछ समय पूर्व ये हस्तलिखित पुस्तक भं वृन्दावन के अधिकारी जी अपने संग्रहालय के लिए ले गए। जब में वृन्दाव पहुंचा तो मुझे वेदान्ताचार्य जी ने स्वयं कवि के लिखे हुए दो हस्तलिखि ग्रथ दिखाये, एक यह जो खुले पत्रों के रूप में है और दूसरा ए अन्य ग्रंथ जो सिली हुई पुस्तक के रूप में है। इस पुस्तक क आरम्भ 'नित्य उत्सव' के पदों से होता है। इसमें कई अवसरों पर प्रयुक्त प हैं और पुस्तक के अन्त में 'कलियुग रासा' के भी कुछ प्रसंग देखे। वृन्दावन वे अन्य लोगों के अधिकार में कवि के ग्रंथ संबंधी वार्ता पर श्री वेदान्ताचार्य ज ने कहा कि उन्होंने बहुत कुछ प्रयास इस दिशा में किया है, किन्तु कोई पुस्त नहीं मिल सकीं। वृन्दावन के एक हलवाई परिवार से भी उन्होंने काप चेष्टा कर ली। गोविन्द कवि के छोटे छोटे ग्रन्थ तो अनेक मिले हैं, किन 'गोविन्दायन' जैसी सर्वांगपूर्ण पुस्तक को देखने से विदित होता है कि इनव कुछ और रचनाएं अवश्य होनी चाहिये। भक्ति संबंधी अनेक छोटी पुस्त तो यत्र-तत्र हैं और प्रायः उन स्थानों में मिलती हैं जहां निम्बार के मंदिर हैं, किन्तु अन्य सामग्री के लिए प्रयास आवश्यक है। मुझे बताय गया कि मुनि श्री कान्तिसागर जी के पास संगृहीत 'हरि गुरु सुयश भास्क में गोविंद कवि की कुछ कृतियां हैं। किन्तु, उन कृतियों को देखने का अवस मुझे नहीं मिला।

कवि ने दूसरों के छंदों को भी उदाहरण स्वरूप प्रयुक्त किया है। अप छंदों में स्पष्ट रूप से अपना नाम 'गुविंद' 'रसिक गुविंद' आदि डाल दिया ताकि भ्रांति का कोई अवसर न रहे।

इस पुस्तक के संपादन की प्रेरणा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठा जोधपुर द्वारा मिली और इसका प्रकाशन कार्य वर्त्तमान निदेशक डा पाठक के सत्प्रयास से हुआ। इसके लिए मैं निदेशक महोदय तथा उन सहयोगियों का हृदय से आभारी हूं।

भरतपुर
१-१-८३

मोतीलाल गु

गुविन्द कवि कृत

गोविन्दानन्दघन

गोविन्दानन्दघन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः ॥
अथ श्री गुविंदानंदघन लिष्यते ॥

॥ कवित्त ॥

ललित सिँगार परिहास विनै दूती मुष ।
बिरह निवेदन मैं करुणा कौ साज है ॥
रूठिवे मैं रौद्र सुरतोत्सव मैं वीर कंपभै ।
बिभत्स नषरदछ्त कौ समाज है ॥
अद्भुत उलटि सिंगार सांति प्यारी के ।
मनाये विन पीकौं न सुहाय कछू काज है ॥
दंपति बिहार सदा वंदन गुविंद ।
जाहि सेवत सरस रसराज महाराज है ॥ १ ॥

॥ छप्पै ॥

सघन कुंज अलि गुंज पवन तहँ त्रिविधि सुहाई ॥
रतन जटत अवनी अनूप जमुना वहि आई ॥
छ रितु कोक संगीत राग रागिनि सषि रति पति ॥
सव सुष साज समाज सहित सेवत अति नित प्रति ॥
शृंगार प्रेम रस सरस पुनि काल कर्म गुन कछु न डर ॥
दंपति बिहार गोविंद जय जय श्री वृंदा विपिन वर ॥ २ ॥

कथ कवि वंस वर्ननं

॥ छन्द ॥

रसिक भक्त लेषक गुविंद कवि कोक काव्य विलसैया ॥
सालिग्राम सुत जाति नटानी वालमुकंद कौ भैया ॥
जैपुर जनम जुगल पद सेवी नित्य विहार गवैया ॥
श्री हरिव्यास प्रसाद पाय भौ वृंदा विपिन वसैया ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

वेटा वालमुकंद कौ, श्री नारायण नाम ।
रच्यौ तासु हित गृंथ यह, रसिक गुविंद अभिराम ॥ ४ ॥

वसु सर वसु ससि अव्द, ॥ १८५८ ॥ रवि दिन पंचमी वसंत ।
रच्यौ गुविंदानंदघन वृंदावन रसवंत ॥ ५ ॥

यहै गुविंदानंदघन, नाम धरचौ इहि हेत ।
कहत सुनत सीषत लिषत, सव विधि आनंद देत ॥ ६ ॥

श्री गुविंद आनंद घन, सरस प्रीति परतीति ॥
नाम गुविंदानंदघन, धरचौ मीत इहि रीति ॥ ७ ॥

सुकवि गुविंदादिक निकृत यह आनंद समूह ।
यातें नाम आनंदघन, धर्‌यौ रहित प्रत्यूह ॥ ८ ॥

निधि अगाध साहित्य मधि, नव विधि रस छवि देत ।
भरत गुविंदानंदघन, वरषत रसिकनि षेत ॥ ९ ॥

रसिक रस विसेसज्ञ, अथ रस निरूपणं

अन्य ज्ञान रहित जो आनंद सो रस ।

प्रश्न : अन्य ज्ञान रहित आनंद तौ निद्राहू है ।
उत्तर : निद्रा जड़ है, यह चैतन्य है ।

भरत अचारज सूत्रकार कौ मत

नुविभाव, अभाव, संचारीभाव के संजोग तें प्रगट होय सौ रस

अथ काव्य प्रकास कौ मत

कारण कारज सहायक हैं जे लोक मैं इनहीं कौ नाट्य मैं, काव्य मैं, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव संज्ञा है । इनके संजोग तैं प्रगट होइ जो स्थायी भाव सो रस ॥

अथ साहित्यदर्पण कौ मत

॥ सौरठा ॥

सत्व विशुद्ध अभंग, स्वप्रकास आनंद चिद ।
अन्य ज्ञान नहि संग, व्रह्म स्वाद सहोदर सु ॥ १० ॥

अथ अभिनव गुप्त पादाचार्ज कौ तत्व लक्षण

रसिकनि के चित मैं प्रमुदादि कारण रूप करिकै बासना रूप करिकैं स्थिति ॥ नाट्य के काव्य के विषैं विभाव, अनुभाव, संचारीभाव साधारणता करिकैं प्रसिद्ध ॥ आलौकिक ॥ असे निकरि कैं प्रगट कीनौं हुवौ ॥ मेरे शत्रु के, उदासीन के, मेरे नहीं ॥ सत्रु के नहीं, उदासीन के नहीं, याही तैं साधारण ॥ जहाँ स्वीकार-परिहार नहीं सो साधारण ॥ साधारण उपाय बल करिकैं ततछिन उपपत्ति भयौ आनंद स्वरूप ॥ विषयांतर रहित ॥ स्व प्रकास अपमित जो भाव ॥ स्व स्वरूप की सी नांही ॥ न्यारौ नहीं तौ हू जीवनैं विषय कीनौ हुवौ ॥ विभावादिक की स्थिति जाको जीवित आनंद वृत्ति जाके प्राण ॥ प्रपान कर सा न्याय करिकैं अनुभव कीनौं हुवौ अगारी फुरत सौ ॥ हृदय मैं धरत सौ ॥ अंगनि कौं आलिंगिति सौ ॥ और ज्ञान कौ छिपावत सौ ॥ परव्रह्म आस्वाद कौ जतावत सौ ॥ अलौकिक चमत्कार करै जो रत्यादि स्थाई भाव सो रस ॥

सो नव विधि :

(१) शृंगार (२) हास्य (३) करुणा (४) रौद्र (५) वीर
(६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्‌भुत (९) कछु सांति ।

प्रश्न : सांति कछु कैसैं ।
उत्तर : सांति काव्य में कहियत है नाट्य मैं नहीं, यातें ॥

अथ शृंगार लक्षणं

शृंग कहिये मुष्यता आर (और) कहियै प्राप्ति मुष्यता, प्राप्ति जाहि सब रसादिकनि मैं होई सो शृंगार ।

सो दुविधे :

(१) संयोग (२) वियोग ।

अथ संजोग लक्षण

विलासी जाहि अवलंव्य करिकैं परसपर सेवन करें सो संयोग । नाइका नाइक परसपर आलंवन । चंद्र चंदन कुहू सव्दादि उद्दीपन भ्रू विक्षेप कटाक्षादि अनुभाव । आलस, चिंता, लज्जा, निद्रा, उत्कंठा, हर्षादिक संचारीभाव । रति स्थायीभाव । स्यामवर्ण ॥ श्रीकृष्ण देवता ॥

॥ सवैया ॥

सषीनिके आछे अलापन तें उह, कुंज मैं क्यौं हूं गई सुख दैंन ॥
विलोकि पिया रसिया कौं नई, दुलहि सुभई भयचकृत नैंन ॥
लष्यौ पुनि त्यौं अपने तन को, अति गाढैं गुविंद गह्यौ रस लैंन ॥
विलज्जित ह्वै कैं तवै रति कूजित, कूजन कौं लगी कोमल वैंन ॥ ११ ॥

इहां नाइका विषयालंवन ॥ नायक आश्रयालंवन ॥ कुंज उदीपन रति कूजित अनुभाव ॥ लज्जा, त्रास, संचारीभाव, रति स्थायीभाव ॥ पुनः

॥ सवैया ॥

प्रेम प्रजंक पैं पौढी अनंद सौं, आवत जाने गुविंद बिहारी ॥
चाहै भुजा भरि अंक भरयौ सकुचै, पुनि लाज के साज तें प्यारी ॥
प्यारे की ओर कटाछिनि सौं लषि, दीप निदाइ करी अधियारी ॥
चुंवन कैं परिरंभन कैं रति, केलिकला वहुतै विसतारी ॥ १२ ॥

इहां नाइक विषयालंवन ॥ नाइका आश्रयालंवन ॥ दीप निदाइवौ उद्दीपन ॥ कटाक्ष चुंवन परिरंभन अनुभाव ॥ उत्कंठा,लज्जा, हर्ष संचारीभाव ॥ रति स्थायीभाव ॥ पुनः

॥ सवैया ॥

नायक कै संग सोई हुती उठि वंजुल कुंजनि भृत्य निहारी ॥
सोये पिया गनि चुंवन कौं मुष कैं ढिग मुष्य कियौ सुषकारी ॥
एते मैं गोविंद जागि उठे तन देखि रुमांचित आंषें लजारी ॥
लीनी भुजा भरि कंठ लगाइ करी रति प्रीति सौं प्रीतम प्यारी ॥ १३ ॥

इहां नायक विषयालंवन ॥ नाइका आश्रयालंवन ॥ निभृत्य कुंज उद्दीपन ॥ मुप के ढिग मुष्य करिवौ तन मैं रोमांच ए अनुभाव ॥ लज्जा, उत्कंठा, हर्ष संचारीभाव, रति स्थाईभाव ॥ पुनः

॥ सवैया ॥

प्यारे पिया सुरतोत्सव काज, प्रवीन परौसिन हाथ वुलाई ॥
छाड्यौ कछु छलकै निज नाह, गुबिंद पैं चंद मुषी चलि आई ॥
कोमल हास विलोचन भौंह, निवंक विलासनि की सरसाई ॥
मंजुल वंजुल कुंज मैं जाइ रच्यौ, रति कौतुक संग कन्हाई ॥ १४ ॥

इहां नायक विषयालंवन ॥ नायका आश्रयालंवन कुंज उद्दीपन ॥ कोमल हास भ्रू विलासादि अनुभाव ॥ लज्जा, हर्ष, संचारीभाव ॥ रति स्थायीभाव ॥

केसव

॥ सवैया ॥

केसव एक समैं हरि राधिका, आसन एक समैं रस भीनैं ।
आनद सौं तिय आन[न] की दुति, देषत दर्पन त्यौं द्रग दीनैं ।
लाभ के लाल मैं वाल विलोकित हीं, भरि लालनैं लोचन लीनैं ।
सासन पीय सवासन सीय, हुतासन मैं जनु आसन कीनैं ॥ १५ ॥

इहां नाइका विषयालंवन, नायक आश्रयालंवन, एकासन उद्दीपन, दर्पन देषिवौ अनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारी भाव, रति स्थाई भाव ।[1]

अथ संयोग श्रृंगार की संप्रदाय

अवलोकन, आलिंगन, चुंवन, कुसुम केलि, जल केलि, रवि अस्त समै चंद्रोदय, षटरितु, मारुत छवि इत्यादि । इनके लछन नाम हीं तै जानि लीजैं[2] । अवलोकन ।

---

1. अ० प्रति में केशव का यह पूरा छंद (सवैया) तथा इसका विश्लेषण नहीं दिया गया है । 'रति स्थायीभाव' लिखने के उपरान्त संयोग शृंगार के भेद दिये गए हैं जिन्हें जो० प्रति में 'अथ संयोग शृंगार की संप्रदाय' कहा गया है । 'भेद' न कह कर 'संप्रदाय' कहना अधिक उपयुक्त है ।
2. अ०—पूरा वाक्य नहीं है ।

।। लाल कौ कवित्त ।।

बैठे एक आसन[1] पैं अलि काहू छवि छके,
सुन्दरता सागर के सार सरसत हैं ।
पिय मुष चाहि प्यारी प्यारी मुष चाहि पिय,
नैंननि पियूष रस पूर परसतु हैं ।
आज चित चात औ लोचन चकोरनि की,
लापै अभिलापैं[2] पुली तौ हू तरसत हैं ।
एक ओर गोरी घटा एक ओर स्यांम घन,
एकै संग ऊंनि ऊंनि रंग वरसत हैं ।। १६ ।।

कासीराम

देषा देषी भई सकुचि सव छूटि गई,
मिटी कुल कानि केसो(कैसौ) घूंघट कौ करिवौ ।
लगी टकटकी उर उठी धकधकी गति,
थकी मति छकी अैसौ नेह कौ उघरिवौ ।
चित्र कै-से काढे दोउ ठाढ़े कहि कासीराम,
नांही परवाह लाष लोग करौ लरिवौ ।
वंसी कौ वजैवौ नट नागर विसरि गयौ,
नागरि विसरि गई गागरि कौ भरिवौ ।। १७ ।।

आलिगन

।। लालक[लालकौ] सवैया ।।

एक समैं हरि पौढ़ि रहे, तन ऊपर तानि कैं पीत पिछौरी ।
प्यारी हरैं हरैं आई तहां, मधुरैं मुष चुंवति चोरांई[3] चोरी ।

---

1. अ० 'पलिका'
2. अ०—'लाख अभिलाख'
3. अ० चोरां

देखि कपोलनि मैं पुलकावलि, लाज सु भाजि गई गुन गौरी ।
आनन चंदन वाड़ रही सु गही, भरि कैं भुज भामिनि भोरी ।। १८ ।।*

।। सिरोमनि कौ कवित्त ।।

आवै तो तमासौ एक दुरि कैं दिषाऊं तोहि,
चोरी कौं सयानी जानी भोरी ह्वै सकाति है ।
रसिक सिरोमनि रसीले रसमसे दोऊ,
रस मैं मगन मन कैसी घरी जाति है ।
मैं जो कछु कहूंगी तौ कहैगी कहा है कोऊ,
आनि किन देषौ जैसी झूठी सौंहैं पाति है[1] ।
बात के कहे तैं जव भागि भागि जाती[2] अव,
लागि लागि लालन की छाती लपटाति है ।। १९ ।।

किशोर

बैठे हैं किसोर[3] दोऊ घोर घन जोर आयौ,
परत सजोर धरिनी पै धूम करि करि ।
च्वै[4] चले पनारे औ किनारे तटिनी के परैं,
टूटत बिटप डार सब्द होत तरि तरि ।
मोर सोर चहूं ओर ह्वै रह्यौ कुतूह[ल] भारी,
तर रति दामिनी उठति थर परि परि ।
ऐसे समैं लालन बिहारी संग भाय भरी,
लपटति लाडिली भुजानि वीच डरि डरि ।। २० ।।

हरिवंस गुसाईजू

अवला अति सुकुमारि डरति, उर वर हिंडोर डकोर(झकोर) ।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागति, दै नव उरज अकोर ।। २१ ।।[5]

---

1. अ०—'सौंह खाति है'
2. अ०—'जातो'
3. अ०—'किशोर'
4. अ०—'च्वै'
5. अ०—हरिवंश गुसाईं जू का यह दोहा नहीं है ।

*सं०टि०—'काव्यप्रकाश' का पद्यानुवाद है ।

अथ चुंवन

।। लाल कौ सवैया ।।

हंसि लीनी भुजा भरि चंदमुपी, नद नंद हियें लपटाइ रही ।
कटि किंकिनि की धुनि तें रसना, दसनावलि वीच दुराइ रही ।
पिय चूंमैं कपोलनि त्यौं तरुनी पिय कौ, मुप चूंमि लजाइ रही ।
अलि यौं रति दंपति की अवलोकति हौं, विन मोल विकाइ रही ।। २२ ।।

अथ कुसुम केलि

।। सेनापति कौ कवित्त ।।

सहज सुधारी राज मंदिर मैं फुलवारी,
भौंर करें सोर गान कोकिल विराव के ।
सेनापति सुषद समीर चले मंद मंद,
लसत अमंद श्रम सीकर सुभाव के ।
प्यारौ अनकूल कहै करन करनफूल,
सीसफूल और पांवडेहू मृदु पाव के ।
चैत मैं विभात साथ प्यारी अलसाति लाल,
जात मुस्कात फूल वीनत गुलाव्र के ।। २३ ।।

कमल विछाये वर विमल वितान छाये,
छवि भरे छज्जे दरवज्जे महराव के ।
घने घनसार के सँवारे सपी हौद[1] ता मैं,
छूटत फुहारे भोर केसरि के आव के ।
सीतल सुगंध सेज सुमन सिगार अंग,
अंग राग राग रंग सरसहि ताव के ।
चंदन की पौरि वैदी वंदन वनाइ वैठे,
राधिका गुविंद आज मंदिर गुलाव के ।। २४ ।।

---

1. अ०—'हौज'

।। सवैया ।।

फूल वितान तनें सजनी सुनि, फूलनि फूलि रही फुलवारी ।
फूलनि सेज सिंघासन आसन, फूलनि की पिछवाई सँवारी ।
फूलनि भूषन फूल दुकूलनि फूलीं, गुविंद सषीं लषि वारी ।
फूलनि के वगला(वँगला) मधि आज, विराजत हैं छवि सौ पिय प्यारी ।।२५।।

घनस्यांम

सौंन जुही की गुही पगियाजु, चमेली कौ गुच्छ रह्यौ झुकि न्यारौ ।
द्वै दल फूल कदंव के कुंडल, सेवती कौ झंगा[1] घूंम घुमारौ ।
है तुलसी पटुका घनस्यांम गुलाव, इजार नवेली[2] कौ नारौ ।
फूलनि आज विचित्र वनाइ कैं कैसौ, सिंगारचौ है प्यारी नें प्यारौ ।। २६ ।।

सूरदास मदनमोहनजू

पाछें ललिता आगें स्यामा प्यारी ता आगें,
पिय मारग फूल विछावत जात । इत्यादि ।। २७ ।।

अथ जल केलि

।। लाल कौ सवैया ।।

करि कैं रजंत्रनि मेलत हैं, जल चंचल चारु द्रगंचल मैं ।
ललना कछु देषति ताहि, तवै भुज कौं भरि भेटत है पल मैं ।
रिस देषि तियानि की वूडक लै, पद पंकज आनि छुवै छल मैं ।
नदलाल सवै व्रज-वालनि मैं, जल-केलि करै जमुना जल मैं ।। २८ ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

आपस मैं हरि राधिकाजू, जल क्रीडत हैं रस रंग वढ़ांये ।
नीर सौं चीर गए लगि कैं तन, दूनी वढ़ी छवि आज के न्हायैं ।

---

1. अ०—'झगा'
2. अ०—'नवेले'

नील दर्याई* की कंचुकी मैं, कुच की उपमां कवि देत बतायैं ।
बाज के त्रास मनौं चकवा, जलजात के पात मैं गात छिपायैं ।। २९ ।।

केसव

रितु ग्रीषम की प्रति वासर केसव, पेलत हैं जमुना जल मैं ।
इत गोप सुता उत पार गुपाल, विराजत गोपिनु के दल मैं ।
अति बूडि चलैं[1] गति मीननि की, मिलि जांहि उठैं अपने थल मैं ।
इहि भांति मनोरथ पूरि दोऊ जन, दूरि रहैं छवि सौं छल मैं ।। ३० ।।

अथ रवि अस्त समय

॥ लाल कौ कवित्त ॥

कैधौं इहि औसर मदन रंगरेज रँगि,
रजनी विलासिन के बसन सुपाये हैं ।
कैधौं ललना जन मनोरथ कलपलता,
ताही के सुरंग रंग फूल फूलि आये हैं ।
कैधौं तुंग अस्ताचल शृंगनि तैं गैरकादि,
धातु रज रवि रथ चक्रनि उठाये हैं ।
कैधौं विप्र धुनि सुनि फूली सांझ सानुराग,
कैधौं काप(म) के[2] वितान नभ छाये हैं ।। ३१ ।।

॥ सुंदर सवैया ॥

सांझ समैं कौं पछांह दिसा तैं, उछाह सौं ऐसी ललाई निहारी ।
वंदन कौं न गुलाल कितौकु, रताई रतौ फलहू की बिसारी ।
तारे तहां ढिग चंद कला कवि, सुंदर सौ छवि ऐसी उचारी ।
मैंन मनौं गढि गोल गिलोलनि, पेल कौं छोलि गिलोल सँवारी ।। ३२ ।।

---

*वस्त्र विशेष- 'दरियाई' का व्रज में काफी प्रयोग रहा है । लोकगीतों में भी 'दरियाई' के वस्त्रों की बात आती है ।

1. अ०—'तलैं'

2. अ०—'काम भूप के'

अथ चंद्रोदय मुकंद जू

॥ सवैया ॥

पिय देषन कैधौं रमा उभकी, मुष कुंकुम मंडित राजतु[1] है ।
निसि ती (तिय) उर कौं अनुराग, सुहाग छिपा वधूकौ किधौं भ्राजत[2] है ।
किधौं पूरन चंद सुछंद उदोत, मुकुंद सवै सुष साजतु है ।
किधौं प्राची दिसा नव भाल[3] के भाल, गुलाल के[4] विंदु विराजतु है ॥ ३३ ॥

लाल

मानिनि के उर पैं कुच भूधर दुर्ग महा गढ़ कोट समाजी ।
मान(नैं) अजौं रहि है छतहू हम काम नरेंद्र[5] चमू अति ताजी ।
यौं कहि फूलत कैं रवि[6] कोरिक कोसन तैं कठती[7] अलि राजी ।
सोई वर्डा किरवानहि काढत वाढत कोह कला-निधि गाजी ॥ ३४ ॥

विहारी

॥ दोहा ॥

उयौ (उग्यौ) सरद राका ससी, क्यौं न करति चित चेत ।
मनहु मैंन[8] महिपाल[9] कौ, छांहगीर छवि देत ॥ ३५ ॥

अथ षट रितु, प्रथम वसंत

पल्लव अधर अरु सुमन विकास हास,
झरत पराग वर बारिज वदन मैं ।

---

1. अ०—'भ्राजत है'
2. अ०—'राजत है'—'रजनी उर की अनुराग किधौं यह मूरतिवंत ही राजत है'—पूरी पंक्ति में अन्तर है ।
3. अ०—'वाल'
4. अ०—'कौ'; (3, 4 उत्तम पाठ हैं)
5. अ०—'नरिंद'
6. अ०—'कैरव'
7. अ०—'कढ़ती'
8. अ०—'मदन'
9. अ०—'छितिपाल'

भ्रमत भ्रमर नैंन कुच फल पिक वैंन,
स्वासा सुप दैंन जानी त्रिविधि पवन मैं ।
रूप गुन जोवन सुहाग भाग अनुराग,
नाना मौर मंजरी ए जोवन के वन मैं ।
कीनौ वस कंत श्री गुविंद विलसंत[1] आली,
सहज वसंत-सी लसंत तेरे तन मैं ॥ ३६ ॥

पल्लव नवल नव सुमन सुवास नव,
नवल पराग श्री गुविंद दरसंत है ।
नवल समीर नव भौंरनि की भीरि नव,
कोकिलादि की कुलाहल सरसंत है ।
नयौ नेह दंपति सुहाग भाग अनुराग,
राग रंग नवल गुलाल वरसंत है ।
नवल सकल साज नवल सपी समाज,
नवल निकुंज आज नवल वसंत है ॥ ३७ ॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

द्रुम डार पलना विछौंना नव पल्लव के,
कुसुम झगूली ते तौ तन छवि भारी दै ।
पवन झुलावैं भौंर[2] कीर वतरावै पुनि,
कोकिल हरपि हुलरावै कर तारी दै ।
झरत पराग ते उतारचौ करैं लौंन राई,
कुंद कली नाइका लतानि सिर सारी दै ।
मदन महीपति कौ वालक वसंत ताहि,
प्रात ही जगावत गुलाव चटकारी दे ॥ ३८ ॥

अथ ग्रीष्म

॥ लाल कौ कवित्त ॥

भारी तपी भासमान भास जिनि जानौ यह,
फैली चारु चंद्रमा की चांदनी सु गहरी ।

---

1. अ०—'झलसंत विलसंत'
2. अ०—'केकी'

सीतल सुगंध मंदताई वारि डारियति,
त्यौं त्यौं अति चलति प्रचंड पौन लहरी ।
नगर के नारी नर सोवत कपाट दै दै,
कौंन कहि बूझत परौई काम कह री ।
चले कित जात घनस्याम सुनौ वात इहि,
देस होति अध-राति जेठ की दुपहरी ॥ ३९ ॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

माधुरी की कुंज फूली मालती निकुंज कूल,
कालिंदी के कूल छ्वै समीर सुषकारी है ।
कोमल विमल सेज सीतल परसपर,
परम पटीर घनसार सौं सवारी है ।
हिय के हुलास सौं विलास विलसत रीझि,
रसिक विहारीलाल संग प्रान प्यारी है ।
अंग राग भीजी सारी छिरकी सुगंध न्यारी,
हिम रितु करि डारी ग्रीषम निकारी है ॥ ४० ॥

॥ सौभ ॥

भरयत गहरे गुलाव हद हौदनि सु,
धरियत रजत फुहारे ततवीर के ।
ढरियत ढारनि सुढारनि नहरि नीर,
दरियत घनसार सरद गँभीर के ।
करियत तर अतरनि सौं विछौंना कवि,
सोभजू उघरियत वातायन तीर के ।
चंदन पलिग अरविंदनि की सेज पर,
सुंदरि सिधारी आज मंदिर उसीर के ॥ ४१ ॥

॥ जयनारायण कौ सवैया ॥

सीतल है षस के वँगला चहु पास सिचाइ दई कदली कौं ।
नीकैं नरायन होत पंपा छुटैं चादरि को कह भांति भली कौं ।
आनद सौं छिरकावत चंदन केसरि सैन वताइ अली कौं ।
फूलनि सेज मैं पोढत लै सँग नंदलला वृषभानु लली कौं ॥ ४२ ॥

हौद भरे गहरे जल-जंत्र छुटै सु महा छवि छायें ।
सारँग राग सुनावैं गुविंद सषी-जन वीन मृदंग बजायें ।
फूलनि सेज मैं फूल सौं फूल सिंगार कियें द्रग सौं द्रग लायें ।
कुंज विराजत मित्र दोउ तन चंदन चित्र विचित्र वनायें ।। ४३ ।।

चारु फुहारनि धारनि की छबि सीतल मंद सुगंध समीर की ।
फूल दुकूलन चंदन चित्र की केसरि की घनसार गभीर की ।
भाग सुहाग की लागनि की रँग रंग राग की वाग की भौंरनि भीर की ।
रूप उज्यारी पियारी विहारी विराजत गोविंद कुंज उसीर की ।। ४४ ।।

।। कवित्त ।।

बिछे हैं बिछौंनां घनसारनि के भलें भाव,
छिरकाव कीने तर अतर गँभीर के ।
गहरे गुलाव के फुहारे छुटैं ठौर ठौर,
उठत झकोर तामैं त्रिविधि समीर के ।
सेज अरविंदन की चंदन की चोली चारु,
श्री गुविंद सुमन सिंगार हैं सरीर के ।
झनक मनक सौं वनक वनि वैठी आज,
राधिका रवन संग भवन उसीर के ।। ४५ ।।

तहषाने षसपानें अतर अनेक साने,
छूटैं चारु चद्दरि फुहारे छवि छाज हीं ।
सीतल पटी हैं पंक सीतल पटीरनि की,
लपटी हैं भली भांति भौंर भीरि आज हीं ।
सौंधी सेज सुमन सिंगार अंग अंग राग,
राग रंग मधुर मृदंग वीन वाज ही ।
श्री गुविंद स्यांम संग सुंदरी सुरूप भरी,
साजि कैं समाज आज वाग मैं विराज हि ।। ४६ ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

है(कैं) जल जंत्र क[1] मोहनी मंत्र वसीकर सीकर की अवली सौं ।
कै ससि कैं हित मोद भर्यौ जलजातु अकास है भूमि थली सौं ।

1. अ०—'कि'

कै मुकताहल कौ विरवा किरच्यौ, हथ-फूल जले सरली सौं ।
कंजसनाल तैं कै मकरंद चल्यौ, तरराइ कैं भांति भली सौं ।। ४७ ।।

अथ वर्षा

॥ कवित्त ॥

गावैं गीत कोकिल वजावत मृदंग मेघ,
दामिनी दिषावै दिव्य दीप जिय जोहिये ।
मोर नृत्यकारी चारु चातक अलापचारी,
दादुर की दून श्री गुविंद मन मोहिये ।
हरी हरी भूमि के विछौनां विछै ललित,
लतानि के वितान आन उपमान टोहिये ।
प्यारी कौं विहारी कौं रिझावन कैं काज सषी,
सांवन कौ सुघर समाज आज सोहिये ।। ४८ ।।[1]

रघुराई

प्यारे हित काज प्यारी प्यारी हित काज प्यारे,
दुहूंनि सिंगारे तन नीके चटमट सौं ।
जमुना के नीर तीर हसि हसि वातें करैं,
मन अटकायौ कल-कोकिला की रट सौं ।
एतैं रघुराई घन घटा घहराय आई,
वरषन लाग्यौ नान्ही वूंदनि के ठट सौं ।
जौ लौं प्यारौ प्यारी कौं उढायौ चाहै पीत पट,
तौ लौं प्यारी प्यारौ ढापि लियौ नील पट सौं ।।४९।।

---

1. अलवर की प्रति में अतिरिक्त छंद :—

कारे कारे कुंजर गुविंद मतवारे भोर वात चक्र वाणी वनें वानिक सुदेस के ।
दामिनी अराविनि औ कूकत दुहाई देत केकी पिक चातक नकीव वहु भेस के ।।
धौंसे की धुकार धूक धुरवा धनुख धरैं पैदल हरौल जैति वार देस देस के ।
संकर सौ वैर काज सजि कै समाज आज आए दल सुभट नरेस मदनेस के ।।

।। देव सवैया ।।

हौं जु गई हुती कुंजनि मैं, वरपैं अति बुंद घनैं घन-घोरत ।
देव कहूं हरि भीजत देपि, अचानक आय गये चित चोरत ।
ओट भटू तट कोट कुटी कै, लपेटि पटी अचरा गहि छोरत ।
चौगुनी रंग चढ्यौ चित मैं, चुनरी के चुचात लला के निचोरत ।। ५० ।।

।। सवैया ।।[1]

रितु सांवनी तीज सुहावनी वीज, घनैं घनहूं घहरान लगे ।
वनि कैं वन गोविंद चातक मोर, मलारनि कौं ठहरान लगे ।
दोऊ झूलैं झुकैं भमकैं रमकैं, हित सौं हियरा हहरान लगे ।
पट प्रेम पगे फहरांन लगे, नथ के मुकता थहरान लगे ।। ५१ ।।

ठहरैं नहि दामिनि यौं दमकै, घनघोर घटा घहरैं घहरैं ।
हहरैं हसि गावैं गुविंद सपी, सुनि मंद फुहि छहरैं छहरैं ।
पहरैं तन भूपन रंग रंगे, पट प्रेम पगे फहरैं फहरैं ।
गहरै दोऊ झूलत हैं छवि सौं, उमगै रस की लहरैं लहरैं ।। ५२ ।।[2]

घोर घटा घहराति घनी, घुमडी उमडी चमकै चपला री ।
भूमि हरी गहरी ज़मुना, पिक चातक मोरनि की धुनि प्यारी ।
गावैं गुविंद लसैं सरसैं, वरसैं रस रंग सुरंग हैं सारी ।
झूलत है सपि मंजु निकुंज मैं, कुंजविहारनि कुंजविहारी ।। ५३ ।।

।। कवित्त ।।

चंद्रिका की चटक मुकट की लटक नैंन,
भौंहन की मटक भटक उर-दाम की ।

---

1. अलवर की प्रति में अतिरिक्त छंद :—

घोरनि घंट भरै मद नीर नई अरुणाई की भूल सुरंग है ।
दिव्य दतारे वनें वक पंगति कारे डरारे महा अंग अंग हैं ।।
दामिनि भूपन चातक मोर पिकादि मदत्ति के लोग ए संग हैं ।
सांवन के घन हैं कि किधौं गोविंद मैंन महीप के मांते मतंग हैं ।।

2. अलवर की प्रति में यह छंद नहीं है ।

कट की लचनि औ नचनि नव केसरि की,
महदी की रचनि सचनि कोटि काम की ।
हसनि दसनि की लसन तन भूषन की,
श्री गुविंद रूप गुन जोवनाभिराम की ।
दुति की दमक झीनें झूनै की झमक आज,
झूमि[1] झूलनि झुकनि स्यामा स्याम की ।। ५४ ।।

अथ सरद

।। कवित्त ।।

प्रफुलित सुमन गुविन्द मुष चंद उदै,
चांदिनी विमल सारी जरी के फरद[2] की ।
तारागन मुक्त मांग मल्ली माल मंडन,
कुमुद चारु चकई ज्यौं सौं तैं सव रद की ।
तारक विरह तम वृंद की अमंद दुति,
हार कचकोरनि द्रगनि कें दरद की ।
बाढ़ै नेह नद की तरंग अभिरामनी,
गुविंद आज भामिनी ए जामिनी सरद की ।। ५५ ।।[3]

लाल

मालिनि ज्यौं कर मैं कमल लियैं आगैं षरी,
चौसर चमेली के रुचिर रचि लाई है ।
जौहरी की जुवती ज्यौं तेज भरे तारागन,
हीरन की हारावलि विविधि दिषाई है ।
पच्छिम के ओर की प्रवीन मृगनैंनी अंग,
ओढ़ै चारु चद्दरि ए चांदनी सुहाई है ।
लाल लपि लीजै यह रावरे रिझावन,
षवासि ज्यौं सरद चंद आरसी लै आई है ।। ५६ ।।

---

1. अ०—'झूमि झूमि'
2. अ०—'परद'
3. अ०—' ए भामिनी गुविंद आज जामिनी सरद की'

चंद निसि ललना वदन लषि धाई किंधौं,
पारद कौ पांनि फैलि आई आसमान है ।
कैधौं सुष के प्रवोध सुपित सकल सुर,
लोकनि के कलहास भासै भासमान हैं ।
मेरे जानि मदन महीप सव जीति छीति(छिति),
ऊरध चढ़ाये किंत्ति करि पासमान है ।
कैधौ तारागन मुकताहल के झूमकांनि,
चांदनी न होइ चारुताई कौ वितान है ।। ५७ ।।

सोभ

देषियै पियारे कान्ह सरद सुधारे सुधा,
धाम उजियारे चौकी चामीकर दरसैं ।
चोभैं चांदी चमकैं चदोये गुही मोतिनि की,
झलकति झालरैं जुन्हाई जोति परसैं ।
हीरा सी हसनि हीरा हार की लसनि सौंधैं,
सारी रही सनि कवि सोभ छवि सरसैं ।
कोरि कोरि कला मुष चंद तैं सरस प्यारी,
वादिला फरस रूप झलाझल वरसै ।। ५८ ।।

पावन पुलिन पौंन सीतल सुगंध मंद,
मोहै मकरंद अरविंदनि के वृंद की ।
रची रास मंडली रसिक रस रीति की सु,
रूप गुन गति भेद गोविंद अनंद की ।
रमक झमक ठमकति पग नूपर की,
तैसी ए दमक तन भूपन सुछंद की ।
चीर की चमक चटकीली छवि चंद्रिका की,
चंद वदनी की चारु चांदनी की चंद की ।। ५९ ।।

पुलिन पवित्र दोऊ मित्र सषी मंडल मैं,
तैसौ रसरास कौ विलास कौ वढ़ायवौ ।
मुरज मृदंग मुह चंग कठ तारनि कौ,
नूपुर कौ नाद संच सुरनि[1] मिलाइवौ ।

1. अ०—'स्वरनि'

सरस समाज साज राग रागिनी कौ नीकौ,
श्री गुविंद अंग कौ सुधंग(सुढंग) कौ दिषायवौ ।
लंक कौ चलैवौ मंद मंद मुसकैवौ गैवौ,
नैननि नचैवौ वीन वंसी कौ वजायवौ ।। ६० ।।

पावन पुलिन प्रेम पूरन प्रवीन प्यारी,
श्री गुविंद चंद उजियारी है उमंग की ।
रास रस मंडली रसिक रिझवार रची,
वारि डारी आभा कैऊ रति की अनंग की ।
रूप गुन गति भेद भाव की झमक तामैं,
रमक मिली हैं राग रागिनी के रंग की ।
वीन की वजनि गरजनि पग नूपुर की,
मृदु मुरली की माई मधुर मृदंग की ।। ६१ ।।

सरद उजियारी फुलवारी मैं विहारी प्यारी,
श्री गुविंद तैसी वनी मंडली सषीन की ।
प्रेम कों प्रकास सस रस कौ विलास तामैं,
राग रागिनी हैं सुर सात ग्राम तीन की ।
उरप तिरप के संगीतनि के भेद भाव,
नीकी धुनि नूपुर की किंकिनी चुरीन की ।
लीन भई मुरली मृदंग की नवीन गति,
वीन की वजनि औ बजावनि प्रवीन की ।। ६२ ।।

अथ हेमंत

।। सेनापति कौ कवित्त ।।

हेमंत तुषार के वुषार से उपारत है,
पूस मास होत सन हाथ पाय ठिरकैं ।
दिन की छुटाई औ वडाई वरनी न जाइ,
सैनापति रह्यौ जिय सोचिकैं सुमरिकैं ।
सीत सैं सहस कर सहस चरन ह्वै कैं,
ऐसैं जात भाजि तम छावतु हैं घिरिकैं ।
जौ लौं कोक कोकी सौं मिलन की है तौ लौं राति,
कोक अधवीच ही तैं आवतु है फिरिकैं ।। ६३ ।।

विहारी

।। दोहा ।।

मिलि विहरत विछुरत मरत, दंपति रति रस लीन ।[1]
नूतन विधि हेमंत रितु, जगत जुराफा कीन ।। ६४ ।।

।। कवित्त ।।

दावैं चारयौं कोर राजैं नूपुर निसान वाजैं,
छाजैं छवि कर कुच भट भिरिवौ करैं ।
सिंहासन[2] सेज सोहै सीस सीसफूल छत्र,
अलक अनौषे चारु चौर ढ़रिवौ करैं ।
मंत्री मैंन मंत्र देत भांयनि विटति भूरि,
वंदीजन भूषन विरद ररिवौ करैं ।
हिम की हिमाई सुषदाई श्री गोविंद दोऊ,
एक ही रजाई मैं रजाई करिवौ करैं ।। ६५ ।।

अथ ससिर[3]

।। सैनापति कौ कवित्त ।।

ससिर मैं ससि कौ स्वरूप पावै सविताहू,
घामहू मैं चांदिनी की दुति दमकति है ।
सेनापति सीतलता हौति है सहस गुनी,
रजनी की झांही दिनहूं मैं झमकति है ।
चाहत चकोर सूर ओर द्रग छोर करि,
चकवा की छाती तचि धीर धसकति है ।
चंद के भरम मोद हौति है कुमोदनि,
ससांक संक पंकजनी फूलति सकति है ।। ६६ ।।

---

1. अ०—यह दोहा अलवर प्रति में इस स्थान पर नहीं है । अगले कवित्त के वाद दिया गया है । इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि हेमंत का प्रसंग चल रहा है ।
2. अ०—'सिंघासन' (इस प्रकार का वर्तनी भेद अनेक स्थानों पर दिखाई देता है ।
3. दोनों प्रतियों में 'ससिर' ही दिया हुआ है ।

विहारी

रहि न सकी सव देस मैं, ससिर सीत के त्रास ।
गरम भाजि गढ़ मैं लुकी, तिय कुच अचल मवास ॥ ६७ ॥

अथ होरी

॥ कवित्त ॥

एक ओर प्यारी है दुलारी सुकुमारी अरु,
एक ओर रसिक विहारी है विहार मैं ।
दुहूं संग श्री गुविंद सषिन समाज आज,
रूप गुन जोवन के आनद अपार मैं ।
होरी वर जोरी झकझोरनि मरोरनि तैं,
कटि लचकनि कच कुचनि के भार मैं ।
अति अनुरागनि मैं रूप रंग रागनि मैं,
वागनि मैं फागनि मैं फागुन वहार मैं ॥ ६८ ॥[1]

लसति[2] असित सित लोहित ललित सु तौ,
चोवा चारु अविर गुलाल रोरी रषियां ।
छूटैं कल कुटिल कटाछिनि की पिचकारी,
मंद मंद हसनि मृदंग चंग लषियां ।
भाय भरी भौंहै सन मोहत गुविंदजू कौ,
वरुणी पलक[3] वनी सोहैं संग सषियां ।
होरी रंग बोरी चित चोरी की षिलारनि ए,
गोरी भोरी नवलकिशोरी तेरी अषियां ॥ ६९ ॥

---

1. यह कवित्त अलवर वाली प्रति में नहीं है। अलवर की प्रति में लिपिकर्ता का ध्यान संक्षेपण की ओर है। शायद वह यह सोचता है कि यदि उदाहरणों में एक छंद कम भी हो तो कोई हानि नहीं है। इसी प्रकार अनेक शब्दों के आने पर २, १ शब्द देकर 'इत्यादि' लिख देना भी इस प्रति में कई स्थानों पर पाया गया। मूल प्रति में जो रूप रहा होगा वह जोधपुर वाली प्रति के सदृश माना जा सकता है।
2. अ०—'लसत'
3. अ०—'वनक'

डफहि बजाइ गाइ गीत प्रीति रीति ही के,
दीजियै न गारी पिचकारी नीकैं छोरियै ।
अतर अरगजा लै अबीर गुलाल लाल,
डारियै रसाल फूलमाल नांहि तौरियै ।
प्यारी सुकुमारी यह रसिक बिहारी तुम,
वारी गहि वांह कहूं भूलि न मरोरियै ।
होरी मैं गुविंद बराजोरी जिनि कीजै अजू,
रोरी दै कैं गोरी भोरी रंग सौं न वोरियैं ॥ ७० ॥

केसरि गुलावनि के हौदनि पैं मची फाग,
वाग अनुराग रंग रागहि वढ़ायकैं ।
होरी मैं गुविंद बराजोरी करि गोरी भोरी,
गहि रंग वोरी मुष रोरी लपटायकैं ।
सैंन सकुमारी की सषिनु लषि घेरि लिये,
वंसी वनमाल पीत वसन छिनायकैं ।
आंषि आंजि मांडि मुप छाडे है बिहारी प्यारी,
गारी पिचकारी दै कैं तारी दै नचायकैं ।। ७१ ॥

जमुना के कूल हौं अन्हावन गई ही तहां,
भयौ श्री गुविंद कौ अचानक ही आयवौ ।[1]
मुकट की लटक चटक तन चंदन की,
भृकुटी मटक पीत पट फहराइवौ ।
मेरे चित छाय रह्यौ छिनहूं न छूटै उह,
छवि सौं गुलाल भरी मूठि कौ चलाइवौ ।
कटि कौ लचैवौ मंद मंद मुसकैवौ गैवौ,
नैंन सैंन दैवौ आली डफ कौ वजायवौ ॥ ७२ ॥[2]

कोऊ एक नारी रस रूप उजियारी प्यारी,
आवति ही जमुना के जल मैं अन्हायकैं ।
फागुन की वारी पुनि विहारी पिलारी मिले,
अँधियारी गली मैं अचानक ही आयकैं ।

---

1. अ०—'आइवौ'
2. अ०—'वजाइवौ' ('य' 'इ' दोनों रूप पाये जाते हैं— एक प्रति में भी ये दोनों रूप स्थानापन्न हैं)

दै गुलाल झोरी भरि कनक कमोरी ढोरी,
अंग अंग रंग वोरी श्री गुविंद धायकैं ।
होरी मैं किशोरी झकझोरी मुष मीडि रोरी,
गही कुच जोरी गोरी चली मुसकायकैं ॥ ७३ ॥

॥ सवैया ॥

रोरी सौं मीडि महा मुष मंजु, निकुंजनि मांझ करी बराजोरी ।
जोरी गही कुच की सु गुविंद, सवै अंग अंगनि रंग सौं वोरी ।
बौरी जु वाहिर जैहै कोऊ, इहि औसर मैं घर ही मैं रहौरी ।
होरी मैं गोरी किशोरी कौं आज, भली विधि कै झकझोरी मरोरी ॥ ७४ ॥

रंग भिजै है रिझै है गुविंदजू, तारी दै गारी अनेक सचैगी ।
छीनि पितांवर वांसुरी मालनि, गालनि लाल गुलाल रचैगी ।
लै हैं सषी सव घेरि तवै यह, मूरति नांच अनौंषे नचैगी ।
रावरी छैलता जानि हैं जू, जव गोरी किशोरी सौं होरी मचैगी ॥ ७५ ॥

रोलियां मुष्ष लगांवदा लाल गुलाल, अवीर उडांवदा झोलियां ।
षोलियां गालियां तालियां दैंदा करैं, दागली विच्च बोलियां ठोलियां ।
घोलियां कित्तीनी साडड़ी जिंद, उसी सें लगी दिल प्रीति कलोलियां ।
चोलियां रंग गुविंद भिजांवदा, गांवदा रंग रंगीलियां होलियां ॥ ७६ ॥*

॥ छन्द ॥

रंग भरि भरि भिजवइ मोरि अंगिया, दुइ कर लिहि सक न कपि चकरवा ।
हम सन ठन गन करत डरत नहि, मुष-सन लगवत अतर अगरवा ।
अस कसकस वसियत सुनु ननदी, फगुन के दिन इहि गुकुल नगरवा ।
मुहि तन तकत वकत पुनि मुसकत, रसिक गुविंद अभिराम लंगरवा ॥ ७७ ॥

॥ रेषता ॥

इन होलियौं के दिन मैं लला इस्क ना लगइये नाहक भरम धरैगा
लोग नजरिवाज है ।

---

*इस प्रकार की 'पंजावी' प्रभावित भाषा का प्रयोग रीति-ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मिलता है । (सम्पादक)

झोली गुलाल भरी उड़ाते आते हौ लपटाते करते हौ इस्तरावी
यह क्या मिजाज है ।
संदल कौं जाफरांन कौं अकसर लगाते मुष सैं लगि जायगा कलंक
तौ फिरि क्या इलाज है ।
गोविंद रसिक सजन तुम जाहर जहूर ज्यांनी घर जान दीजै मुज कौं
गुरजन की लाज हैं ।। ७८ ।।[1]

अथ मारुत[2] छवि बर्णनं

।। काहू[3] कौ कवित्त ।।

पंपा के सलिल मध्य झंपा करि ताही छिन,
चंपा कुसुमनि की लपट लूटि लायौ है ।
कासमीर देस की कुरंग नैंनी कुच तट,
केसरि कैं ले सदेस देस दरसायौ है ।
माधुरी लता कौ परिरंभि कंप ताकौ देत,
धरैं मंद ताकौं जनता कौं सरसायौ है ।
धीरनि अधीर कियैं नीरज कौ नीर लियैं,
वीर पंच तीर कौ समीर आज आय[4] है ।। ७९ ।।

धुरधंर

मदन महीप के विच छन नजरिवाज,
पीछैं लगे आवत छपद करैं सोर हैं ।
सुकवि धुरधंर भनत अरविंद वन,
चौकी भरैं चंपक चमेली चहु ओर हैं ।
सब ही के स्वारथ के सकल सुगंध सिय,—
राई सरवस्स के हरैया वरजोर हैं ।

1. अ०—प्रति में यह छंद भी नहीं मिलता । खड़ी बोली से प्रभावित इन छंदों को 'रेखता' कहा गया है—यह खड़ी बोली का ही एक प्रकार है और कहा गया है कि इसका प्रयोग मुसलमानों के द्वारा अधिक होता है ।
2. अ०—'पवन' (पर्यायवाची शब्द दिया गया है)
3. अ०—'काऊ' को ('य'-'इ' जिस प्रकार स्थानापन्न हैं उसी प्रकार 'हू' और 'ऊ' भी)
4. अ०—'आयौ'

कहां के समीर ए लुकंजन लगायें चले,
जात मलयाचल तें चंदन के चोर हैं ।। ८० ।।

बिहारी

रनित भृंग घंटावली, भरत दान मधु नीर ।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर ।। ८१ ।।
चुंवत स्वेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाइ ।
आवत दक्षण देस तें, थक्यौ वटोही वाय ।। ८२ ।।

अथ बियोग[1]

वांछित की अप्राप्ति, सो बियोग ।

।। काहू कौ कबित्त ।।

चंदहि निहारि अरविंदिनी ज्यौं मुरझाइ,
चंदन के लागै देह दाह जिमि दहियै ।
चंद्रक छुवत चित चौगुनी उठति पीर,
धीर न धरात वीर कैसें कै निवहियै ।
अं(अँ)वुज अंगार होत भूषन पहार होत,
झार जिमि हार होत नीदहू न लहियै ।
रावरे बिना तौ वाकौं छिन होत छिनदा से,
छिनदा छमासी होति और कहा कहियै ।। ८३ ।।

अथ वियोग की दस दसा

१. अभिलाष २. चिंता ३. गुनकथन ४. स्मृति ५. उद्वेग ६. प्रलाप
७. उन्माद ८. व्याधि ९. जड़ता १०. मरण ।

अथ अभिलाष[2]

नैंन वैंन मन मिलि रहे तन मिलिवे की जो चाह, सो अभिलाष ।

---

1. अ०— + 'इति संजोग'
2. अ०— + 'लक्षन'

॥ कवित्त ॥

सील औ सुजस कुल कानि तजी जाके काज,
लाज के समाज साज दीनें मैं वहायकैं ।
पानी पान भोजन सदन गुरजन तजि,
वन वन डोली तन मनहि मिलायकैं ।
आनद के कंद श्री गुविंद व्रज चंद सोई,
कवहूं उमंग सौं मिलेंगे मोहि आयकैं ।
जैसें मिलि विछुरि वहुरि निसि नाइका सौं,
आइ मिलै चंद्रमा अमंद छवि छायकैं ॥ ८४ ॥

अथ चिंता

प्यारे के मिलाप के उपाय कौ जो विचार सो चिंता ।[1]

॥ सोमनाथ [कौ] सवैया ॥

सास के त्रास उसास भरौं मन ही मन मांझ मसूसनि मारिवौ ।
घेरैं रहैं घर वाहिर नंद टरै कितहू न कितौ पचि हारिवौ ।
नाथ सुजान वे वेपरवाह पहार हमैं निज पौरि विहारिवौ ।
फेरि वनैं किहि छंद सषी नंद नंदन कौ मुष चंद निहारिवौ ॥ ८५ ॥

सेवक

राधिका की जननी सौं जनी कोउ क्योंहू स्वयंवर की वात चलावै ।
देवकुमार से गोप-कुमारनि आदर दै वृषभान वुलावै ।
केसव कैसै हू वाल उहै वरमाल सु मेरे हियें पहरावै ।
तो सी सषी सव दै संग ताके सु क्यौं यह वात सवै वनि आवै ॥ ८६ ॥

॥ कवित्त ॥

प्रेम भय भूप रूप सचिव सँकोच सोच,
विरह विनोद पील पेलियत पचिकैं ।

1. अ०— +केसव को कवित्त

तरल तुरंग अवलोकन अनंत गति,
रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गचिकैं ।
दुहूं ओर परी जोर घोर घनी केसौराय,
होइ जीति कौनकी को हारैं हिय लचिकैं ।
देषत तुम्हैं गुपाल तिहि काल उहि बाल,
उर सतरंज कैसी वाजी राषी रचिकैं ।। ८७ ।।

अथ गुन कथन

बांछित[1] के गुननि के कथिवे कौ जो आधिक्य, सो गुन कथन ।

केसव

।। सवैया ।।

जौ कहु केसव सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहै हैं ।
दारिम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं ।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं ।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहिवेई रहे हैं ।। ८८ ।

विहारी

कहा कुसुम कहा कौमुदी, कितिकि आरसी जोति ।
जाकी उजराई लषैं, आंषि ऊजरी होति ।। ८९ ।।

अथ स्मृति

प्यारे के मिलाप के अनुभव को जो स्मरण, सो स्मृति ।

।। नंदन कौ कवित्त ।।

नई भई वेदन निवेदन की गई भई,
जई भई जोग की सँजोग सुपनें भये ।
तन भयौ तल औ अतन भयौ ज्वाला-मूल,
सोम भयौ सूल सो तपन तपनें भये ।

1. अ० 'भांवत'

गोकुल के चंद कवि नंदन उदास भये,
वे वन विलास निसि द्यौस जपने भये ।
लीन भये लोइन अधीन भये रोम रोम,
दीन भये प्रान पैं न कान्ह अपने भये ।। ६० ।।

आलम[1] :

जही कुंज कुंजतर गुंजत भमर भौरि,
तहीं तरुवर अव सिर धुनियत हैं ।
जहीं रसना तैं कही रस की रसीली वातैं,
ताही रसनां तैं गुन गन गुनियत हैं ।
आलम विहारी विन हृदै हौं अचेत भई,
ए हो दई हेत पेत कैसें लुनियत हैं ।
जेही कान्ह निसि दिन नैंननि के तारे हुते,
तेही कान्ह काननि कहानी सुनियत हैं ।। ६१ ।।

केसव

सीतल समीर टारि चंद्र चंद्रिका निवारि,
केसौदास अैसें ही तौ हरप हिरातु है ।
फूलनि फैलाइ डारि भारि डारि घनसार,
चंदन कौ ढ़ारि चित्र चौंगुनौ पिरातु है ।
नीर हीन मुरझाइ जीवै नीर ही तैं छीर,
के छिमक्कैं कहा धीरज धिरातु है ।
पाइ हैं तैं पीर किधौं यौही उपचारु करै,
आगि कौ तौ दाध्यौ अंग आगि ही सिरातु है ।। ६२ ।।

।। आनन्दघन कौ सवैया ।।

तव तौ छवि पीवत जीवत हे, अव सोचनि लोचनि जात जरे ।
हित पोप के तोप तैं प्रान पले, विललात महा दुप दोप भरे ।
घन आनद मीत सुजान विनां, सव ही सुप साज समाज टरे ।
तव हार पहार से लागत हे, अव आंनि कैं वीच पहार परे ।। ६३ ।।[2]

---

1. अ०—'काहू कौ कवित्त'
2. अ०—प्रति में आलम का यह सवैया नहीं है ।

अथ उद्वेग

अनायास ही सुषदाई हू दुषदाई ह्वै जाहि, सो उद्वेग।

केसव

॥ सवैया ॥

चंद नहीं विषकंद है केसव, राहु इहि गुन लीलि न लीनौं।
कुंभज पावन जानि अपावन, धोषैं पियौ पचि जान न दीनौं।
या सौ सुधाधर सेस विषधर, नाम धर्यौ विधि है बुधि हीनौं।
सूर सौं माई कहा कहियैं यह, प्राय लै आप वरावरि कीनौं॥ ९४ ॥

मोतीराम

॥ कवित्त ॥

मूल मलयज कौ समूल जरि जैयौ अरु,
गुन जरि जैयौ या सुगंध सहराई कौ।
कटिजैयौ भूतल तैं केतु की कमल कुल,
हूजियौ कतल अलि कुल दुषदाई कौ।
मोतीराम सुकवि मनोज मालती कैं हू जौ,
पूजौ जिन आस विरही जन हसाई कौ।
राज बंस हंसनि कौ वंस निरवंस जैयौ,
अंस मिटि जैयौ या कला-निधि कसाई कौ॥ ९५ ॥

अथ प्रलाप

विना विचारैं कछु वकि उठै, सो प्रलाप।

देव

॥ कवित्त ॥

आई रितु पावस न आये प्रान प्यारे यातैं,
मेघनि वरजि आली गरजि सतावैं नां।

दादुर कुहकि वकि वक जिन फोरैं कांन,
पिकनि हटकि भूलि सवद सुनावैं नां ।
हौं तौ विरह मैं अति व्याकुल भई हौं देव,
जुगनू चमकि चित्त चिनगी लगावैं नां ।
चातक न गावैं मोर सोर न मचावैं घन,
घुमडि न छावैं तौ लौ लाल घर आवैं नां ॥ ९६ ॥

पीव पीव पपीहा पुकारत फिरत कहा,
पीव कौ संदेसौ मोहि आय कैं सुनाय दै ।
हाहा वलि पवन गवन तेरौ दिसि दिसि,
ऐसे मैं रवन कौं भवन मैं वुलाय दै ।
दूतिका ह्वै दामिनि तू दौरि उहि देस जाय,
आनद के कंद श्री गुविद जू कौं ल्याय दै ।
घोरि घोरि भूलि न वरसि रस सांवन मैं,
एरे घनस्यांम घनस्यांमहि मिलाय दै ॥ ९७ ॥

नंददास जू

॥ दोहा ॥

अहो चंद रसकंद तुम, जातु आहि उहि देस ।
द्वारावति नदनंद सौं, कहियौ वलि संदेस ॥ ९८ ॥[1]

गंग

॥ तुक ॥

गरजै वन ज्यौं लरजै जियरा वरजै किन री दरजै छतियां ॥ ९९ ॥

---

1. अ०— +काहू कौ कवित्त
सीतल समीर उर तीर-सी लगति खरी
हरी हरी वेलनि पैं पावक पजारि दै ।
दादुरनि दूरि करि पिकनि विदारि वैरी,
वागिन तैं वाहिर मधुप मोरि मारि दै ।
पावस मैं पति विन विपति वढ़ावै एतौ,
जीवनि जीवाय उपचारनि विचारि दै ।
दामिनी दवाइ राषि वादर विदा करि री,
वूदन वरजि वीर वकनी विडारि दै ॥

अथ उन्माद

चित्त भ्रम, सो उन्माद ।

॥ सवैया ॥

आनंदकंद गुविंद तुम्हैं रिस जानि, तिया उर मैं अनषावै ।
आये ही जानि कैं आदर देत, महामुद ह्वै मधुरैं मुसकावै ।
उठि चले जब जानति है तव, चारिक पैंड उहूं उठि धावै ।
वात वषानत जानि सुजान सु, वात कछू की कछू वतरावै ॥ १०० ॥

अथ व्याधि

कांम तै संतापादि विकार, सो व्याधि ।

॥ कवित्त ॥

चंद्रक न षावै तन चंदन चढ़ावै नहीं,
देषैं अनषावैं चंद्र चंद्रिका सुभाय की ।
भोजन न भावै नही भूषन बनावै न तौ,
सोवै न सुहावै सौंधी सेज सुषदाय की ।
रसिक गुविंद स्याम सुंदर-सुजान विन,
अैसी गति भई नई दुलही के काय की ।
बीर की सौं वीर वलबीर वैद वेग ल्याव,
वडी विथा व्यापी वुरी विरह वलाय की ॥ १०१ ॥

अथ जड़ता

वांछित के वियोग के दुष्प तैं[1] अंगनि की जो नष्ट चेष्टा, सो जड़ता ।

॥ सवैया ॥

आनदकंद गुविंद विना उर, सुंदरि कैं अति पीर पिराई ।
और की और दसा अंग अंग, भई सुभई सु कही नहि जाई ।

1. अ०—'विरह तैं' केवल इतना दिया हुआ है ।

सैंन सनान की भोजन की सुधि, भूषन हूं की सबै विसराई ।
बूझति वात सषी संग की सु, कहैं अपनी न सुनैं न पराई ॥ १०२ ॥

अथ मरण लक्षण

प्राननि को अभाव[1], सो मरन सो रस मैं वर्नियै[2] नही ।

अथ वियोग शृंगार के पांच भेद ॥५॥

१. अभिलाष २. ईर्षा ३. विरह ४. प्रवास ५. श्राप ।

अथ अभिलाष

सुनैं तै अथवा देषे तैं मिलिवे की चाह जो चित्तमैं, सो अभिलाष । कोऊ याही सौं पूर्वानुराग कहैं हैं । सुनिवौ तीनि विधि ॥३॥:— दूती मुष, सषी मुष, वंदी मुष ।

अथ दूती मुष श्रवण

॥ कवित्त ॥

रसिक सुजाननि सनेहिन के सिर-मौर,
कुंवर किसोर है व्रजेस सुषकारी के ।
सुनि नव वाम काम हूं तैं घनस्यांम जू के,
अंग अंग अति अभिराम वैसवारी के ।
दूती नैं वषानैं त्यौंही मानैं मन मौंहिनी कैं,
गुन गन गरेव गुंविद गिरधारी के ।
सुंदरी सुनत मुष चंदहि नवायौ पुनि,
फूले अरविंद से सुछंद द्रग प्यारी के ॥ १०३ ॥

1. अ० —'प्राणाभाव'
2. अ०—'कहिए'

अथ सषी मुष श्रवण

सषी के वचन तें श्रवन सुनि जाके गुन,
तन भौ विकल वात कौंन कौ सुनाइये ।
चंदन गुलाव घनसारनि के अंग राग,
लागि उठे आगि के समान दुषदाई ये ।
सीतल समीर दई तीर हू तें तीषी भई,
वेदन गुविंद की सौं कहां लौं गनाइये ।
एरे मन मेरे अब ताही कौं तु देष्यौ चहै,
तोकौं कौंन भांति समुझाइ सुष पाइये ॥ १०४ ॥

अथ वंदी मुष श्रवण

॥ सवैया ॥

राजकुमार अनेकनि कैं गुन दान, कृपान जिती छवि छाजै ।
ते सब भाट वषानत गोविंद, भीम महीपति के दरवाजैं ।
जानि समैं नल कौं पहलैं दमयंती, पिता ढिग आनि विराजै ।
कान लगाइ सुनौं चित दै हित सौं, उतकंठित ह्वै कछु लाजै ॥ १०५ ॥

अथ दर्शन चारि

१. चित्र २. स्वप्न ३. इंद्रजाल ४. साक्षात ।

अथ चित्र दर्शन

केसव

॥ कवित्त ॥

रूठिवे कौ तूठिवे कौ मृदु मुसिकाइ कैं,
विलोकिवे कौ भेद कछू कह्यौ न परतु है ।
केसौराइ वोलैं विन वोलनि के सुनैं विन,
हिलनि मिलनि विन मोहि क्यौं सरतु है ।
कौलग अलीनौं रूप प्याय प्याय राषौं नैंन,

नीर देपैं मीन कैसैं धीरज धरतु है ।
चित्रिनी विचित्र किन नीकैं ही चितै जै अव,
चित्र चितये तैं चित्र चौगुनौ जरतु है ॥ १०६ ॥

अथ स्वप्न दर्शन
देव

॥ सवैया ॥

वितान तनैं जहँ फूलनि के, रितु सारद की जौन्ह की जोति अमंद ।
प्रिया सपने मैं लपौ कवि देव, सुजांनी भलौं मिटि हैं दुप-दंद ।
लियौ चहै अंक भुजा भरि कैं तव ही, कोऊ कूकि उठ्यौ मति मंद ।
पुलै अपियां तौ न चंद मुषी न, चँदोवा न चांदनी चंदन चंद ॥ १०७ ॥

मतिराम

आवत मैं हरि कौं सुपनैं लपि, नैं सिकु वात सँकोचनि छोडी ।
आगै ह्वै ठाढ़े भये मतिराम औ, लीनैं चितै चप लालच औडी ।
ओठनि कौं रस लैंन कौं मेरी, गही कर कंजनि कंपत ठोडी ।
और भटू न भई कछु वात गई, इतनैं ही मैं नींद निगोडी ॥ १०८ ॥[1]

विहारी

देष्यौ जागत वैस ही, सांकर लगी कपाट ।
कित ह्वै आवत जात भजि, को जानत किहिं वाट ॥ १०९ ॥
सोवत सुपनैं स्यांम घन, हिलिमिलि हरत वियोग ।
तव ही टरि कितहूं गई, नीदौ नीद न जोग ॥ ११० ॥

अथ इंद्रजाल दर्शन

॥ कवित्त ॥

सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
हार हियें सौरभ अपार वाके तंन मैं ।

1. अ०—प्रति में मतिराम की उक्ति विहारी के दोहों के वाद दी गई है ।

रूप गुन जोवन अनूप छवि छाजै राजै,
वाग मैं गुविंद अति आनद के गन मैं ।
वीनां कौं वजावै मंद मंद मुसकावै गावै,
नैंननि नचावै भाव ल्यावै भ्रू-भ्रमन मैं ।
अैसी सषी सांवरी सलौंनी लषि स्यांमां जू कै,
लाष लाष भांति अभिलाष वटौ मन मैं ॥ १११ ॥

अथ साक्षात दर्शन

॥ काहू कौ सवैया ॥

वंसी वजावत आनि कढचौ सुगली मैं, छली कछु टौंनां सौ डारैं ।
फेरि चितै तिरछी करि दीठि चल्यौ, गयौ मौंहन मूठि-सी मारैं ।
ता घरी तैं घरी-सी धरी सेज पै, प्यारी न वोलति प्राण से वारैं ।
जागि है जीहै तौ जीहै सवै न, तौ पी हैं सवै विषनंद के द्वारैं ॥११२॥

केसव

केसव कैसैं हूं ईठि न दीठत, दीठि परे अति ईठ कन्हाई ।
ता छिन मन मेरें कौं आंनि भई, सुभई कहि क्यौंहू न जाई ।
होयगी हांसी जु आवै कहूं कहि, जानि हितू हित वूझन आई ।
कैसें मिलौं री मिले विन क्यौं रहौं, नैंननि हेत हियें डर माई ॥११३॥

मतिराम

न्यौंते गये कहूं नेह लग्यौ मतिराम, दुहूं के लगे द्रग गाटे ।
लाल चले घर कौं तव वाल के, अंग अनंग की आगि सौं दाटे ।
ऊंचे अटा चढ़ि कांधे सहैली कै, ठोडी दियें चितवै दुष वाढ़े ।
मौंहन हूं मन गाढ़ौ कियें पग द्वैक, चलैं फिरि होत हैं ठाढ़ै ॥११४॥

विहारी

॥ दोहा ॥

चूनरी स्यांम स तार नभ, मुष ससि की उनहारि ।
नेह दवावत नीद ज्यौं, निरषि निसा-सी नारी ॥११५॥

लटकि लटकि लटकत चलत, दटक मुकट की छांह ।
चटक भरयौ नट मिलि गयौ, अटक भटक वन मांह ॥११६॥

अथ ईर्षा

परायो उत्कर्ष विषैं असहनता, सो ईर्षा सो तीन विधिः-
श्रवन, दर्शन, अणुमान[1] ।

अथ श्रवण ईर्षा

॥ सवैया ॥

विहरै व्रजचंद गुविंद सौं आज, अनंद सौं इंदु-मुषी दुलही ।
अपि मीचन पेलन कौं इन संग, उहै ललचावति है अतिही ।
यह वात सुआनि अचांनक ही सषि, काहू नैं कौंन हूं भांति कही ।
सुनि कैं अनपाइ रिसाइ हिये पिय सौं, तिय मान कियौ तवही ॥११७॥

मुकंद

भूलिहु काहू नारि कौ, लियौ नाम घनस्याम ।
सुनत सेज तजि उठि चली, रस मैं रिस ह्वै वांम ॥११८॥

भूलि कह्यौ कहुँ सुपन मैं, सीता स्याम सुजान ।
सुनत अनषि उठि प्रात ही, कियौ राधिका मांन ॥११९॥

अथ दर्शन ईर्षा

॥ कवित्त ॥

करत विलास इंदुमुषि अरविंद नैंनी,
रसिक गुविंद के समीप सचु पाइकैं ।
देषत ही गह्यौ हाथ हाथ मैं सु प्राणनाथ,

---

१ अ०— 'अनुमान'

सौति सिर सुमन पराग वरसायकें ।
ताही छिन छवीली छुडाइ गलवाह अन,
पाइ सतराइ भौंह नैननि रिसायकें ।
वीरी वगराय वेंदी भाल की मिटाय अंग,
अंग अकुलाय वैठी मांन कुंज जायकें ॥१२०॥

मुकंद

लषि मुकंद उर मुकर मैं, निज विंव सुवाल ।
आनि नारि कौ मानि भ्रम, मान कियौ ततकाल ॥१२१॥

दुरि मुरि काहू नारि सौं, कही वात कछु कान्ह ।
प्रतिविंवित लषि मुकर मैं, कियौ मानिनी मान ॥१२२॥

पति हित सौं कोउ नारि की, ओर लषत लषि लीन ।
तज्यौ षेल सतरंज कौ, मान माननी कीन ॥१२३॥

हरिवंस गुसाई जू[1]

हरि उर मुकर विलोकि अपनपौ,
विभ्रम विकल मान जुत भोरी ॥१२४॥

अथ अनुमान ईर्षा

॥ कवित्त ॥

रसिक गुविंद स्यांम सुंदर दुराये तुम,
उर नष चंद चारु अंवर उढ़ायकें ।
अंजन की आभा अधरनि मैं अनौषी सु तौ,
ढ़ांपी इक हाथ भली भांति सौ वनायकें ।
औपें उह अंगना के (सें) अंगनि के अंग लगे,
सरस सुगंध वृंद सहज सुभायकें ।

---

१ अ०— अ० प्रति में हरिवंस गुसाईं जू की पंक्तियां नहीं हैं ।

चारी चहु ओर करैं चतुर विहारी पय,
कैसें धौं छवीले छैल रापौगे छिपायकें ॥१२५॥

अथ विरह :

प्यारे के अनागम के कारण चितवन करि कें जो दुष्प, सो विरह ।

केसव

॥ सवैया ॥

सुधि भूलि गई भूल ए किधौं काहू कि, भूले ही डोलत वाट न पाई ।
भीत भयौ किधौं केसव काहू सौं, भेट भई किधौं भामिनी भाई ।
आवत हैं किधौं आई गये किधौं, आंवहिगे सजनी सुषदाई ।
आये नदनंदकुमार विचारि सु, कौन विचार अवार लगाई ॥१२६॥

कान्ह

यह चांदनी कान्ह मलीन भई, गन तारनि के पियरान लगे ।
चिरियां चहु ओर करैं चरचा, चकई चकवा नियरान लगे ।
निसि मैंन मरोरनि मांझ सिंगार, कछू जियरा न लगे ।
मन मोंहन तो हियरान लगे, नथके मुकता सियरान लगे ॥१२७॥

विहारी

नभ नाली चाली निसा, चट-काली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आये वन-मालीन ॥१२८॥

अथ प्रवास

नाम ही तैं लक्षण जानि लीजै ।[1]

---

1. अ० — प्रति में स्पष्ट नहीं है—'अथ प्रवास नाम ही ।। लछ्छन है प्रवास ।।'

प्रवास त्रिविधि :—

१. भूत २. भविष्य ३. वर्तमान

अथ भूत प्रवास

।। प्रहलाद कौ कवित्त ।।

छूटि छूटि परै आज वेंदो मेरे भाल पै तैं,
मुष पै तैं मोतिनु की लरी लरकति है ।
चूरेहू की कील डग भरत निकसि जाति,
जब तब जूरेहू की गाठि भरकति हैं ।
जानी न परति परदेस पिय प्रहलाद,
निकसि उरोजनि तैं आंगी अरकति हैं ।
नती तरकति कर चूरी चरकति सिर,
सारी सरकति आंषि वांईं फरकति है ।।१२९।।

अथ भविष्य प्रवास

।। गंग कौ कवित्त ।।

वैठी तिय सषिन मैं ललन चलन सुन्यौं,
सुष के समूह मैं वियोग आगि भरकी ।
कहै कवि गंग वाकें अंग कैं वसनहू कौं,
परसी जे सषी ताकैं व्यथा भई ज्वर की ।
प्यारी कौं परसि पौंन पौंन गयौ मांनसर,
परसति औरै गति भई मानसर की ।
सूषि गयौ सर औ सिवार जरि छार भये,
जल जरि वरि गयौ पंक सूषि दर की ।।१३०।।

[1]अंग राग अंग करि मोती-माल ग्रीव धरि वैठि,
वाल सौहैं अति चांदिनी विमल मैं ।

---

1. अ०—प्रति में 'काहू कौ कवित्त' दिया गया है ।

आनद की लहरैं सु राग-रंग गहरैं यौं,
वार वार वलकति जोवन के वल मैं ।
ताही समैं आली नंदनंदन गवन सुन्यौं,
सामुहैं निहारी मानौं वारी है अनल मैं ।
मोतिन के हार की नछार रही उर पर,
अंग-राग उडिगौ अवीर ह्वै कैं पल मैं ।।१३१।।

वाजू-वंद वलयादि वाहू तौ छिटकि परे,
नैंननि तें आसू इकसार चले वहिकैं ।
धीरज पलकहू न ठहर्यौ चपल अति,
चित्त अगवानी भयौ मारग कौं गहिकैं ।
गवन रवन कौ श्रवन सुनि निहचैकैं,
सवही सिधारे संग गोविंद उमहिकैं ।
प्रीतम सुजान के पयान समै पापी प्रान,
तू पयान ना करै करैगौ कहा रहिकैं ।

अथ वर्त्तमान प्रवास

॥ गंग कौ कवित्त ॥

काहू कह्यौ आंन आनि भ्रनक परि यौं कान,
मथुरा हू छाड़ी कहू दूरी केसौराय गौ ।
आज यह वात कोऊ प्यारी कौं जतावो जिनि,
मुरझानौं गात सो निपट मुरझा[य] गौ ।
चंदन की चोली औ कपूर च्वाँयें अंग अंग,
विरह की आंच तें अवाह ज्यौं लगायगौ ।
गंग कवि वृंदावन चंद-मुषी चंदहि,
निहारैगी तौ चंद जरि जायगौ ।।१३३।।

अथ श्राप

नाम ही लक्षण है ।

।। सवैया ।।[1]

प्यारी तिहारी लिषी नव मूरति, मांनवती मन मांहि छक्यौई ।
दोष मिटावन कौं अपनौं सिर नाई कैं, पाय लगैवौ न क्यौई ।
एते मैं आडे भये असुआ, छवि देषन काज मुकंद जक्यौई ।
का विधि ह्वै है मिलाप अबै विधि, या विधिहू नहि देषि सक्यौई ।।१३४।

प्रश्न :-

यह प्रवासई क्यौं न होइ श्राप वर्नन कैसें ।

उत्तर :—

श्राप बर्नन कवि की इछा ।
माद्री कौ औरु राजा पांडु कौ श्रापजन्य विरह भारतादिक प्रसिद्ध है, यातैं ।

।। कुलपति[2] कौ सवैया ।।

हेरि टरयौ दिन मैं वन व्याध यौं, सांझ समैं चकवा जुग पाये ।
आदर सौं बतरांन लगे कि, बजी निसी मैं करिहैं मन भाये ।
एतेई मांझ बयारि वही छुटि, आपनैं आपनैं पथ सिधायें ।
बंदिहू मैं विधि मंद मिलाप, न देषि सक्यौ कहि कैं मुरझाये ।।१३५।।

विहारी

इन अषियां दुषियानी कौं, सुष सिरज्यौ ही नांहि ।
देषत बनैं न देष तैं, अन देषैं अकुलाहि ।।१३६।।

कहूं न्यारे हू विभावादिक रस कौ प्रगटैं हैं ।

1. अ० + 'मुकुंद कौ' ।
2 अ० —प्रति में केवल 'कु०' दिया गया है ।

अथ विभाव निकरि

कुलपति

॥ सवैया ॥

भूमि झुके वदरा चहु ओरनि, दामिन रूप अनूप दिपायौ ।
फूल कवान (कमान) चढ़ी लषियै, सुनियै यह मोरनि कूक सुहायौ ।
कारी हरी सित पीत घटा छवि, सीरौ सुगंध समीर सुहायौ ।
अंतहू मांन रहैगौ न प्यारी, करै किन प्रीतम कौ मन भायौ ॥१३७॥

अथ अनुभाव निकरि

॥ कुलपति कौ कवित्त ॥

जव लपि पै है तव लोचन सिरै है सु तौ ।
वाढ़ी उर मांझ अति अतन की आगि है ।
मौन न रहत कछू कहि न सकत पुनि,
तलावेली उर मैं उठति जागि जागि है ।
मगन भये तें कही सुधि वुधि जै है सु तौ,
जागत विहात क्यौं हूं छिनक मैं भागि है ।
लागै हूं न पल हौं तौ भई हौं विकल तें तौ,
झूठें ही कह्यौ हौ आंपें देषें आंषि लागि है ॥१३८॥

अथ संचारी भाव निकरि

आंनंद सौं उमगे तकि दूरि तें, चौंके से चाहत रूप नवीनें ।
रोस उदास परेषे हुलास सु, प्रेम के त्रास भये अति दीनें ।
सौ हैं किये तें लजौं है षिजौंहैं, रिझौंहैं भये छवि जीतत मीनें ।
सोच सकोच सयानप सील, सुभायनि ये द्रग देषन कीनें ॥१३९॥

असे और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

अथ हास्य रस

विकृत अकार, विकृत वेष, विकृत वाणी, विकृत चेष्टानि कैं देषैं ते प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो हास्य। विकृत आकारादि आलंवन, तच्चेष्टा विसेस उदीपन, वदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव, चपलता, उत्कंठा, निद्रा, अवहित्था हर्षादिक संचारीभाव, हास्य स्थायी भाव। सेत वर्ण, प्रथम देवता, सो हास्य छ प्रकार—१. स्मित २. हसित ३. विहसित ४. उपहसित ५. अपहसित ६. अतिहसित।

॥ छप्पय ॥

स्मित कछु षिलित कपोल जथाव्रत द्रग अदृश्य रद।
हसित षिलित से द्रग मुषादि दिषयत कछु रदसद।
सनद रक्त मुष कुटिल नांक छवि मंद सु विहसित।
षिलत नांक उपहसित द्रष्ट कुंचित सिर कुंचित।
अपहसित थान विन सजल द्रग कंप ग्रीव सिर गुविंद भनि।
अति हसित थूल श्रुति कटु नयन अश्रु श्लेष कर पति धरनि ॥१४०॥

अथ स्मित

॥ सवैया ॥

वादि सिवा सिव सौं निज देह दुरायौ विभूति के डेल में नीकौ।
हारि रहे हरि जू हठि हेरि तिलोकनि मैं न मिल्यौ तन तीकौ।
आपहि तैं प्रगटि जव गोविंद देषि प्रभाव यौं संभु सती कौ।
नारि नवाइ कियौ मधुर स्मित गोला वगाय दियौ भस्मी कौ ॥१४१॥

इहां सिव आश्रयालंवन, सिव कौ प्रगटिवौ विषयालंवन, तच्चेष्टा विसेष उद्दीपन, नारि नवायवौ अनुभाव, चपलता अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव।

अथ हसित त्रिभंगी

श्रीपति नारायण सुजस परायण, नारद कौं कपि वदन दियौ।
छल नगर वसायौ जज्ञ रचायौ, मुनिवर तहां प्रवेस कियौ।

पहरन वरमाला वाहन वाला, छिन छिन उझकत वीच सभा ।
गोविंद सुर सैंनी सैंना वैंनी, हसति परस्पर देषि प्रभा ॥१४२॥

इहां देव-सभा आश्रयालंवन, नारदजू विषयालंवन, तिन कौ उझक़िवौ उद्दीपन, सैंना वैंनी अनुभाव, अवहित्या संचारीभाव, हास्य स्थाई-भाव ।

विहारी

रवि वंदौ कर जोरि यौं, सुनैं स्यांम के वैन ।
भयेह सौंहैं सपिनु के, अति अनपैं हैं नैंन ॥१४३॥

इहां गोपी आश्रयालंवन, श्रीकृष्ण विषयालंवन, ताके वचन उद्दीपन, सैंना वैंनी अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव ।

अथ विहसित

मुकंद

॥ सवैया ॥

जानि फुलेल निसि मैं मसी, जल लै मुष लेप कियौ सुपकारी ।
सोइ कैं भोर उठ्यौ अलसात, मुकंद कहै सुभई छवि न्यारी ।
आंनि अथांई पै वैठ्यौ जहां, ढिग ही पनघाट भरैं पनहारी ।
देषत वा मुष की सुषमा सव, आपस मैं विहसैं नर नारी ॥१४४॥

इहां नर नारी आश्रयालंवन, मुष-सोभा विषयालंवन, ताकी चेष्टा उद्दीपन, सैंना वैंनी अनुभाव, हास्य स्थायी भाव । (हर्ष अवहित्था संचारी-भाव)

विहारी

पर तिय दोष पुरान सुनि, लषि मुसकी सुषदानि ।
वस करि रापी मिश्र हू, मुह आई मुसक़ानि ॥१४५॥

इहां मिश्र आश्रयालंवन, सुषदानि जो नाइका सो विषयालंवन, ताकौ घूंघट मैं मुसकाइवौ उद्दीपन, सैंना बैंनी अनुभाव, अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव।

अथ उपहसित

॥ दोहा ॥

तिय संग निसि रमि भोर ही, कहत फिरत अज्ञान।
सुनि सुनि नाक फुलाइ कै, हसत तटस्थ सुजान ॥१४६॥

इहां याकौ कहिवौ विषयालंवन, तटस्थ आश्रयालंवन, बिधिवत बतायवौ उद्दीपन, नाकफुलायवौ अनुभाव, अवहित्था संचारी भाव, हास्य स्थायी भाव।

बिहारी

सुत पितु मारन जोग लषि, भयौ भयें सुत सोग।
फिर हुलस्यौ उह जोइसी, समुझ्यौ जार सजोग ॥१४७॥

इहां जोइसी आश्रयालंवन, जोइसिनि विषयालंबन, पुत्र जनम के गृह उद्दीपन, नेत्र संकोचन अनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारीभाव जानि लीजै। हास्य स्थायी भाव।

अथ अपहसित

॥ काहू कौ कवित्त ॥

आयौ परदेस तें कितेक दिन बीतें कंत,
बैठ्यौ चित्रसारी सो सवारी वहु भायकें।
लेषक के साज कौं सिंगार मिसरानी जानि,
मसि मुष लाइ यौं फुलेल चित चायकें।
हंस पाक अंजन दै तिलक सु हरताल,
दीपक कौं साजि चली मंदिर सुभाइकें।
देषि भय भेस काहू पौंन कौ प्रवेस जानि,
कूदि परे मिश्र जू अटा तें अकुलाइकें ॥१४८॥

इहां मिश्र विषयालंवन, तटस्थ आश्रयालंवन, मिश्रानी के गुन उद्दीपन, वदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव अरु अवहित्था संचारीभाव जानि लीजै। हास्य स्थायी भाव ।

विहारी[1]

वहु धन लै अैसान कैं, पारौ देत सराहि ।
वैद वधू तव विहसि कैं, रही नाह मुष चाहि ।।१४६।।

इहां वैद-वधू आश्रयालंवन, वैद विषयालंवन, ताकी नपुंसकता उद्दीपन, सैंनां वैंनीं अनुभाव, उत्कंठा हर्ष संचारीभाव जानि लीजे। हास्य स्थायी भाव ।

अथ अति हसित

सोमनाथ

।। सवैया ।।

जांनि कैं आंवदिनी वर की, चित चायनि सौं तितहीं करि कैं रुष ।
ठाढ़ी भई सिगरी तिय गांउ की, नीकैं वरात कौ देषन कौं सुष ।
वैल पै नंग भुजंग के भूषन, भक्षत भंग विसारत हैं दुष ।
अैसे निहारत ही हर कौं, हहराय हसी सव अंचल दै मुष ।।१५०।।

इहां सिव विषयालंवन, गांउ की स्त्री आश्रयालंवन, सिव की चेष्टा उद्दीपन, वदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव अरु अवहित्था संचारीभाव जानि लीजै। हास्य स्थायी भाव ।

केसव

।। सवैया ।।

आई है एक महावन तें तिय, गावति मांनौं गिरा पग धारी ।
सुंदरता जनु काम की कामिनि, वोलि कह्यौ वृषभांन दुलारी ।

1 अ०—प्रति में विहारी का दोहा नहीं है ।

गोपी कें ल्याई गुपालहि वे अकुलाइ, मिली उठि सारद भारी ।
केसव भेटत ही भरि अंक हसी, सब कीक दें गोपकुमारी ।।१५१।।

इहां गोपी आश्रयालंबन, राधा कृष्ण विषयालंबन, तिन कौ मिलिवौ उद्दीपन, वदन नेत्र संकोचनादि अनुभाव अरु चपलता उत्कंठा हर्ष संचारी भाव जानि लीजै । हास्य स्थायी भाव ।[1]

अथ करुणा रस

अनिष्ट वस्तु प्राप्ति भये तैं प्रगट होइ सोक की वृद्धि जो मन मैं, सो करुणा । सोच्य वस्तु आलंबन, ताके गुन उद्दीपन, दैव निंदा पृथ्वी—पतनादि अनुभाव, निर्वेद अप्समार मोह विषाद दीनतादि संचारी भाव, सोक स्थायी भाव । कपोत समान बरण ।

जमराज देवता

॥ कवित्त ॥

इंद्रपुरी इंद्र जीति इंद्रजीत नांउ पायौ
वांध्यौ हनुमंत महा गोविंद वली भयौ ।
ताही कौं भषत अब स्वान ए सिचान आदि,
दई निरदई ऐसौ कौतुक कहा ठयौ ।
रोइ रोइ राछिसी यौं सबद सुनावै उप-,
-जावै उर दुष्ष कौ समूह सब कैं नयौ ।
मो-सी दीन दुष्षित कौ द्वार विसराय हाय,
हौं न जानौं ऐसौ सुत भौंन कौंन कैं गयौ ।।१५२ ।।*

1 अ०—प्रति में व्याख्या नहीं दी गई है । पर नीचे लिखा विहारी का दोहा और दिया गया है । वि० वहुघन लै ऐसान करि पारौ देत सराहि ।
गैंद वधू यह भेद लषि, रही नाह मुख चाहि ।।

* ग्रंथ में अनेक स्थानों पर छंदों की संख्या नहीं दी गई है । अलवर एवं जोधपुर वाली दोनों प्रतियों में छंदों का क्रम नहीं बैठता क्योंकि—

(1) संख्या में अंतर है ।
(2) दोनों प्रतियों में दिए गए उदाहरणों के छंद न्यूनाधिक हैं ।

इहां मंदोदरी आश्रयालंवन, इंद्रजीत कौ मरिवौ विषयालंवन, ताके गुन उद्दीपन, देव निंदा, अश्रुपात अनुभव, मोह अप्समार, दीनता विषाद संचारी भाव। सोक स्थायी भाव।

करुणा रस कौ अरु वियोग शृंगार कौ भेद इहां सोक स्थायी भाव उहां रति स्थायी भाव और उदाहरण एक सौ है।

अथ रौद्र रस

अतित क्रोध की वृद्धि तें प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सौ रौद्र। सत्रु आलंवन, ताकी चेष्टा विसेस उद्दीपन, नेत्र मुष अरुणता सस्त्र प्रहारादि अनुभाव, गर्वमति उग्रता आवेगादि संचारीभाव क्रोध, स्थायीभाव। रक्त वर्ण[1]।

रुद्र देवता

॥ कवित्त ॥

श्री गोविंद सुघट सुभट्टनि के ठट्टनि तैं,
विटप विकट्टनि कटाय उपटाय हौं।
मठ्ठ मठ्ठ जुट्टि जुट्टि राछिसिनी रुद्दित यौं,
प्रगट प्रचंड घनैं घोर घोष छाय हैं।
भृकुटी चढ़ाय कहैं अंगद सौं राघौ दश—
कंधर के कंध धाय धूरि मैं मिलाय हौं।
निपट निसंक कहौं लंक करौं रंकिनी ज्यौं,
नाम रामचंद्र आज तव ही कहाय हौं॥ १५३ ॥

इहां श्री रामचन्द्र आश्रयालंवन, रावन विषयालंवन ताके गुन उद्दीपन, भृकुटी चढ़ायवौ अनुभाव, उग्रता संचारी भाव, क्रोध स्थायी भाव।

---

1 अ० + 'देवता'

।। केसव कौ छप्पै ।।[1]

मधु मद मर्द्दन कियौ वहुरि मुर मर्द्दन कीनौं,
मारयौ कर्कस नर्क संष हति संष जु लीनौं,
निह कंटक सुर कटक कट्यौ कैटभ वपु षंड्यौ,
परदूषन त्रिसरा कवंध जिहि षंड विहंड्यौ,
कुंभकरन जिहि संहरयौ पल न प्रतिज्ञा तें टरौं।
जिहि वांन प्रांन दसकंठ के कंठ दसौं षंडन करौं ।।१५४।।

इहां विभावादिक वैसे ही जानि लीजै ।

।। सूरदासजू कौ पद ।।

जौ हौं हरिहि न सस्त्र लिवाऊं ।
तौ लाजौं गंगा जनिनी कौं, सांतन सुत न कहांऊं ।। इत्यादि ।।

भीष्म जू आश्रयालंवन, भारत विषयालंवन श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा उद्दीपन, अनुभाव, संचारी, स्थायी वैसौ ही जानि लीजै ।।

सोमनाथ

जौ पै नंदनंदन कहांऊं मथुरा मैं ।
आज कंस कौ निपट निरवंस करि आऊं मैं ।।

इहां श्रीकृष्ण आश्रयालंवन, कंस विषयालंवन ताकी दुष्टता उद्दीपन, अनुभाव, संचारी, स्थायी वैसैं ही जानि लीजैं ।[2]

अथ वीर रस

उत्साह की वृद्धि तें प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जौ मन मैं, सो वीर-रस । जाहि देषै उत्साह वढै सो आलंवन ताकी चेष्टा उद्दीपन, सूरता,

---

1 अ०—प्रति में यहां से सामग्री नहीं है ।
2. अ०—यहां तक की पूरी सामग्री नहीं है । 'वीर रस' से शुरु होता है । उदाहरण और व्याख्या की पूरी सामग्री अलवर की प्रति में नहीं मिलती ।

धीरता, प्रभाव, पराक्रम पराक्षेप वाक्यादि अनुभाव, हर्षादिक संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव। सुवर्ण वर्ण। महेंद्र देवता। सो वीर-रस चार विधि—जुद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर, दयावीर।

अथ जुद्ध वीर

॥ कवित्त ॥

क्रुद्धित ह्वै जुद्ध मध्य वापुरे विवुध वृंद,
भीत कै भजाय गरवायौ अपमान है।
तेरे सिर कट्टन मैं मेरी ये सुभट्टताई,
भट्टनि के ठट्ट मैं न पावै सनमान है।
मो कर कोदंड तें प्रचण्ड छुटे वग्गनि कौं,
वेग वहै गोविंद उदंड वलवान है।
व्याल भाल उदिज्ज्वाल गृस्यौ जगज्जाल सो ही,
रुद्र कछू सहि है औ विश्व मैं न आंन है ॥१५६॥

इहां श्री रामचंद्र आश्रयालंवन रावन विषयालंवन, ताके गुन उद्दीपन, पराक्षेप वाक्यादि अनुभाव, हर्ष गर्व संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव।

रौद्र कौ अरु जुद्ध वीर कौ भेद—

जहां समता की सुधि रहै सो जुद्धवीर अरु सम विषम की सुधि नही, सो रौद्र।

अथ दानवीर

इहां तीर्थपात्र और दान समय कौ ज्ञान ए विभाव।

॥ सवैया ॥

जाचक आनि सधारन जे जन, जाचत मोहि तिन्हैं लषि जीजित।
प्रान प्रजंत विभौ जितनी पुनि दै, हित सौं अति आदर कीजित।
आये हौ आप मया कै महेंद्र गुविंद, विनै नल की यौं सुनीजित।
प्रानिनि तें प्रिय वस्तु कहा सु तौ, दै कै तुम्हैं जग मैं जस लीजित ॥१५७॥

इहां नल आश्रयालंवन, इंद्र विषयालंवन, ताकौ मांगिवौ उद्दीपन, प्रभाव अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, उत्साह स्थायी भाव ।।

कुलपति

।। सवैया ।।

केतिक दानि कौं मेरु की संपति को, जग मांझ कुवेर कहायौ ।
वादि ही कौं जननी जनैं जाहि रहै, चुप यौं तकि जाचक आयौ ।
कुंडल औ रसना हकि ते कहैं, दीवें कौं जाकौं तैं ज्यौ तरसायौ ।
सीसहू काटि कृपान सौं देंउगौं, होइ जौ भिक्षक कौ मन भायौ ।।१५८।।

इहां जगदेव आश्रयालंवन, कंकाली विषयालंवन, ताकौ मांगिवौ उद्दीपन, प्रभाव अनुभाव, हर्ष संचारी भाव, उत्साह स्थाई भाव ।

अथ धर्मवीर

।। सवैया ।।

धाम धरा धन द्रोपदी हू (पुत्र) पुनि, आपनी देह हू जानौ वृथा ही ।
भ्रातहू पुत्र पउत्रहू मित्रहू नांतें, गुविंद जिते जग मांही ।
लोकहू लाज प्रजा गज वाजहू की, रतिहू मतिहू अवगांही ।
राज समाज सवै सुष साज सु, धर्म विना कछु काज के नांहीं ।।१५९।।

इहां युधिष्टिर आश्रयालंवन, कैरव - सभा विषयालंवन, ताके गुन उद्दीपन, धीरता अनुभाव हर्ष संचारीभाव, उत्साह स्थायी भाव ।

अथ दयावीर

।। सवैया ।।

सिंह[1]जू आज प्रसंग मैं आनि परी, यह नंदिनी धेनु दुप्यारी ।
सांझ परी पय पीवन कौं वछरा, उतकंठित है अति भारी ।

---

१. अ० —'सिंघ' कई अन्य स्थानों पर भी यह भेद मिलता है ।

दीजियै याहि अबै विसराइ गुविंद, इती विनती है हमारी।
मोतन कौं भपि मित्र भली विधि तृप्ति ह्वै, कीजियै वृत्ति तिहारी॥१६०॥

इहां और कौ दुष दूरि करिवौ विभाव, गर्व, धर्म संचारीभाव।

॥ कुलपति कौ सवैया ॥

देषत मेरे को जीव हनैं सुनिकैं धुनि, कोस हजार क धाऊं।
और कौं दुष्प न देपि सकौं जिहि भांति, छुटैं तिहि भांति छुटाऊं।
दीनदयाल है छत्रिय धर्म तहां, सिव हौं जग व्याधि वहाऊं।
तू जिन सोचै कपोत कपोतक, आपुनी देह दै तोहि वचाऊं॥१६१॥

अथ भयानक रस

भय की वृद्धि तें प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं सो भयानक रस। जाहि देपैं भय होइ सो आलंवन, ताकी घोर चेष्टा विसेप उद्दीपन, वैवर्ण्य गद गद वाक्यादि अनुभाव, आवेग कंप अप्समारादिक संचारी भाव, भय स्थायी भाव। कज्जल वर्ण कालदेवता।

॥ कवित्त ॥

घोर घोर वदन रदन भुजदंड वेप,
घोर घनी सोहैं संग सभा जातुधानि की।
कारे कारे विकट कठोर अंग भारे भारे,
उपमां कराल महाकाल के समान की।
चपला-सी चपल चलावै वह ओर द्रष्टि,
कहति गुविंद भरी गरव गुमान की।
ऐसे दुरबुद्धी दुराचारी दुष्ट रावन कौं,
वाग मैं विलोकि भई कंपमांन जांनकी॥१६२॥

इहां सीताजू आश्रयालंवन, रावन विपयालंवन ताकी घोर चेष्टा उद्दीपन, वैवर्ण्य अनुभाव जानि लीजै। कंप संचारीभाव, भय स्थायीभाव।

अथ वीभत्स रस

जुगुप्सा की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो वीभत्स। मसान भूमि प्रेतादि आलंबन, आंत विदारणादि उद्दीपन, नेत्र निमीलन रोमांचादि अनुभाव, आवेगादि संचारीभाव, जुगुप्सा स्थायीभाव। नील वर्ण। महाकाल देवता।

॥ कवित्त ॥

कमल करनि के गुविंद करणाभरण,
आंतनि के डोरा मंगलीक जे धरत हैं।
नसा जाल आभूषन साल गज षाल माल,
रुंडनि की मुंडनि की गेंद उछरति है।
श्रोनित के अंग राग चरवी महा मद कौं,
प्याले षोपरीनी के मैं पीवति फिरति है।
भाय भरी भूत भाम भूतनि सौं भेट,
भारत मैं भली भांति भांवरें भरति हैं॥ १६२॥

इहां प्रेतादि विषयालंबन, देषनवार आश्रयालंबन, आंत विदारणादि उद्दीपन, देषनि वारेनि के अंगनि मैं रोमांच, नेत्र निमीलनादि अनुभाव अरु आवेगादि संचारीभाव जानि लीजै। जुगुप्सा स्थायीभाव।

अथ अद्भुत रस

आश्चर्य की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो अद्भुत रस। विलक्षण वस्तु आलंबन ताकै गुन उद्दीपन, संभ्रमादि अनुभाव, वितर्क हर्षादि संचारी भाव, विस्मय स्थायी भाव। पीत वर्ण। मदन देवता कोऊ ब्रह्मा हू कौं कहैं हैं।

॥ सवैया ॥

वावन[1] रूप अनूप उहै असुरेंद्र के, द्वार गयौ ह्वै भिषारी।
मांगी मही पग तीन गुविंद छली, छिन मैं वढ़िगौ अति भारी।

---

1 अ० 'वावन';

एकहि यौं पग पेलि पताल, दुती पग मैं इल संपति सारी।
अद्भुत कौतुक देषि भयौ विसमैं, वलि भूपति विक्रम धारी ॥ १६४ ॥

इहां वलि आश्रयालंवन, वावन विषयालंवन ताकौ वढ़िवौ उद्दीपन, संभ्रम अनुभाव, वितर्क हर्ष संचारीभाव जानि लीजै। विस्मय स्थायी भाव असें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै। सो अद्भुत चार प्रकार-अत्युक्ति, चित्रोक्ति, भ्रमोक्ति, विरोधाभास, अथ अत्युक्ति। अर्थ कौ अतसै वर्नन कीजै सो अत्युक्ति।

॥ सवैया ॥

सवही के सहाय गुविंद सदां, भगवान वराहावतार हरी।
धसि सिंधु कलेस कैं ल्याये मही, निज दंत पैं देषि कैं दुष्ष भरी।
जिहि हार उडग्गन दर्पन चंद, कदंव्यनी विंदुका भाल धरी।
श्रुति भूषन शूर सही सुरवाहिनी, मालती माल रसाल करी ॥ १६५ ॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

आई वरसांनैं तैं वुलाई वृषभान सुता,
निरषि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई।
चक्क चकईनि कौं चुकाये चक्षु चितै चारु,
चौंकत चकोर चका चौंधी-सी चकै गई।
नंदजू के नंदन कैं नैंननि अनंदमई,
नंदजू के मंदिरनि चंदमई छ्वै गई।
कंजनि कलिनुमई कुंजनि अलिनुमई,
गोकुल की गलिनु नलिनु मलिन ह्वै गई ॥ १६६ ॥

अथ चित्रोक्ति

अर्थ कौ विचित्र वर्नन कीजै, सो चित्रोक्ति।

॥ कवित्त ॥

द्वै गिरि उगेलैं मुकतावलि तडित इक,
तामैं तैं समूह सुमननि कौ भरतु है।

थावर ह्वै मधुकर सरद तुसार कर,
विजन बयारि इच्छा जिय मैं धरतु है।
सोये जुग समर सरासन सिथल-बंध,
छायौ अंधकार यौं गुविंद उचरतु है।
ऐसी छवि आली री अलौकिक बिसेष ताहि,
देषि देषि मेरौ मन कौतुक करतु है ।।१६७।।[1]

अथ भ्रमोक्ति

उपमेय विषैं उपमान मांन कौं भ्रम होई, सौ भ्रमोक्ति।

।। सवैया ।।

सूरज की किरनैं परचंड लगी, निज गंडथली मैं निहारी।
सीचत सूंडि सौं नीर निकारि, कियौ निधि तुच्छ छ हुतौ अति भारी।
ता मधि पंक तहां मय नांक मैं, कंद की बुद्धि गुविंद बिचारी।
दंत गडाई रहे सु बिनायक, होहु सहाय सदा सुषकारी ।। १६८ ।।

सोभ

आली बन माली पैं सिधारो प्यारी राधे आज,
सघन तमाली झुकी झिलमिली जाती हैं।
अंगही के सहज सुगंध अनंदमई,
भौरैं जे अलि दिनि की रंगरली जाती हैं।
ठौर ठौर मोरनि की कोरैं दरसात सोभ,
भौंरैं बैंनी व्याल कैं नजरि छली जाती है ।
चाहि चाहि चंद-मुषी चांदिनी चहूंघां चाली,
चंचल चकोरनि की चुगैं चली जाती हैं ।। १६९ ।।

मुकंद जू कौ

।। दोहा ।।

ढ़ाक कुसुम भ्रम तें अली, परन लग्यौ सुक तुंड।
तिहि जंवूफल जानि कैं, ऊंचौ कियौ भुसुंड ।। १७० ।।[2]

---

1. अ० + प्रति में सोभ का कवित्त यहीं दे दिया गया है। जो० प्रति यह में कवित्त भ्रमोक्ति के उदाहरण स्वरूप दिया गया है ।
2. अ० — "मुकंद जू कौ" दोहा अ० प्रति में नहीं है।

अथ विरोधाभास

पद विरुद्ध अविरुध अरथ जहां विरोधाभास ।

केसव

॥ कवित्त ॥

परम पुरुप कुपुरुप संग सोभियत,
दिन दान मति अरु दान सौं न रति है।
सूरज कुल कलस राहु कैं रहत सुष
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति है।
अकर कहावत धनुप धरैं देषियत,
परम कृपाल औ कृपान कर पति है।
विद्यमान लोचन ह्वै हीन वाम लोचन तैं,
केसौदास राजा राम अद्‌भुत गति है ॥ १७१ ॥

अथ सांतिरस

निर्वेद की वृद्धि तैं प्रगट होइ अलौकिक वस्तु जो मन मैं, सो सांतिरस। जगत की अनित्यता आलंवन, पुन्याश्रम हरि क्षेत्र उद्दीपन, रोमांचादि अनुभाव, हर्पादिक संचारी भाव, निर्वेद स्थायी भाव। चंद्र समान वर्ण। नारायण देवता।

॥ सवैया ॥

फूल प्रजंक सिला अहि हारहु, दुज्जन सज्जन हूं हितकारी।
कीचहू कंचन कीच कपूरहू, नीचहू भूपतिहू अति भारी।
दुष्पहू सुष्पहू मान समान, सबै न टरै मति टारी।
बैठि कहूं वन पुन्य के मव्य प्रलापौ, गुविंद विहारी विहारी ॥ १७२ ॥

इहां वस्तु की अनित्यता विसयालंवन, कहनवारौ आश्रयालंवन, पुन्य वन उद्दीपन रोमांच अनुभाव, हर्प संचारी भाव जानि लीजै। निर्वेद स्थायी भाव।

अरु रस परसपर प्रगट होत है, शृंगार तैं हास्य, रौद्र तैं करुणा, वीरता, अद्भुत; वीभत्स तैं भयानक, असे औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै।

सवैया

पंचमुषी शिव के द्रग पंडह, आंनि कैं मूंदि करी चतुराई।
कोमल हाथनि दक्ष सुता, सु पवित्र करै सुकृती हू सदांई।
ह्वै कर वीन नवीन बजै कहि कौ, हौं गुविंद यहैं धुनि छाई।
मौन किये असटादस सौं सुत सोव, कृपा करि होहु सहाई॥ १७३॥

इहां शृंगार तैं हास्य तातैं अद्भुत प्रगट भयौ। पुन:

॥ कवित्त ॥

रावन कुबुद्धीनें विरुद्ध हित जुद्ध मध्य,
क्रुद्ध कैं घनास्त्र रामचंद्र पै चलायौ हैं।
ताकै प्रतीकार कौं प्रभंजन प्रबल सस्त्र,
साजि कैं गुविंद चाप चाव सौं चढ़ायौ है।
सनमुष चंचला की चकाचौंधी चितै चारु,
सीता सुधि आइ कैं सुरूप चित छायौ है।
गात मैं पुलक प्रेम वाढ्यौ रघुनाथजू के,
हाथ मैं सरासन सरस सिथलायौ है॥ १७४॥

इहां बीर तैं शृंगार प्रगट भयौ॥ पुनः

॥ कवित्त ॥

श्रोनित चुचात गात तात कौं सकल मात,
दीन ह्वै रुदन करैं विविधि प्रकार है।
देषत ही अधर चवाय भृकुटी चढाय,
अरुन अरुन नैंन कीनैं तिहि वार है।
क्रुद्धित अधिक जिय जुद्धनि के जैतवार,
गोंविंद वलिष्ट वीर विक्रम अपार है।

पंडन सहस्त्र भुज-दंडनि प्रचंड धार,
धार्‌यौ भृगुनंद ग्रैसो कठिन कुठार हैं ।। १७५ ।।

इहां वीभत्स तै ग्ररु करुणा तें रौद्र प्रगट भयो । पुनः

।। सवैया ।।

विपरीति समें पिक वैनी की वैनी कौ, रूप उरोजनि वीच पग्यौ ।
पिय ग्रानद नीद मैं सूं चत स्वप्न, मनौं कहु जुद्ध ही हौंन लग्यौं ।
तव ही पुली ग्रांषि मुकंद कहैं, छवि देपत ही वह ठीक ठग्यौ ।
जिय जानि कृपानि महाभय मांनि, सुग्रासन कौं तजि ऊठि भग्यो ।। १७६ ।।

इहां शृंगार तैं भयानक प्रगट भयौ । ग्रैसैं ग्रौरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै ग्रर रसनि को परसपर विरोध हू है । शृंगार कौ, वीभत्स कौ, हास्य कौ, करुणा कौ, वीर भयानक कौ, रौद्र कौं, ग्रद्‌भुत कौ ग्रैसे ग्रौर हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

।। मुकंद जू कौ सवैया ।।

चंदन चंद्रक चर्चित चारु, सरोज की सेज सुगंधित साजति ।
ता पर चंद्रिका मध्य मुकंद जू, चंदमुषी पति संग विराजति ।
वंक लगे कुच वीच नप-छत, श्रोनत की तहं यौं छवि छाजति ।
छाती छवीली की कुंकुम पंक, ग्रलंकृत मांनो भली विधि भ्राजति ।। १७७ ।।

इहां शृंगार मैं वीभत्स है, यह विरोध है । ग्रैसै ग्रौर हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ग्ररु कहू विरोध नहीं हूं है । ग्रगांगी कौ वर्नन है जहां ग्रौरु देस काल कौ भेद है तहां ।

ग्रथ ग्रंगांगी कौ वर्नन

।। सवैया ।।

जा करि कैं छवि पावति ही रसना, सु यहै कर है सुपदानी ।
जंघ उतंग उरू कटि नाभि, उरोजनि कौं परसै हौ गुमानो ।

मोचत ही नित नीवी के वंद, गुविंद कही कहीकें यौं कहांनी ।
भारत भूरीश्रवा भयौ भंग कट्यौ, कर जोवति रोवति रानी ।।१७८।।

इहां शृंगार अंग है करुणा अंगी है असैं होइ तौ दोष नहीं ।

अथ देस काल के भे[द] कौ उदाहरन

॥ सवैया ॥

एक धरैं कमलांसनि पै कर, एक सुदर्शन चक्र धरै है ।
एक बिषातुर संभु के सीस समुद्र मथान मैं एक, अरै हैं ।
वेद पुरान बषानत हैं जिहि, नाम लियें मन काम सरैं है ।
असे गुविंद चतुर्भुज राय, सहाय सदां सब ही की करै हैं ।।१७९ ।।

इहां शृंगार, रौद्र, करुणा, अद्भुत, ए च्यारि रस एक ही ठौर हैं । परि देस काल कौ भेद है यातें दोष नही ।[1] यह असं लक्ष क्रम ध्वनि विषै रस निरूपण भयौ । अथ रस कौ कारण भाव है यातें भाव निरूपणं देव, मुनि, राजा इन विषयक मन की जो प्रीति सो भाव । अरु प्रधान तैं संचारी कौ निरूपण सो भाव ।[2]

अथ देव रति भाव ध्वनि

॥ कवित्त॥

स्वर्ग समुद्र सैल भूतल रसातल पताल,
आदि कहूं क्यो न जनम लस्यौ करैं ।
काहू जाति काहू पांति काहू भांति देषि देषि,

1. अ० + असे और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

2. अ० + सवैया
राजत भूप अनूप हिमांचल गोविंद आनंद सो वड़ भागी ।
उत्तम वात सदा सिव कीत हो नारद आनि कही रस पागी ।।
वैठी पिता ढिग पारवती सुनिकै स[व]भांतिन सौं अनुरागी ।
कौंडन के सत पत्र के पत्रनि नारिन वाई संमारन लागी ।

सज्जन सराहैं भावै दुर्ज्जन हस्यौ करें ।
पूज्य अमरनि के पुरंदरादि देवनि के,
मुकट सिंघासन की सिढ़ीनु घस्यौ करें ।
अैसे व्रज चंद श्री गुविंद के पदारविंद,
जौ पै उर अंतर निरंतर वस्यौं करें ॥१८०॥
स्वर्ग कौं जु चाहै सो तौ स्वर्ग ही सिधावौ किन,
पावै किन मुक्ति जानें मुक्ति जु विचारी है ।
ध्यावत ब्रह्म सो तौ ब्रह्म ही कौं ध्यावौ जावौ,
सक्ति ही मैं मिलौ जानै शक्ति चितधारी है ।
हौं तौ श्री गोविंद जू के पद अरविंदनि की,
दासी सुपरासी वार वार वलिहारी है ।
मेरें सरवस्व सरवोपर सुजान सदा,
सघन निकुंज के विहारी पिय प्यारी है ॥१८१॥

॥ राजा नागरीदास कौ सवैया ॥

जाति के हैं हम तौ ब्रजवासी रही कोउ नांहि नें जाति की वाधा ।
देस है घोष न चाहत मोष कौं तीरथ श्री जमुना सुष साधा ।
संतनि कौ सतसंग अजीवका, नित्य विहार अहार अगाधा ।
नागर कैं कुल देव गोवर्द्धन, मौहन मित्र है इष्ट है राधा ॥१८२॥[1]

विहारी

मेरी भव वाधा हरौ, राधा नागर सोइ ।
जा तन की झांई परै, स्यांम हरित दुति (द्रुति) होइ ॥१८३॥

अथ मुनि रति भाव ध्वनि

॥ सवैया ॥

आजु भ[यी]क्रति कृत्ति महा यौं, गुविंद कहैं मम भाग जगे हैं ।
श्री मुनि नारद दर्शन तें अघ ओघ, सवै दुप दुरि भगे हैं ।

1 अ० + नागरीदास का सवैया अलवर वाली प्रति में नहीं है ।

जद्यपि चाहौं सुनौं तव आनन उत्तम, वात हियै मैं पगै हैं ।
आंवते आपुने मंदिर मैं कहौ का कौं, कल्यान भले न लगैं हैं ।।१८४।।

।। व्यास जू कौ पद ।।[1]

विहारहि स्वामी विन को गावै ।
विन हरि वंस राधावल्लभ कौं को रस रीति सुनावै ।।
रूप सनातन विन को वृंदा विपिन माधुरी पावै ।।
कृष्णदास विन गिरधर जू कौं को अव लाड लडावै ।।
मीरांवाई विन को भक्तनि पिता जानि उर लावै ।।
स्वारथ परमारथ जैमल विन को सक वंध कहावै ।।
परमानंद दास विन अव को लीला गाय सुनावै ।।
सूरदास बिन पद रचना कौं कौन कवैं कहि आवै ।।
और सकल साधू अनन्य विन को कलि काल कटावै ।।
व्यास दास कैं इन विन अव को तन की तपति बुझावै ।।१८५।।

।। कवित्त ।।[1]

पावन गुविंद घर वगर नगर कीनौं,
दीनौं अति कृपा कैं सुहांवन दरसु है ।
हरिजू के प्यारै सब जगत तैं न्यारे रहैं,
सदा मतवारे छके प्रेम सुधा रसु हैं ।
वदन निहारौं हसि आरती उतारौं पद,
रज सिर धारौं वारि डारौं सरवसु है ।
भई मन भाई आये संत सुषदाई या तैं,
धन्य धन्य माई मेरैं आजु कौ दिवसु है ।

अथ राज रति भाव ध्वनि

श्री अवधेस कुमार तिहारे तुरंगनि की अवली विचरै हैं ।
रेनु उडै तिन के पुर की सु चढ़ै,न भयै पुनि भू पै परे हैं ।

1-1. अ०— 'व्यास जू कौ पद' तथा कवित्त अलवर वाली प्रति में नहीं दिया गया है । उसमें केवल एक सवैया ही उदाहरण स्वरूप दिया गया है ।

तातैं भई अति गंग मैं कीच, कवीजन गोविंद यौं उचरै है ।
संकित भारनि धारि सकै सिव, सीस तैं धार धरा पैं धरै हैं ।।१८७।।

सेवक

॥ कवित्त ॥

कीनें छत्र छिति पति केसोदास गनपति,
दसन वसन वसुमति करयौ चारु है ।
विधि कीनों आसन सरासन असमसर,
आसन कौं कीनौं पाक सासन तुषार है ।
हरि कीनो सेज हरि प्रिया करयौ नक मोती,
हर कीनौं तिलक हरा[री]हू करयौ हार है ।
राजा दसरत्थ सुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरौ सुजस सब जग कौं सिंगार हैं ।।१८८।।

॥ कवित्त ॥

पायक पवन कैसे मन कैसे मीत श्री,
गुविंद सुपदायक हैं छवि के निकेत हैं ।
मोती सिर मोतिनु कलंगी गजगाह जीन,
जटित जराय कैं जँजीरनि समेत हैं ।
चित्रित हैं चित्र चारु नृत्यत विचित्र गति,
चौपनि सौं चतुर चुरायें चित्त लेत हैं ।
पुत्र भये आज महाराज दसरत्थ साजि,
ऐसें वाजि केते कविराजनि कौं देत हैं ।।१८९।।

ऐसें हीं स्त्री पुत्रादिकनि विषयक मन की जो प्रीति, सो भाव कहियै । अथ प्रधान तैं संचारी की निरुपण ।

॥ सवैया ॥[1]

राजत भूत(प) अनूप हिमाचल गोविंद आनंद सौं बड भागी ।
उत्तम वात सदा सिव की तहं, नारद आनि कही रस पागी ।
वैठी पिता ढ़िग पारवती सुनी कें, सब भांतिन सौं अनुरागी ।
क्रीडन के सत पत्र के पत्रनि नारि नवाइ सँभारन लागी ॥१६०॥

इहां सिव विषै उत्कंठा भई ।

अथ रसाभास

रस सौं भासें अरु है नही, सो रसाभास

॥ सवैया ॥

जोवन रूप अनूप भरी गन(गुन), आगरि नागरि है रस भौई ।
नाग कुमारि नरी अमरी तिहु लोक मैं अैसी तिया नही जौई ।
या मिलिवे कौ उमाह गुविंद, सलाह यही सुनियौं सव सोई ।
वाण-प्रहार अनेक प्रकार सौं, राम किनि कोई ॥१६१॥

इहां रावण कैं प्रीति है सीता जू कैं सर्वथा नंहीं, यातें रसाभास है ॥ पुनः

मुकंदजू

॥ सवैया ॥

कहि को वड भागी है ता विन तू छिन हूं भरि ना सचु पावति है ।
रन प्रान तजे समुहाय सु को जिहिं तू अव ढूढति आवति है ।
जनम्यौं सुभ लग्न मै को जिहि तू मिलिवे कौं महा अकुलावति है ।
सुकृती उह कौंन मुकंद कहै जिहि मैंनपुरी तुव ध्यावति है ॥१६२॥

इहां या सामान्या की प्रीति धन मैं अरु धनीनि की प्रीति या मैं यातें रसाभास है ।

---

1 घ०—प्रति में उदाहरण स्वरूप दिए गए ये कवित्त और सवैया छंद नहीं हैं और न इनकी व्याख्या ही दी गई है ।

॥ दोहा ॥[1]

रामचंद्र की अरि-वधू, विहरति कपिनु समेत ।
इक कपोल इक कुच गहैं, इक भुज भरि भरि लेत ॥१९३॥

इहां एक नाइका सौं अनेक नायकनि की रति, यह अनुचित रति है, यातैं रसाभास है ।

अैसो वर्नन रस मैं कीजै नही । अरु कहूं नपुंसक कौ वर्नन होइ तहां रसाभास है । अरु एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति होइ तौ रसाभास नही ।

॥ मुकंदजू कौ कवित्त ॥

कहूं द्रग लागे कहूं जागे कहूं अनुरागे,
कहूं रस पागे कहूं झूठी सौंहैं पातु हौ ।
कहू घात कहूं वात कहू मन ललचात,
कहूं कौ चलत पुनि कहूं चलिजातु हौ ।
कहू उघडत धुमडत कहूं घनस्यांम,
कहूं गरजत कहूं रंग वरसातु हौ ।
कहूं सांझ कहूं अध राति कहूं पाछि राति,
कहू प्रात आंनि कै मुकंद मडरातु हौ ॥१९४॥

इहां एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति है अैसो होइ तो रसाभास नही । पुनः

---

1 अ—इस दोहे के स्थान पर अलवर प्रति में सोमनाथ का दोहा दिया गया है—
होरी मैं कोउ वाल के गहे उरोज गुपाल ।
तव ही काहू ग्वाल नैं आनि अमैंठचौ गाल ॥
इह अनुचित रति है अैसो वरनन रस में कीजैं नहीं ।
व्याख्या दोनो में एक प्रकार की ही है । (सम्पादक)

।। कवित्त ।।

उर उरझांहीं एक देति गलबांहीं अरु,
एक मन मांहीं मिलिवे कौं ललचाति है ।
एक गहै हाथनि सौं हाथ एक हुलसाति,
एक गात गात सौं लपटाति है ।
एक द्रग जोरैं एक भौंहनि मरोरैं एक,
जोवन के जोरैं बतराति सतराति है ।
एक करैं चारी एक भरैं अंकवारी वारी,
प्यारी एक एक प्यारी देषि मुसकाति है ।।१९५।।

इहां एक ही समैं एक नायक सौं अनेक नाइकानि की रति है, इहां रसाभास नही ।

अथ भावाभास

भाव सौं भासै है अरु है नही, सो भावाभास ।

सोमनाथ

।। दोहा ।।

कैसैं नृत्यत हरषि कैं, लै गति परम विचित्र ।
निकसति मूढ़ मृदंग मुष, महा मधुर धुनि मित्र ।।१९६।।

इहां चिता वृथा है ।

।। काहू कौ दोहा ।।

दीपक[1] के भोयें नहीं, जरि जरि मरैं पतंग ।।१९७।।
इहां उत्कंठा वृथा है ।
फोदा[2] पग ऊचे करै, मति गिरि परै अकास ।।१९८।।
इहां चिता वृथा है ।

1 प्र०—'दीपग'

2. प्र०+एक प्रकार का छोटा पक्षी जो आकाश की ओर पैर करके सोता है ।

ए जाडा रहि हैं कहां वाजति लूवां ॥१९९॥
इहां चिंता वृथा है ।[1]

अथ भाव-सांति

भाव को जो समन, सो भाव-सांति ।

॥ सवैया ॥

केलि मैं भूलि पिया रसिया नैं तिया, ढिग आन कौ नाम जु लीनौं ।
सो सुनि कै अनपी विलपी उपज्यौं, उर मैं इक भाव नवीनौं ।
मांन मनावै गुविंद तवै वहु भांति, सो भांवतौ देषि अधीनौं ।
नैंननि तैं असुवा दिय डारि सु, आनन तैं हरवैं हसि दीनौ ॥२००॥

इहां हसिवे मैं ईर्षा-भाव की सांति भई ।

सोमनाथ

सजि सिंगार पिय पै गई, अति विनोद सरसाय ।
लपि सूनी सुप सेज तिय, वदन गयौ मुरझाइ ॥२०१॥
इहां हर्ष-भाव की सांति भई ।

कुलपति

सुनत वैन कछू और से, पिय सौं तकी रिसाइ ।
लपि ललचौंहैं लोइननि, भूलि गये सव भाइ ॥२०२॥
इहां कोप-भाव की सांति भई ।

अथ भावोदय

भाव को जो उदय, सो भावोदय ।

1 अ०—अलवर प्रति मैं नहीं है ।

।। सवैया ।।

विनती कर जोरि हहाकरि, पां परि वार अनेक ही ठोड़ी गही ।
तउ चंद-मुषि ब्रजचंद गुविंद कौं, पीठि दै बैठी नई दुलही ।
हरिजू हठि रूठि कै ऊठि गये सु, लगी मन मैं पछितान सही ।
अषियां जल वाल भरी तिहि काल, सषीनि की ओर निहारि रही ।।२०३।।

इहां विषाद-भाव कौ उदै भयौ । पुनः

।। कवित्त ।।

रूप गुन जोबन अनूप सविलास सिवा,
सरस सुवासनि सुदेस केस भीने हैं ।
पीठि पै भ्रमर भीरि भ्रमत निसंक सोई,
सौं हीं षरे संकर विलोकत प्रवीने हैं ।
गंग की तरंगनि के संग संग स्यांम रंग,
कहत गुविंद प्रतिविंवित नवीने हैं ।
जमुना के भ्रम तैं रसाल वाल ततकाल,
लोचन विसाल लाल लाल करि लीने हैं ।।२०४।।

इहां ईर्षा-भाव कौ उदय भयौ ।[1]

अथ भाव संधि

द्वै भावनि कौ जो मिलाप, सो भाव संधि ।

---

1 अ० + यातैं लाल लोचन करि लीनें । इसके उपरान्त 'अ' प्रति में सोमनाथ का यह दोहा और दिया गया है—

आयौ गोरस लैंन कौं, उह सांवरौ गुपाल ।
चहूं ओर चितई चकित, अलवेली नव वाल ।

।। कवित्त ।।

आनंद के कंद श्रीगुविंद रामचंद्र चारु,
सुजस अपार कवि कौविद करत हैं ।
सीता जू सरस सुपदानी महारानी जू के,
मिलिवे कौं मन मांझ महा उमहत हैं ।
रावन के हाथनि कौ सराघात उतपात,
तातें भांति भांति गात ताडित रहत हैं ।
अैसे रघुवीर महावीर धीर जुद्ध समैं,
दुप्प सुप्प दोऊ एक संग ही सहत हैं ।।२०५।।

।। विहारी कौ दोहा ।।

पिय विछुरन कौ दुसह दुप, हरप चलन ष्यौ सार ।
दुर्य्योधन ज्यौं जानियत, प्रान तजति इह वार ।।२०६।।

इहां विपाद अरु हर्ष दोऊ भावनि की संधि है ।

कुलपति

इत गुजरन उत हरि वदन, लषे जमुन के तीर ।
रहि न सकै देपि न सकै, दुहु मिलि करी अधीर ।।२०७।।

इहां लज्जा अरु उत्कंठा दोऊ भावनि की संधि है ।

अथ भाव सवलता

पांच सात भावनि कौ जो मिलाप, सो भाव सवलता ।

।। कवित्त ।।

अैसै मैं असोकताई सोई सुपदाई कवू,
वा मुप रसीली वातें सुनि हौं श्रवन मैं ।
मोर कर केवान वलदान आगैं सत्रु कहा,

सीता बिन सून्यताई छाई तृभुवन मैं ।
तजी कथा ताकी छवि न्यारी है जनकजा की,
वृथा मम जीवन सु कहां गई बन मैं ।
ऐसें श्री गुविंद रामचंद्र जू मिलाप काज,
आप अति आतुर अनेक भांति मन मैं ।।२०८।।

इहां निर्वेद उत्कंठा गर्व भ्रममति स्मति दीनता विषाद इन भावनि कौं सबलता है ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

द्रग ललकैं राते भये, रूषे झलकैं आइ ।
नेह भरे लषि लोइननि, सकुचे परसत पाइ ।।२०९।।

इहां उत्कंठा, कोप, उदासीनता, लज्जा इन भावनि की सबलता है ।

कुलपति

रस साहिब सब भांति हू, कहूं भाव सरसात ।
ज्यौं सेवक के व्याह कौं, राजा चलै बरात ।।२१०।।

इति भाव ।

अथ बिभाव

बिसेस भाव करि कैं अरु रस कौं प्रगट करै, सो विभाव ।

अथ शृंगार के विभाव

॥ दंडक छंद ॥[1]

दंपति रूप जोवन लछिन जाति जुत, सहचरी सुरभि पिक हंसवानी,

1 प्र०—'झूलना'

फूल फल दल विपिन बाग जल जंत्र, जल सरस जलचर कमल अलि कहानी,
मोर चातक सुवा सारिका सब्द घन, तडित धारा हरी भुव वपानी,
अमल आकास उडगन निसा चंद्रिका, चंद्र चक्कोर कुमुदिनि फुलानि,
सदन सुप सेज सुभ धूप दोपावली, पान अरु पान सब सुगंध सानी,
सुरंग भूपन वसन मृदंग वीनादि नद, नृत्य गति राग रागिनी विधानी,
मनमथ कथादि सुविभाव शृंगार के, सबनि मैं एक मन की प्रधानी,
रसिक जन सुनहु गुविंद इहि विधि कहै, सुकवि सिरमौर पंडित प्रमानी ।।२११।।

सो विभाव दुहु विधि--आलंवन, उद्दीपन ।

अथ आलंवन लक्षण

जाहि अवलंव्य करि कैं अरु रस प्रगट होइ, सो आलंवन ।

सो द्वि विधि-आश्रयालंवन, विपयालंवन ।

जाके देंपतैं रस प्रगट होइ, सो विपयालंवन । जाहि आश्रय करि कैं रस प्रगट होइ, सो आश्रयालंवन ।

अथ विपयालंवन कौ उदाहरन

।। सवैया ।।

प्रीति ही कौ प्रति रूप सपी प्रतिविंव सु पुन्यलता कौं सही है ।
सुंदरता कौ समूह भली विधि, नैंननि कौं अधि देवत ही है ।
अंकुर आंनंद कौ कलपद्रुम, मो मन कामना कौं दुलही है ।
मैंन के मंत्र की सिद्ध प्रसिद्ध मनौंहर प्यारी उहै सु उही है ।।२१२।।

असैं हीं आश्रयालंवन कौ उदाहरण जानि लीजै । आलंवन परसपर नाइका नाइक ही है । उद्दीपन अनेक प्रकार हैं ।

अथ उद्दीपन

जो रस कौ दीप्ति करै, सो उद्दीपन ।

॥ कवित्त ॥

सांझ समैं अंवर अरुण ताज वनिका है,
दंपति कौ प्रेम नाट्य नीकैं छबि पायौ है ।
रसिक गुविंद भौर भीर कौ सरस सोर,
मंगल-चारन होत लागत सुहायौ है ॥
तारागन सुमन समूह वरसावत,
मनोज के नचायवे कौ आगम जतायौ है ।
आज रितुराज महाराज कौ रिझांवन,
सुघर सूत्रधार चारु चंद्र चलि आयौ है ॥२१३॥

इत्यादि और हू जथा सभव जानि लीजै ।

अथ हास्यरस के बिभाव

अंग वेषादिक कौ विकार अलंकारनि की विपरीतितादि ।

मुकुंद

॥ सवैया ॥

निज छांह कौं देषत रीझत है, पुनि हाथ उठाय कपावतु हैं ।
सिर चालन कें मुष मोर चलै, सब अंगनि कौ मटकावतु हैं ।
चुटकी दै पुजावत कान फिरै, फिरकी लियै लंक लचावतु है ।
इमि नंदकुमार अनेक प्रकार, मुकंद विनोद दिखावतु है ॥२१४॥

अथ करुणा रस के बिभाव—श्राप, क्लेश, बंधन व्यसन, प्रियनष्टतादि ।

मुकंद

॥ सवैया ॥

सानुज राम गुविंद सिया, वन कौं गये छाडि यहै रजधानी ।
सोक भयौ सिगरी नगरी मैं, वढ़ो उतपात महा दुषदानी ।

ग्रान पयान करयौई चहैं न, रहैं यौं कहैं नृप दीन ह्वै बांनी ।
एकहू मेरी न मानी तवै तू, प्रसंन भई अब कैकैई रानी ।।२१५।।

अथ रौद्ररस के विभाव

आयुधनि कौ त्रिस्कार, निठुर वाणी-श्रवन, सत्रु-दर्शन, संग्राम दर्शनादि ।

।। कवित्त ।।

कहत गुविंद जग वंद भृगुनंदन जू,
मेरे जानि तुम्हरी कुठार धार राति है ।
प्रगट करति अंधकार की विसेप रेप,
सत्रुनि के हृदै मैं व्यथा कौं उपजाति है ।
वद्ध किये क्रुद्धित ह्वै जुद्ध मैं विरुद्धिनी के,
मद्दित दुरद्दनि के कुंभ केऊ जाति है ।
तिन तैं निकसि मुकतावलि उडावलि सु,
विपरी सरस दिसि दिसि दरसाति है ।।२१६।।

अथ वीर रस के विभाव

उत्साह विस्मय मोह अविपादादि ।

।। सवैया ।।

एहो गुविंद डरावण रावण, जीति कैं लोक किये वस तीनौं ।
सीस दसौं भुज वीस हथ्यार, भयानक भेप कौं धारिजु लीनौं ।
सो अब क्रुद्ध ह्वै जुद्ध मचावत, आवत संकहि देत न वीनौं ।
राम प्रसंन मुपी मुप तैं, मृदुहास स्वरूप ही उत्तर दीनौं ।।२१७।।

अथ भयानक रस के विभाव

सिंघ सर्पादिक भयानक वस्तुनि कौ दर्शन, प्रेत-संगम, मसान-भूमि इत्यादि ।

॥ कवित्त॥

जिह्व[1] छुरी धार औ जँभात वार वार वार,
उग्र निग्म गोविंद नषावली प्रकास मैं ।
भृकुटी कराल विकराल मुष वड़े दाढ़,
दंत कट-कटत विकट्ट कट्ट हास मैं ॥
प्रलैकाल अग्नि ज्वाल झाल अैसे लाल नैंन,
संपासी चपल द्रष्टि चलै आसपास मैं ।
भांति भांति भीम भेष देषि श्री नृसिंघ कौं,
कपे हिरण्यकस्यप के अंग अंग वास मैं ॥२१८॥

अथ वीभत्स रस के विभाव

दुर्गंध वस्तुनि कौ दर्शन उद्वेजनादि

॥ कवित्त ॥

विहरैं भवानी भव भूमि समसान की मैं ।
संग श्री गुविंद भक्त विविधि प्रकार हैं ।
नसा जाल आभूषन अंग राग श्रोनित के,
करन करीनि के करनि लिये थार हैं ॥
भरि भरि अधर असोक फूल दंत कुंद,
हाथ जल जात वरसात बार वार हैं ।
पूत भूत प्रेतनि पिसाचनि के प्रीति सौं,
पुरारि जू कैं आगै अैसैं नृत्यत अपार हैं ॥२१९॥

अथ अद्‌भुत रस के विभाव

कारज कें अनुकूल चातुरी अनौपी वाणी माया इंद्र-जालादि ।

---

1 प्र० 'जीभ'

॥ सवैया ॥

देपत ही विसमै करि डारै, नृसिंव को रूप अलौकिक माई ।
तीक्षण नौंक अयालनि की अति है, कहै कौ लौं गोविंद वडाई ॥
पेट फटचौ निधि कौ तिन तें कढि कैं पुनि आंत सु वाहिर आई ।
सो अव दामिनि ह्वै दमकै दसहू दिसि डोलति देत दिपाई ॥२२१॥

॥ इति विभाव ॥

अथ अनुभाव

रस के अनुभव को प्रगट करै, सो अनुभाव ।

अथ शृंगार रस के अनुभाव

नेत्र मुप प्रसन्नता मृदुहास मधुर वाणी धृति प्रमादादि ।

॥ सवैया ॥

मृग पंजन गंजन रंजन नैंन, सुअंजन की पुनि रेप दई ।
मन कौं सव भांति प्रसन्न करैं, वचनामृत रचनां जू नई ।
कवि गुविंद और कहा वरनैं, सुपमां अंग अंग अनूप ठई ।
मृदुहास ही उत्तर दै पिय कौं, भ्रुव वाक विलासनि सौं चितई ॥२२२॥

अथ हास्य रस के अनुभाव

विकृत आकार वान वाक्य अंग वेपादिक को विकार ।

॥ सवैया ॥

पोपरी के पपरानि दिपावलि शंभु, करि कइलास मैं माई ।
चंद अमंद कीजे रसमी सु गुविंद, अनंद सौं वाती वनाई ।

नागनि के फन की मनि दीप सिषा कें, जगामग जोति जगाई ।
मित्र के ग्रैसें चरित्र विलोकि, उमां कौं हसी मुप ग्राई ।।२२३।।

अथ करुणा रस के अनुभाव

।। सवैया ।।

निःश्वास, अश्रुपात, मोह, विलाप, देह व्यथा, मुष-सुष्कादि ।

व्रजचंद गुविंद गये जब तें, विरहानल ताप तई सु तई ।
मुदरी अंगुरीनि की उद्धवजू, इन कंकन रीति लई सु लई ।।
जल धार धरा पै धरैं अंषियां, निस बासर नीद गई सु गई ।
कुच कुंकुम भीजि रही सु रही, उर पीर ग्रनेक भई सु भई ।।२२४।।

अथ रौद्र रस के अनुभाव

नेत्र मुष अरुणता, ओष्ट पीडन, दंत कटकटाहट, आकुलता, सस्त्र-प्रहारादि ।

।। कवित्त ।।

क्रुद्धित ह्वै अधर चवाय द्रग अरुणाई,
भीम भयकारी भारी भृकुटी चढाय कें ।
जुद्ध मैं विरुद्धी दुरवुद्धिनि के जे दुरद्द,
विधि रुद्ध से दिये अकास कौं वगाय कैं ।।
कहत गुविंद भीरि भृंगनि की भीत भई,
गंडथली छंडि उडी अति अकुलाय कें ।
मेरे जानि संक दै कलंक की लपट लगी,
निपट निसंक ह्वै मयंक अंक जाय कें ।।२२५।।

अथ वीर रस के अनुभाव

सूरता, धीरता, प्रभाव, पराक्रम, पराक्षेप वाक्यादि ।

।। कवित्त ।।

जुद्धनि की दीक्षानि कौं दानि महा अभिमानी,
सोई इंद्रजीत अगवानी इहि वार है ।
ताके दुहु पच्छि्छनि कौं रावन रच्छक प्रति-
पच्छि्छनि के पच्छि्छ कौ विपच्छि्छ करतार है ।।
श्री गुविंद अंगदादि भट भयभीत होत,
वार वार कहैं अैसैं अंजनिकुमार है ।
सुनि सुनि संव्या के करत रामचंद्र जू कैं,
भयौ वाय कुंभक मैं कछु न विकार है ।।२२६।।

अथ भयानक रस के अनुभाव

सवैया

प्रगटे नरसिंघ सुरासुर कैं विसमै, सब भांति वढ़ाइ दिये ।
कहि गोविंद रूप कराल अयालनि के, अति तीक्षरण अग्र किये ।।
तिन तैं उड मंडल पात दिपात हलावतु हैं सब ही के हिये ।
प्रहलाद भयौ भयभीत उहै, छवि देपत ही द्रग मूंदि लिये ।।२२७।।

अथ वीभत्व रस के अनुभाव

संपूर्ण अंगनि कौं सकुचावनौं निष्टीवन उद्वेजनादि ।*

।। सवैया ।।

रूप अनूप धरयौ नरसिंघ अमै वर गोविंद भक्त कौं दीनौं ।
तीछन सस्त्र नपावलि के सजि, सत्रु कौ पेट विदारन कीनौं ।।

---

* अ० प्रति में लिपिकार की लेखनी द्वारा यह पंक्ति काटी हुई है ।
(पत्र सं. ३४)

आनन मध्य जँभात समैं रवि कौ, तन नैंन निहारि नवीनौं ।
ग्रास सुरारि के श्रोनित कौ जिय जानि, रमा मुष कौं ढ़कि लीनौं ॥२२८॥

अथ अद्भुत रस के अनुभाव

स्वर भेद, देह कंप, नेत्र चकितता, हाहाकार, साधुवादादि ।

सवैया

सूर सधीर उदार अनूपम अर्जुन, भूप भले वडभागी ।
कीरती कौ लौं गुविंद कहैं दसहू दिसि जोति जगामग जागी ॥
तोसर आगैं निवात कवच्च अवद्ध चमू मरिगी कछु भागी ।
सो छवि देषत देवनि के द्रग की, पलकैं अजहूं नही लागी ॥२२९॥

॥ इति अनुभाव ॥

अथ सात्विक भाव

विशुद्ध सत्व तैं प्रगट्यौ जो मन कौ विकार, सो सात्विक भाव ।

सो अष्ट विधि—१. स्तंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग ५. कंप, ६. वैवर्ण्य, ७. अश्रु, ८. लीनता ।

अथ स्तंभ

गति कौ रुकिवौ, सौ स्तंभ ।

॥ सवैया ॥

पीन नितंव महा कटि छीन सु, अंगनि मैं अति कोमलताई ।
तैसोई भार उरोजनि कौ उर पैं, सिर केसनि की सरसाई ।
का विधि जैवौ वनैं अपने घर, देह दसा छलकैं छवि छाई ।
मंद हसी व्रजचंद गुविंद की, देषि भई सु कही नहि जाई ॥२३०॥

मतिराम

देषत ही मतिराम रसाल गही, मति प्यारी की प्रेम नैं गाढ़ी ।
चाहिवे की चित्त चाह भई पै गई, हिय तैं कुलकानिन काढ़ी ।
संग सपीनि कौं जानि दुरावति, आंनन आंनद की रुचि बाढ़ी ।
पाइ परे मग मैं नमरुकैं भई, तव लाजनि कैं मिस ठाढ़ी ॥२३१॥

अथ स्वेद

हर्ष तैं प्रस्वेद जुक्त जो अंग, सो स्वेद ।

॥ सवैया ॥

स्वेद के बुंद लसैं तन मैं पुनि, कुंचित केसनि की सरसाई ।
मांनौं फनिद के नंद अमीहित, इंदु पैं आनि रहे मडराई ।
त्यौं श्रम के जल कै कनकें कुच के, पर गोविंद यौं छवि छाई ।
मैंन मनौं मन रीझि अलौकिक, फूलनि की वरषा वरषाई ॥२३२॥

मतिराम

किंकिनी नेवर की झनकारनि चारु, पसारि महा रस जालहि ।
काम-कलोलनि मैं मतिराम कलानि, निहाल कियौ नदलाल हि ।
स्वेद के बुंद दिपै तन मैं रति, अंतर ही लपटाय गुपाल हि ।
मांनौं फले मुकताफल पुंज सु, हेमलता लपटानी तमालहि ॥२३३॥

॥ दोहा ॥

कुच तैं श्रम जलधार चलि, मिली रुमावलि रंग ।
मनहु मेरु की तरहटी, भयौ सितासित संग ॥२३४॥

विहारी

रहो लपे वैंनी गुही, गुहवे के त्यौं नार ।
नीर चुचावन ह्वै गये, नीठि सुपाये वार ॥२३५॥

अथ रोमांच

रोमांच रोम हर्ष ।

॥ सवैया ॥

सीतल भूतल कुंज की त्यौं ही गुविंद, कलिंदी की सीतता बाढ़ी ।
सीतल कुंद की चंदन की अरविंद के वृंद की गंध जु गाढ़ी ॥
सीतल चंद्र की चंद्रिका चारु बयार, तुसार मैं बोरि कैं काढ़ी ।
यातैं अलीरी कपोल थली मैं भली बिधि होति रुमावली ठाढ़ी ॥२३६॥

अथ स्वर भंग

मद तैं वाणी कौ जो भेद, सो स्वरभंग ।

॥ सवैया ॥

बोलत ही लपि लै हैं सुजान गुविंद, यौं चंद-मुषी जिय जानी ।
नैंन नवाइ लिये पलकैं जुत सो छवि, क्यौं हू न जाति बषानी ॥
घूंघट के पट सौं मुष ढ़ांपि अली, इमि चातुरता अति ठांनी ।
मौंहनी मौंहन देषत ही मुष, मौंन रही न कही कछु वानी ॥२३७॥

मतिराम

जाहि लै आई अलि रति मंदिर, जाकी लगै रति ज्यौं परछांहीं ।
आय गये मतिराम तहीं जिनि, कोटिक कांम-कला अवगांहीं ॥
देषत हीं सिगरीं बेटरीं पकरी, हसि कैं तिय की पिय बांहीं ।
लाजनि तैं मतिमंद भई, कही मुषचंद मरू करि नांहीं ॥२३८॥

॥ दोहा ॥

कहा जनावति चातुरी, कहा चढ़ावति भौंह ।
अध निकरे अपरानि तैं, सौंहैं कीजति सौंह ॥२३९॥

अथ कंपा

अनुराग तें कंपमान जो अंग, सो कंपा ॥

॥ कवित्त ॥

सरस रसाल माल मुहि पहराइबे कौं,
गुहि गुहि ल्यावत गुविंद बलवीर है।
बन उपवन घन बीनत फिरत फूल,
बनि बनि रैंनि दिना जमुना के तीर है॥
कोमल कमल पग कंटक अटक कौ न,
करत अँदेसौ असो चित्त अति धीर है।
ऐंयै यह वैरिनि समृति सौति हौति आंनि,
कौतुक से करति कपावति सरीर है॥२४०॥

मतिराम

॥ सवैया ॥

इंदुमुषी अरविंद की माल ही, गुंदति रूप अनूप निहारयौ।
काम सरूप तहीं मतिराम, अनंद सौं नंदकुमार सिधारयौ॥
देषत कंप छुटयौ तिय तन यौं, चतुराइ कौ ब्यौंत विचारयौं।
सीरी सरोज लगै सजनी कर, कंपत हार न जात संवारयौ॥२४१॥

॥ दोहा ॥

लाल वदन लषि वाल के, कुचनि कंप रुचि होति।
चपल होत चकवा मनौं, चाहि चंद की जोति॥२४२॥

विहारी

कारे वरन डरांवनैं, कत आवत इहि गेह।
कै वा कहयौ सषी लषैं, लगै थरहरा देह॥२४३॥

अथ वैवर्ण्य

मुष-सोभा पलटै, सो वैवर्ण्य ।

॥ कवित्त ॥

सघन निकुंज मंजु गुंज अलि पुंजनि की,
कंजनि की सैंनी सनी सरस सुबास है ।
ता पै इंदुमुषी अरविंद नैंनी आनँद सौं,
रसिक गुबिंद संग करति बिलास है ॥
एते मैं अचानक ही काननि मैं परी आनि,
निपट कठोर कूर कुक्कट की भास है ।
ताही छिन मंद मुष सुंदरी कौ भयौ ज्यौं,
दिवेंद्र के उदोत होत चंद्र कौ प्रकास है ॥२४४॥

मतिराम

छल सौं छबीली कौं सहेली सु लिवाइ लाई,
ऊपर अटारी चढ़ि रूप रच्यौ ष्याल कौ ।
कवि मतिराम भूषननि की झनक सुनि,
चाय भौ चपल चित्त रसिक रसाल कौ ॥
आलीं चलीं सकल बिलोकिवे कौ मिसु करि,
आवत निहारि रूप मदनगुपाल कौ ।
लालन कौ बदन सु इंदु सौ बिलोकि अर-
बिंद सौ बदन कुमिलाइ गयौ बाल कौ ॥२४५॥

॥ दोहा ॥

बाल रही इक टक निरपि, लाल बदन अरबिंद ।
सियराई नैंननि परी, पियराई मुष चंद ॥२४६॥

अथ अश्रु

हर्ष तें प्रगट होइ जो नेत्र-जल, सो अश्रु ।

॥ कवित्त ॥

उज्जल अवास सुप-सेज औ सुवास लपि,
अमल अकास औ प्रकास चारुचंद कौं ।
कोकिल की वानी सुनि कीर की कहानी सुनी,
सुनि कें अलाप अली आलिनि के वृंद कौं ।
आवति विलोकि मित्त हित सौं हरपि चल्यौ,
इंदीवर नैंननि प्रवाह मकरंद कौ ।
परत उरोजनि पै आनि आनि मेरे जानि,
उर सौं कहत आछैं गुविंद कौं ॥२४७॥

मतिराम

वैठे हुते लाल मन मोहन मोहिनी वाल,
छिनक सकोच रापें गुरजन भीरि (कौ) ।
कवि मतिराम दीठि और की वचाय देपें,
देपत ही और भये रापें अवधीर कौ ।
तनु की सँभार भूली मन की तरंग फूली,
आँपिन में छायौ पूर आनंद के नीर कौ ।
उमगि हिये तें आयौ प्रेम कौ प्रवाह या तें,
लाज गिरि गई जैसें तरु गिरै तीर कौ ॥२४८॥

॥ दोहा ॥

विन देपें दुप के चलें, देपें सुप के जांहि ।
कहौ लाल इन द्रगनि के, असुवा क्यों ठहरांहि ॥२४९॥

अथ लीनता

हर्ष तें अंगनि की जो नष्ट चेष्टा, सो लीनता ।

॥ कवित्त ॥

मुषहि नवायौ नही सिर कौं कपायौ नही,
तन न चलायौ सिथलायौं न वसन कौं ।
मुरि मुसकायौ नही पुनि कछु गायौ नही,
भाव कौं वतायौ न सुनायौ न वचन कौं ॥
आंषैं मटकाई नही भृकुटी चढ़ाई नही,
कहत गुविंद गह्यौ गाढ़ैं प्रेमपन कौं ।
जकी थकी रही री दुलारी सुकुमारी प्यारी,
देषि सुषकारी श्री विहारी के बदन कौं ॥२५०॥

मतिराम

॥ सवैया ॥

जा छिन तें छवि सौं मुसकात कहूं, निरषे मतिराम विलासी ।
ता छिन तें मन हीं मन मांझ पिवै, मधुरी मुसकानि सुधा-सी ॥
नैंन निमेष न लागति नैंक चकी, चितवै तिय देव तिया-सी ।
चंदमुषी न हलै न चलै निरवात, निवास मैं दीप सिषा-सी ॥२५१॥[1]

ए सात्विक भाव अनुभाव ही हैं, इन सौं कोऊ संचारी हूक है हैं ।

अथ संचारी भाव

विना नियम सव रसादिकनि मैं संचरै, सौ संचारी भाव ।

1 घ० + अतिरिक्त —

तो मैं अनिमिष नैंनता, मोहै मूरति मैंन ।
अनमिष नैंन सुनैं न ये, देखत अनमिष नैंन ॥

॥ कवित्त ॥

आदि निर्वेद संक श्रम औ समृति चिंता,
त्रास तर्क नीद स्वप्न दीनता विषादि ग्लानि ।
अवहित्था आलस अपसमार मोहावेग,
कोप उनमाद व्याधि जडता मरन मानि ॥
काल्हि लौं ए भाव भये आज भाव नये नये,
हर्ष गर्व मति औ असूया मति धृति जानि ।
चंचलता वीड़ा वोध उतकंठा उग्रता,
गुविंद रामचंद्र जू ए मेरैं उर होत आनि ॥२५२॥

अथ निर्वेद

अपमांन तैं अथवा तत्वज्ञान अपनपे कौ जो निदरिवौ, सो निरवेद ।

॥ कवित्त ॥

प्रथम अजोज्ञ यहै रावण कैं सत्रु सोऊ,
तापस गुविंद पुनि आनि ठाढ़ौ द्वार है ।
एते पै असुर-कुल सकल विनासै मोहि,
जीवत ही अैसी होति विविधि प्रकार है ॥
धिक इंद्रजीत कौं जगायौ कुंभकरण सु,
करि है कहा धौं अव याहू कौं धिकार है ।
स्वरग गर्मैंटीकी विजै तैं गरवित अति,
अैसे इन भुजनि धिकार वार वार हैं ॥२५३॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

हित-रस ठान्यौं न भगति-रस जांन्यौ नही,
भयौ न निकाम लीन भयौ नही काम सौं ।
वाला उर रापी नही रापी नही माला उर,
स्यांमा सौं सनेह न सनेह घनस्यांम सौं ॥

सेये न नितंब न उतंग शृंग-गिरि के न,
मानी रति धाम सौं न मांनी कुंज धाम सौं ।
भ्रमनि भ्रमायौ यौं ही जनम गमायौ मन,
रामा सौं रमायौ न रमायौ मन राम सौं ॥२५४॥

अथ संका

आपने किये दोष तें प्रगट भयौ जो अनर्थता कौ जो चिंता, सो संका ।

॥ सवैया ॥

कलत्र जु सत्रु की आई सु आई, भरी गुन जोवन रूप महा ।
पुनि संग ही सत्रु हू सस्त्र लियें इत,आयें सु आये ही लेंन लहा ॥
रति कें रघुनंदन सिंधु कौं बांधि, गुविंद चमू सजि कें दुसहा ।
धनु बांन लै लंक मैं अहै निसंक न, जानियें ता छिन ह्वै है कहा ॥२५५॥

अथ श्रम

पराभव तें प्रगट्यौ जो चित्त मैं षेद, सो श्रम ॥

॥ कवित्त ॥

छाडि घर नगर डगर लीनौं कानन कौं,
गात जलजात के से पात सकुचात हैं ।
मृदु पद कंजनि उलंघे कोस द्वैक जवै,
गोरी भोरी बूझै यह प्रीतम सौं वात है ।
अवजु कितेक दूरि दंडक सघन वन,
सुनत गुविंद नैंन नीर सौं चुचात हैं ।
गहैं निज हाथनि सौं हाथ रघुनाथ असैं,
सीताजू के साथ अकुलात चले जात हैं ॥२५६॥

अथ स्मृति

समान वस्तु देषे तें पूर्व वस्तु कौ जो स्मरण, सो स्मृति ।

॥ सवैया ॥

रैवतकाचल मैं जल-केलि करैं, जदुवंस के लोग लुगाई ।
चंदमुषी मकरंद भरयौ अरविंद, लै कोऊ कढ़ी सुषदाई ॥
सो लषि रीझि गुविंद उहै सुधि सिंधु,मथान की कीनी कन्हाई ।
असैं हीं सिंधु तैं सिंधु-सुता हू लियैं, कर वारिज बाहिर आई ॥२५७॥

अथ चिंता

अप्राप्ति वस्तु कौ जो ध्यान, सो चिंता ।

॥ सवैया ॥

सांनुज राम गये मृग संग गुविंद, अकेली सिया सुकुमारी ।
सामुहैं देषि वुरे मुष रावण दुष्ट, औ भेष भयानक धारी ॥
व्याकुल भीत सवै अंग अंग, उपाय कछू न वनैं सुषकारी ।
लीनैं सँकोचि विलोचन ता छिन, सोच भयौ उर मैं अति भारी ॥२५८॥

अथ त्रास

उतपात तैं चित्त कौं जो छोभ, सो त्रास ।

॥ सवैया ॥

सुक सारण दूत सुरारि सवै, कपि सैंन की लैंन सुधी पठये ।
दोऊ वंदर रूप धरैं विचरैं सु, विभीषन नैं पहचानि लिये ॥
गहि वांधि कैं रोस ह्वै कीस सवै, डरपावत एक तैं एक नये ।
रघुनंद गुविंद पै जात उहै, अकुलात महा भयभीत भये ॥२५९॥

अथ तर्क

संदेह तैं प्रगट्यौ जो मन कौ विचार, सो तर्क ।

॥ सवैया ॥

भान पयान[1] कियौ असमान तें, दूसरौ रूप धरें किधौं सोहै ।
मूरतिवंत कृसान किधौं निरधूम, प्रभा सब कौ मन मोहै ॥
भानु चलै तिरछी गति ऊरध जात कृसान विष्यात सु तोहै ।
फैलत आवत भूलत आप अमंद, गुबिंद न जानियै कोहै ॥२६०॥

अथ नींद

चिंता आलस तें अंतहकर्ण की जो गुप्ता; सो नींद ।

॥ सवैया ॥

अर्थ समर्थ निरर्थक हूं पद, आलस के भरे अक्षर भारी ।
नींद मैं श्री ब्रजचंद गुबिंद कह्यौ, मुष नाम सिया सुकुमारी ॥
सो सुनि राधिका नागरि कें बढ़िगौ, उर मैं अति संसय भारी ।
भोर भयें हसि कें वस कें रिस कें, पिय कौं डरपावति प्यारी ॥२६१॥

अथ स्वप्न

निद्रा नारी को अरु मन कौ जो संजोग, सो स्वप्न ।

॥ सवैया ॥

सुष-सेज पै सोवत सुंदरी सुंदर, प्रेम छकी छवि पावति है ।
सुपनै मधि कंत इकंत विलोकि, मुदे द्रग ही मुसकावति है ॥
कल कोक कलानि के भेद विभेद, गुविंद अनंद वढ़ावति है ।
अधरामृत पीवति प्यावति मानौं, भुजा भरि कंठ लगावति है ॥२६२॥

अथ दीनता

दरिद्रादिक तें प्रगटी जो चित्त मैं विकलता; सो दीनता ।

1. प्र० 'भयान'

पाट परचोई रहै घर मैं पति, है घर छप्पर जीरन धारी ।
पूत प्रवास सगर्भ वधू सुत हौंन की है दिना द्वै मैं तयारी ।।
कीजै उपाय कहा इहि औसर, गोविंद की गति है कछु न्यारी ।
ऐसी दसा अपनी लषि कैं उर, सास कैं त्रास भयौ अती भारी ।।२६३।।

अथ विषाद

उपाय के अभाव तैं प्रगट्यौ जो वल नास, सो विषाद ।।

।। सवैया ।।

सागर के तट पैं इक सैल पैं सीता कौं, सोध सँपाति सुनायौ ।
सुंदर वात सुनैं कपि वृंद के मध्य, गुविंद अनंद ह्वै आयौ ।।
सिंधु अगाध विलोकत चित्त, उलंघंन कौं अति ही ललचायौ ।
छाडि कैं आसन निरास उसास लै, ह्वै कैं उदास महा दुष पायौ ।।२६४।।

अथ ग्लानि

वीर्ज नास तैं प्रगट्यौ जो चित्त मैं षेद, सो ग्लानि ।

।। सवैया ।।

मृदु कंज कली मसली के समान, प्रभा अंग अँगनि की दिपई ।
रुचि सैंन सनान की भोजन की, गुरु लोगनि के कहिवे तैं लई ।
निकलंक मयंक कपोल प्रभा, गज दंत के टूक नये ज्यौं ठई ।
व्रजचंद गुविंद तिहारे मिलैं, व्रज भामिनि की गति ऐसी भई ।।२६५।।

।। लाल कौ कवित्त ।।

विविधि कलानि केलि कीनी रस भीनी अति,
रंगति सनी सव रजनी वितै रही ।
अरसौंहे गात हरि प्रात उठि जात लषि,
तिय की वदन दुति जानैं को कितै रही ।।
फिरि मिलिवे कौं कह्यौ चाहै पै कह्यौ न जाइ,

बांह परिरंभन के चाव कौं रितै रही ।
तरुन तपन ताप तापित कुरंग रुचि,
लोचननि लाल मुष चंदहि चितै रही ॥२६६॥

अथ अवहित्था

आकार दुरावनौं, सो अवहित्था ।

॥ कवित्त ॥

छाडि घर बगर नगर तव सौं दरहू,
जाइ गही पाय रेंन रिपु वलबांन की ।
सोऊ श्री गुविंद सिंधु सेत वांधि आयौ धायौ,
जुद्ध का क्रुद्ध ह्वै सजैं कवांन वान की ॥
सुप सौं वसीजै तौ सुनीजै जू सलाह यही,
ढ़ील जिन कीजै दीजै राघव कौं जानकी ।
रावण सुनत मुसकावनि-सी करि पह–
रावन सु वाकौं लग्यौ माल मुकतान की॥२६७॥

अथ आलस

षेद मैं क्रियान मैं जो अनादर, सो आलस

॥ कवित्त ॥

रुकमनि रानी श्री गुविंद जू के मन मानी,
सव सुष सानी वैठी वानिक वनायकैं ।
हास कैं विलास कौं हुलास सौं हरपि हिय,
हार कौं हरत हरि हरवैंसैं आयकैं ॥
षेद सौ जनाति निज हाथनि सौं पी कौ हाथ,
पकरचौ न जात सगरभ तन पायकैं ।
सहज सुभाय जदुराय दिसि चितै चाय,
मृदु मुसकाय रही द्रग सकुचायकैं ॥२६८॥

अपस्मार

गृहादिक भूतादिकनि के आवेस तें मन कौं जो त्रस्कार, सो अप्समार ।।

॥ सवैया ॥

भूतल लागि परयौ परसिद्ध सवै, अंग मैं अति पीर पिरानी ।
तुंग तरंग विसाल भुजानि, झुलावतु है अति ही मन मानी ।।
डारतु हैं मुप तें पुनि फैंन, पुकारत है वहुभांति की वांनी ।
रोग मृगी कौ भयौ उर सिंधु कैं, आंनंदकंद गुविंद यौं जानि ।।२६९।।

अथ मोह

अकस्मात अपूर्व वस्तु देपे तें चित्त कौं जो विकार, सों मोह ।

॥ कवित्त ॥

सिंधु मथिवे तें कढ़ी इंदिरा अनौषी लियैं,
हाथ भली कली मुकलित लजात की ।
मंद-मंद हसनि अमंद मुप-चंद अर-
विंद द्रग सुंदरता पट फहरात की ।
होइ गई जड देह इंद्रहू की रुद्रहू की,
विधिहू की सकल सुरासुर के साथ कीं ।
देपत ही छवि नई मति हरि लई भई,
जकित थकित गति गोंविंद के गात की ।।२७०।।

अथ आवेग

अकस्मात कुवस्तु देपे तें मन संभ्रम होइ, सो आवेग ।

॥ सवैया ॥

कज्जल रूप सवै तन तैसे, कठोर कुवाक्य नवीनें ।
रीस भरे दस सीस मुकंद सु, वीस भुजानि मैं आयुस (ध) लीनें ।

अैसो डरावण रावण औचक, देषत ही मन संभ्रम भीने ।
कंप रुमालि उठी तन मैं ततकाल, अधो द्रग जानकी कीनें ॥२७१॥

अथ कोप[1]

परहंकार दूरि करिवे की जौ इछ्या, सो कोप ॥

सवैया

केतौ वक्यौ तक्यौ द्रोपदी कौ तन, ते अपने फल वेग लहैंगौ ।
भीम गुविंद विचारै मनै या अनीति कौं, कोऊ कहां धौं सहेगौ ॥
सो ही करौं अब दाय उपाय यहै, पछिताय पिसाय रहैगौ ।
भूलिहु अैसे कठोर कुवाक्य दुसासन, काहू कवू न कहैगो ॥२७२॥

अथ उन्माद

काम सोकादिक तैं प्रगट्यौ जो चित्त-भ्रम, सो उन्माद ॥

॥ कवित्त ॥

लषन प्रचंड मारतंड तैं तपत तन,
तातैं चलि लीजै छांह सघन लतान की ।
यह तौ निसाकर दिवाकर न होइ अव,
कैसें लष्यौ या मैं छवि मृग कौन आन की ॥
वचन सुनत गति भई सो कही न जाइ,
श्री गुविंद रामचंद्र सुंदर सुजान की ।
हा हा मृगनैंनी सुषदैनी मन हरि लैनी,
कहां गई कहां गई कहां गई जानकी ॥२७३॥

कौंन तुव नाथ नाथ कहाय हमैं कहौं मैं,
लषन तव दास आस है कृपानिधान की ।

1 अ०—'क्रोध' इसके पश्चात् हासिए में ऊपर लिखा है—'पराहंकार........सो क्रोध'

कौन हम बड़े तुम बड़े कहा भगवांन,
कौंन (भ)गवान राम जीवनि जिहान की ।।
तौ क्यों या सघन वन बीच भटकत फिरै,
ढूढ़त हैं देवी कौं जु प्रानति समान की ।
कौन देवी जनकाधिराज तनया यौं सुनि,
कहत गुविंद कहां हाहा प्रिय जानकी ।।२७४।।[1]

अथ व्याधि

वात पित्त कफादिक तैं प्रगट्यौ जो ज्वर-विकार चित्त मैं, सो व्याधि ।

।। कवित्त ।।

सर विलास कौ निवास कइलास श्री गुविंद,
कहैं ठौर ठौर झरत किलाल की ।
उमया रवन निज भवन बनायौ तहां,
पवन प्रचंड चली आवति हिमाल की ।।
सीत भीत कंपित अधिक उर अंग अंग,
तातैं अति वृद्ध भई ज्वर विकराल की ।
संकर सुघर वर ताके हरि कौं यह,
ओढ़ि लई साल बाल कुंजर विसाल की ।।२७५।।

अथ जडता

व्यवहार विषैं असमर्थ ज्ञान, सो जडता ।

।। कवित्त।।

सिंघ गही धेनु वन नंदिनी अचानक ही,
दूरि ही तैं दौरि दायौ प्राननि कौ दीनौ है ।

1. अ०—अलवर प्रति में दूसरा उदाहरण नहीं है ।

गोविंद कृपाल भुवपाल क्रुद्ध कै विसाल,
जुद्ध कौं सरासन सुभट साजि लीनौं हैं ।।
निपट अनिष्ट द्रष्टि क्रूर सारदूल की,
विलोकित विचित्र चित्त अति भय भीनौं है ।
कंक पंष नष छवि भूषित दिलीप पानि,
बान रह्यौ अैसैं ज्यौं चितेरे चित्र कीनौं है ।।२७६।।

अथ मरन

मूर्छा विसेस जो जीव त्याग तें प्रथमावस्था, सो मरन ।

मरन दसा कौ निषेध करि आये तैसें ही मरन संचारी भाव कौ निषेध जानि लीजै ।

अथ हर्ष

वांछित वस्तु की प्राप्ति तें प्रगट्यौ जो मन-संभ्रम, सो हर्ष ।।

।। सवैया ।।

फूल प्रजंक पै वैठी तिया तहां, आये गुविंद निकुंज विहारी ।
प्रीतम देषत ही हित सौं चित्त मैं, वढ़िगौ अति आंनंद भारी ।।
आतुर ही मिलिवे कौं उठी सु छुटि, मुकतावलि सीस तैं सारी ।
टूटी तनी अगिया की गिर्यौ उर कौ, अँचरान सँभारति भारी ।।२७७।।

अथ गर्व

संपूर्ण तें अधिक वृद्धि जो अपनपे विषें, सो गर्व ।।

।। सवैया ।।

है कर मैं कर वांन जहां लगि, टूटौ न टूटौ यहै धनु जो है ।
जाति सभा सव लैहौं सिया सु, गुविंद चितै छवि सौं मन मोहै ।।

मो तैं न ह्वै है सुवात कितेक है, वींस भूजा सरवोपर सोहै ।
मो सम विक्रमताई महा करि है, सु तौ या जग मैं जन को है ॥२७८॥

अथ मद

मादक वस्तु तै प्रगट्यौ जो चित्त मैं हर्ष कौ आधिक्य, सो मद ।

॥ सवैया ॥

मधुरी मुप हास विलास भरी, मृदु बैंननि मैं चतुराई ठई ।
गति गूढ़ चला चल सैंननि गोविद नैंननि मैं अरुणाई नई ॥
भृकुटी पुनि वंक नचैं सकुचैं मनु, काहू नैं सीष यहै सिषई ।
मृदु पान तैं वा मुगधातन ए छवि, आप तैं आप ही आनि भई ॥२७६॥

अथ असूया[1]

परगुन मैं दोपारोपण, सो असूया ।[1]

॥ सवैया ॥

चातूर चंद-मुपी उमया तउ, मुग्ध गुविंद लपि परती है ।
आदर सौं सिव भाल रसाल, सदा वसिवौ करिती है ॥
वाल कला विधु की है तहां सु तौ, सं.ति समान हियैं अरिती है ।
राहु को भाव सिला सिल सैल पैं, पारवती लिपती फिरती है ॥२८०॥

अथ मति

जथार्थ ज्ञान होइ, सो मति ।

1-1. अ०—'ईर्षा'

॥ कवित्त ॥

रावण कौं संककारी लंक कौ कलंककारी,
अंक कौं निसंककारी रषवारी लाज की ।
दुष के विनास हित पास ही प्रगट राषि,
आंनि परि औचक सकल सुप सांज की ॥
रे मन तू अगनि गनैं हौं सौ अगनि नाही,
पत्री यह प्यारे की हमारे निज काम(ज)की ।
रतन जटित जोति जागि रही जगमग,
मुद्रिका गुबिंद रामचंद्र महाराज की ॥२८१॥

अथ तिधृ

ज्ञान तैं प्रगट्यौ जो मन-संतोष, सो धृति ॥

॥ कवित्त ॥

लछिमन सक्ति षाइ जाइ परयौ जुद्ध मैं सु,
हा हा कार ह्वै कैं तिहुलोक घोष छायौ है ।
हलचल निज दल बिकल बिलोकि बैद,
वेग ही वुलाय लायौ अंजनि कौ जायौ है ॥
या तन की चेष्टा सम होति न मृतक कियौं.
नारी देषि सवद सुषेन नैं सुनायौ है ।
सुनत गुबिंद रामचंद्रजू के उर अति-
कोमल मैं कछुक हरष होइ आयौ है ॥२८२॥

अथ चंचलता

विनां विचारैं कारज मैं जो सीघ्रता, सो चंचलता।

[सवैया]

छवि छाजत राजत रावण, राज सभा सजि देषत नृत्य नयौ ।
चहुं ओर चलैं चल चांमर चारु, सिघासन आसन छत्र छयौ ॥

रघुनंद गुविंद लियें कपिवृंद कौं, सैल सुवेल पै ठाट ठयौ ।
लपि कें दस सीस कौं रीस कपीस ह्वै, कूदि कें लंका निसंक गयौ ॥२८३॥

अथ व्रीडा

धृष्टता कौ अभाव, सो व्रीडा ।

[सवैया]

फूल प्रजंक विराजत राम, गुविंद अनंद सौं सारँग पानी ।
संग सगर्भ सुरूप सिया पिय, रीझि कै बूझि करी सुपदानी ॥
काप(य)र चित्त की वृत्ति अवै यह, सांची कहौ वतियां मन मांनी ।
जानकी आपुनें आंनन नैंन नवाय रही, न कही कछु वांनी ॥२८४॥

अथ वोध

प्रथम ज्ञान जो स्मरण, सो वोध ।

॥ कवित्त ॥

जदुकुल जोंई पति संग रस भोंई सोंई,
पति हू तें पीछें श्रम पाइ रति रन कौ ।
पहलें हीं जागीं अनुरागीं उर लागी रहीं,
मुदे ही द्रगनि लेत आनद मदन कौ ॥
उरझिवी वेसरि अलक माल माल कौं,
गुविंद अंग अंगनि कौ वदन वदन कौ ।
मेल भलै भुजनि भुजनि कौं जथावति ही,
रापति रही री भय मानि विछुरन कौ ॥२८५॥

विहारी

॥ दोहा ॥

सोवति लपि मन मांन धरि, ढिंग सोयौ पिय आइ ।
रही सुपन के मिलन मिस, पिय हिय सौं लपटाइ ॥२८६॥

अथ उत्कंठा

वांछित वस्तु के मिले की जो चाह, सो उत्कंठा ।

॥ सवैया ॥

दाय उपाय विना इहि औसर, आज अचानक ही निधि पाई ।
काहू तिया नें पठाई किधौं यह, आपही आतुर ह्वै उठि धाई ॥
हौंनी करै अनहौंनी करै गति, गोविंद की वरनी नही जाई ।
जा तिय कौं चित चाहत ही सु, तौ दूतिका ह्वै हित सौं इत आई ॥२८७॥

अथ उग्रता

सूरत्व करि कें प्रगटी जो चंडता, सो उग्रता ।

॥ कवित्त ॥

विकट सुभट्टनि के ठट्ट अति जुट्टि जुट्टि,
लंक तें निसंक ह्वै कें चढ़ि चढ़ि धाये हैं ।
निपट प्रचंड भुज-दंडनि तें केऊ कपि,
षंड षंड कीनें केऊ ठौर तें भजाये हैं ॥
सीता की समृति तें जु क्रुद्धित विरुद्ध हित,
जुद्ध मध्य लछन समेत छवि छाये हैं ।
इंद्रजीत रावरण कौं देषत गोविंद राम–
चंद्र के अरुण अंग अंग होइ आये हैं ॥२८८॥

इति संचारी भाव ।

अथ स्थायी भाव

अविरोधी अथवा विरोधी ए दोऊ जाहि त्रस्कार नहीं करि सकें ऐसौ आनंद के अंकुर कौ जो कंद, सौ स्थायी भाव । सो अष्ट प्रकार १. रति,

२. हास, ३. सोक, ४. क्रोध, ५. उछाह, ६. भय, ७. जुगुप्सा, ८. विस्मय अरु निर्वेद हू स्थायी भाव हैं सांति रस कौ ।

अथ रति

वांछित वस्तु विषै मन की जो प्रीति, सो रति ।

अथ हास

वाणी वेषादिक के विकार देषे तें मन कौं जो विकार सो हास ।

अथ[सोक]

वांछित वस्तु के नास तें चित्त की जो विकलता, सो सोक ।

अथ क्रोध

सत्रु की करी अवज्ञा तें मन कौ जो विकार, सो क्रोध ।

अथ उत्साह

सूरत्व करि कैं प्रगट्यौ जो कारज कौ आरंभ, सो उत्साह ।

अथ भय

सिह सर्पादिक विकृत वस्तु देषे तैं मन कौ जो विकार, सो भय ।

अथ जुगुप्सा

मलीन वस्तु देषे तें मन कौ जो विकार, सो जुगुप्सा ।

अथ विस्मय

चमत्कारी अपूर्व वस्तु देषे तें मन कौं जो विकार, सो विस्मय ।

जा जा स्थायी भाव कौ उदाहरण जा जा के रस तें जानि लीजै ।

अथ आठ द्रष्टि स्थायी-भावनि की हैं– १. स्निग्धा, २. हृष्टा, ३. दीना, ४. क्रुद्धा, ५. तृप्ता, ६. भीता, ७. जुगुप्सिता ८. विस्मिता

अथ आठ द्रष्टि रसन की–

१. कांता, २. हास्या, ३. करुणा, ४. रौद्रा, ५. वीरा, ५. भयानक, ७. वीभत्सा, ८. अद्भुता ।

अथ वीस द्रष्टि संचारी भावनि की है (२०)–

१. मरण की शून्या, २. मोह की मलिना, ३. श्रम की श्रांता, ४. लज्जा की लज्जिता, ५. संका की संकिता, ६. आलस की मुकुला, ७. चपलता की अर्द्ध मुकुला, ८. ग्लानि की ग्लाना, ९. असूया की जिह्वा, १०. स्वप्न की कुंचिता, ११. तर्क की वितर्किता, १२. कोप की अभितप्ता, १३. विषाद की विसन्ना, १४. वोध की ललिता, १५. आवेग की विकटा, १६. उग्रता की विकोपा, १७. उन्माद की विभ्रांता, १८. अप्समार की विच्युता, १९. त्रास की त्रसिता, २०. मद की मत्ता ।

कोऊ इन तेरह ई कौं कहैं हैं—

१. लज्जा की कूणिता, २. मोह की विकसिता, ३. उन्माद की अर्द्ध विकसिता, ४. त्रास की चकिता, ५. निद्रा की सुप्ता, ६. आलस की घूर्णा, ७. चिंता की अलसा, ८. व्याधि की त्रिवर्त्तिता, ९. गर्व की गर्विता, १०. मरण की सून्या, ११. मद की स्तिमिता, १२. विषाद की विसन्ना, १३. असूया की पर्यस्था ।

इति उणंचास द्रष्टि ।

जा जा स्थाई भाव के जा जा रस के जा जा संचारी भाव के उदाहरण तें जा जा की द्रष्टि कौ उदाहरण जानि लीजै ।

इति श्री मद्वृंदावन चंद्र चरणारविंद मकरंद पाना नंदित अलि रसिक गोविंद कविराज विरचितम् श्री रसिक गोविंदानंदघने रसभाव, विभावानुभाव, सात्विक संचारी स्थायी वर्नन नाम प्रथम प्रवंध ।। १ ।।[1]

अथ नायका नायक वर्नन

॥ दोहा ॥

वरनौं[2] नायक नायका[3], रस आलंवन जानि ।
इन हीं तें शृंगार रस, प्रगट होत है आनि ।। १ ।।

प्रथम नायका है तदपि, नायक कहौं सुजान ।
ज्यौं पहलै सूची करत, पुनि कटाह निरमांन ।। २ ।।[4]

अथ नायक लक्षण

॥ केसव कौ दोहा ॥

अभिमानी त्यागी तरुन, केलि कलानि प्रवीन ।
[6]भव्य छमी सुंदर धनी, सुचि रुचि सदा कुलीन ।। ३ ।।

इत्यादि गुन संयुक्त नायका नष्ट प्रीतिवान होय, सो नायक ।

॥ दोहा ॥

सव सुप सार उदार अति, चतुर चारु रिझवार ।
तन सुकुमार अपार छवि, श्री व्रजराज कुमार ।। ४ ।।

1. अ०—प्रबंध के अंत में दिया गया यह विवरण अलवर प्रति में नहीं है। "जानि लीजै" के फौरन बाद ही नायक, नायिका भेद प्रारंभ हो जाता है।
2. अ०—'कहौं'
3. अ०—'नायकनि'
4-4. अ०—'ज्यौं तकुआ पहलै करत, पुनि अहीरनि निर्नान'

॥ कवित्त ॥

तन सुकुमार है री वदन सुढ़ार है री,
लोचन उदार छवि गोविंद अपार है ।
सुभग सिंगार है री उर पर हार है री,
मुकट धरनहार रूप कौ पसार है ।
अधर सुधा रहै री वंसी कौ उचार है री,
वारि वारि डारे केते कोटि कोटि मार है ।
सुपनि कौ सार है चतुर चित्त चारु है,
रसिक रिझवार व्रजराज कौ कुमार है ॥५॥

अथ नायक भेद–

नायक तीन—पति, उप-पति, वैश्यक ।

पति अरु उपपति के चारि भेद–

अनकूल, दक्षरण, धृष्ट, सठ । पति विषै सठत्व हैऊ, नही हूं है । उपपति विषैं सठत्व निश्चैं है । अनकूलादि भेद हौंइ हूं, नही हूं होंइं ।

वैश्यक के तीन भेद हैं–

उत्तम, मध्यम, अधम । ए तीन भेद तीननि के हैं, कोऊ अैसैं कहैं हैं–

॥ सुंदर कौ दोहा ॥

पति उपपति वैश्यकनि कौ, कवि कैं यहै विचार ।
उत्तम मध्यम अधम ए, तीनौं तीन प्रकार ॥६॥

मध्यम मैं मानी अंतर्गत है, चतुर उत्तम मैं अंतर्गत है । प्रोषित आदि भेद उपपति अरु वैश्यक के हैं ।

सव नायकनि के सषा चारि प्रकार हैं–पीठि मर्द्द, विट, चेट, विदूषक ।

नायक में अष्ट गुन हैं–

सोभा, विलास, माधुर्ज, धैर्य, गांभीर, तेज, लाजित्य, औदार्य ।

अथ पति लक्षण

वेद विधि तें पाणिग्रहण करै, सो पति ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

पांय धरै दुलही जिहि ठौर, रहै मतिराम तहीं द्रग दीनें ।
छाड्यौं सयानि के संग को षेलिवौ, वैठे रहैं घर ही रस भीनें ॥
सांझहि तें ललकैं मन हों मन, लालन यौं वस कैं रस लीनैं ।
लौंनी सलौंनी के सौंनें से अंगनि, गौंने की चूनरी टौंने से कीनें ॥७॥

॥ दोहा ॥

जा दिन तें गौनी भयौ, आई वाल रसाल ।
ता दिन तें विरहनि भई, हरि उर तें वनमाल ॥८॥

॥ सवैया ॥

दीह दरी गिरि शृंग उतंग, मध्यान कौं भान तपै पुनि भारी ।
व्याकुलता तन में श्रम स्वेद थकी, गति प्यास लगी अति न्यारी ॥
देषि कहैं रघुनंद गुविंद सुनौं, अरविंद-मुषी सुकुमारी ।
मो कर पैं कर कौं धरि कैं, हरवैं हरवैं चलि प्यारी ॥९॥

अथ उपपति

वेद-विधि तैं पाणिग्रहण नही, केवल अनुरागवान ही होइ, सो उपपति ।

॥ सवैया ॥

मींन के कौंन पै चंद दिपै अति, सुंदर कीवौ करै उजियारी ।
ताप हरै तन की मन की पुनि, नैंन चकोरनि कौं सुषकारी ॥
गोविंद आनदकंद कहै मुही एक, लगै उर मैं डर भारी ।
आंनि अचानक अंतर जौ न करै, सजनी रजनी अंधियारी ॥१०॥

अथ वैश्यक

वैश्यक वेश्या प्रति प्रीति धन दै कैं करै है, यातैं रसाभास प्रसंग जानि कैं कह्यौ नही ।

अथ अनकूल

और नारी सौं प्रतिकूल एक नाइका-निष्ट प्रीतिवान होइ, सो अनुकूल ।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोवन अनूप अंग अंग वास,
केस-पास भ्रू-विलास वीरी मुष पान की ।
मंदहास सहज सुवास अलि आस पास,
जीवनि है मूरी निज प्रीतम के आंन की ॥
इक पतिनी कौ व्रत जगत विष्यात सदा,
अैसी प्रीति रीति स्यांमसुंदर सुजान की ।
श्रीपति के संग श्री विराजै श्री गुविंद त्यौं ही,
आनंद के कंद रामचंद्र जूकैं जानकी ॥११॥

केसव

॥ सवैया ॥[1]

केसव सूवे विलोचन सूधी, विलोकनि कौं अवलोकै सदाई ।
सूधी ये वात सुनैं समुझै कहि, आवति सूधी ये वात सुहाई ॥
सूधी ये हांसी सुधा निधि सौं मुप, सोधि लई वसुधा की सुधाई ।
सूवे सुभाव सवै सजनी वस, क्यैं किये अति टेंटे कन्हाई ॥१२॥

विहारी

नहि हरि लौं हियरा धरौं, नहि हर लौं अरधंग ।
एक तहीं करि रापि हौं, अंग अंग प्रति अंग ॥१३॥

अथ दक्षण

वहुत नाइकानि सौं समान प्रीति करै, सो दक्षण ।

सवैया

द्वारिकानाथ सुधारण कौं चले जस, जुधिष्ठिर कैं सुषकारी ।
कंचन चौकी सनान करैं छवि देषन, आईं जितीं निज नारी ॥
आनंदकंद गुविंद सुजान समान सवै, जिय जानि कैं प्यारी ।
रोम उठे अँग अँग नवीनें सुलोनें, दूहूं द्रग मूंदि मुरारी ॥१४॥

विहारी

गोपिनु संग-निसि सरद की; रमत रसिक रस रास ।
लही छेह अति गतिनि की; सवनि लषे सव पास ॥१५॥

---

1. अ०—केशव का यह सवैया अलवर-प्रति में नहीं है ।

अथ धृष्ट

अपमान तें, लज्जा तें निडर अरु अनुरागवान होइ, सो धृष्ट ।

॥ सवैया ॥

पौढ़ी हुती परजंक निसंक, अचानक ही पग कौं सहरायौ ।
जागत गारि दै मार दै कंज की मैं, ढ़िग तें गहि बांह ऊठायौ ॥
द्वार कपाट दै पौढ़ि रही पैं, गुविंद की सौंह तऊ न लजायौ ।
देषौं कहां छल कै छिपि कें छिन मैं, कित ह्वै इत ही फिरि आयौ ॥१६॥

विहारी

मारी मनुहारची भरी, गारचौं षरी मिठाहि ।
वाकौं अति अनषाहटौ, मुसकाहट विन नांहि ॥१७॥
लरिका लैवे के मिसैं, लंगर मो ढ़िग आइ ।
गयौ अचानक आंगुरी, छाती छैल छुवाइ ॥१८॥

॥ केसव कौ सवैया ॥

नेह भरे लै लै भाजत भाजन, कौंन गनें दधि दूध मठाये ।
गारि दिये तें हसैं वरजें घर आवत, हैं जनु वोलि पठाये ॥
लाजकी ओर कहा कहौं केसव, जे कहियें ते सवै गुन ठाये ।
मां म पिवै इनकी मेरी माई को हैं, हरि आठहु गाठि अठाये ॥१६॥

आठौं गाठि के नाम

मनसा वाचा कर्मना, चितवनि विहसनि लेपि ।
चलनि चातुरी आतुरी[1], आठौं गाठि विसेष[2] ॥२०॥

1. अ० — अलवर प्रति के आधार पर 'आतुरी'
2. अ०—'विसेदि'

अथ सठ

प्रीति में कपटी, सो सठ ।

अनत ही रति मांनि अंग वेप और ठांनि,
सापराध आप उठि आयौ मेरै भोर है ।
सपी के भरोसें भरि लीनौं मैं भुजानि कछू,
पिय कौं रहसि कह्यौ ता सौं तिहि ठौर है ।।
ग्रैसें तो न होइ यौं सुनाइ मुसकाइ चित,
चाय सौं नचाय नीकैं नैंननि की कोर है ।
लटकि लपटि लग्यौ भपटि उरोज ग्रैसो,
निपट कपटकारी कपटी कठोर है ।।२१।।

मतिराम

।। दोहा ।।

निलज नैंन कुलटानि कें, ग्रांनि वसें व्रजराज ।
हिये तिहारे तें सकल, मारि निकारी लाज ।।२२।।

विहारी

वे ही गड़ि गाड़ें परी, उपट्यौ हार हियें न ।
ग्राल्यौ मोरि मतंग मन, मारि गुरेरनि मैं न ।।२३।।

केसव

।। कवित्त ।।

काननि कें रँग रंग नैंननि कैं डोलौ संग,
नासा-ग्रग्र रसना के रस ही समाने हौ ।
ग्रौर गूढ़ कहा कहीं मूढ़ हौ जू जाने जाहु,
प्रोढ़ रूढ़ केसौराय नीकैं करि जाने हौ ।।

तन आन मन आन कपट निदान कान्ह,
साँची कहौ मेरी आन काहे कौं डराने हौ ।
उह तौ विकानी हाथ मेरें हौं तिहारें हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के विकानें हौ ॥२४॥

अथ उत्तम

नाइका कोप हो तें हू मनाइवे मैं ततपर होइ, सो उत्तम ।

सुंदर

॥ सवैया ॥

आए चले पलिका पैंल लों ललनां की, लषों अषियां सतरानी ।
जानी कौ रोस भरी है तहां लैं महा रसिया रस की सव ठांनी ॥
मांगत काहू सहेली हू पैं कहि सुंदरि सौं, धौकि पानकि पानि ।
त्यौं अपनैं कर लैं करि कैं हरि, दौरत बोलि सुधारस वानी ॥२५॥

अथ मध्यम

नाइका कोप हो तें अपनों कोप अरु अनुराग प्रगट नहीं करै, केवल वा के मन के भाव कौं ग्रहण करै, सो मध्यम ।

सुंदर

॥ कवित्त ॥

ज्यौं ही चलि आये लाल दीठि भरि देषी वाल,
ठाढ़ी रही मुष मूंदें मांनौं कंज-कली है ।
आदर न कछू कियौ आगें ह्वै न पीउ लियौ,
वोली न विलोकी ठौर तें न हली चली है ॥

कान्ह हूं न कछू कह्यौ ज्यों ही देपी त्यों ही रह्यौ,
पुनि लागी करन सिंगार वोलि अली है ।
मोंहनी की यह रीति भांति देषि मौहन की,
मनसा पैं आनंद के फलनि सौं फली है ।।२६।।

अथ अधम

भय तें, लज्जा तें निडर अरु काम-केलि मैं कृति कृति, सो अधम ।

सुंदर

।। सवैया ।।

जाति चली ही अलीनि मैं काल्हि तहां, लषि आय कैं दीनौं ढ़का कौं ।
हौं तौ गई गडि लाजनि ही वे हसी, सब ओझिल दै अचरा कौं ।।
ऐसौ महा अति ढ़ीठ सपी कही सुंदर, है यह जौ गुन जाकौ ।
ताकी तू वात चलावति है सुपनै हू, न देषियै री मुष वाकौ ।।२७।।

अथ मानी

मान जाकैं होइ, सो मानी । नाइका कछु कह्यौ नहीं करै तव नायक कैं मान होत है ।

।। केसव कौ सवैया ।।

आगें कहा करि हौ तुम तौ, अव ही तैं हमैं इतनें दुष दीनौं ।
केसव कैसैं हूं लाज कि लाड तें, भूलि गई तौ भई हित हीनैं ।।
भेटी भई भरि अंक लला भरि, जीभन वोलियै वोल प्रवीनैं ।
देपे नही कवहूं भरि आपिनी आज[1] ही कैसें चलै चित[2] लीनें ।।२८।।

1. अ०—'आजु'
2. अ०—'चितु'

अथ चतुर

लक्षण नाम हीं मैं हैं । चतुर दुविधि—वचन विगि, चेष्टा विगि ।

अथ वचन विगि चतुर

॥ सवैया ॥

गुंजत मंजु अली जमुना तट, फूल निकुंज वनी मन मानी ।
तैसी ए चंद्रिका चंद अमंद कहै, व्रजचंद गुविंद यौं बानी ॥
सीतल मंद सुगंध समीर वहै, सुरतोत्सव के सुषदानी ।
पायक ज्यौं रति नायक सायक, चाप चढ़ाय चलै अगवानी ॥२६॥

अथ चेष्टा विगि चतुर

सुंदरि षरी ही निज मंदिर के आंगन मैं,
इंदिरा-सी सुंदर सरस छवि छायकैं ।
ताही मग आये हरि धीरी गति वीरी मुष,
हाथ मैं जंभीरी लै दिषाई सचु पायकैं ॥
चित्रिनी चतुर लषि कीनी चतुराई ता मैं,
दीनी श्री गुविंद कौं सहेट समुझाय कैं ।
चित्र कौ विचित्र मित्र द्वार पैं लिष्यौ हौ ताकैं,
स्याही की लगाई बुंद चंदमुषी चायकैं ॥३०॥

अथ प्रोषित

नाइका तैं वियोग है जाकौ, सो प्रोषित ।

॥ कवित्त ॥

जाति हुती काल्हि ग्वालि जमुना के जल कौं,
गुविंद कहैं ताही मग मेरौ भयौ आयवौ ।
संग की सषी सौं वतरावति करति मिसु,
मो दिसि सरस हाव भाव कौ वतायवौ ॥

चित्त छाय रही उही छवि वा छवीली की सु,
छिनहूं न छूटै अंग अंग कौ दिपायवौ ।
कटि कौ चलैवौ मंद-मंद मुसकैवौ गैवौ,
नैंन सैंन दैवौ भृकुटीनि कौ नचायवौ ।।३१।।

अथ नर्म सषा

नायक सौं नाइका भली प्रकार आनि मिलावै, सो नर्म सषा ।

अथ पीठि मर्द

नाइका के मान दूरि करि, करिवे मैं चतुर, सो पीठि मर्द ।

।। कवित्त ।।

मांनहूं तजैगी औ गुमान हूं तजैगी सत–
रान हूं तजैगी अरु पांन हूं चवावैगी ।
उठि हू चलैगी पति संग हू मिलैगी सव,
सौतिन के दूषन हूं भूषन वनावैगी ।।
मानद गुविंद सौं न मांन करि मानिनी तू,
मानि कह्यौ मेरौ न तौ फिरि पछितावैगी ।
सीतल सुगंध मंद मारुत अमंद चंद्र,
चंद्रिका समेत निसा असी नहि पावैगी ।।३२।।

अथ विट

प्रीति वढ़ावने मैं चतुर, सो विट ।

।। कवित्त।।

आनंद कौ कंद कुमुदेश्वर प्रगट भयौ,
औषधीस सुधामई जानत जिहान है ।
तैसौ भयौ नयौ नयौ मारुतेश्वर रुचिर चारु,
गोविंद सुगंध मंद सीतल विधान है ।।

काम हूं तें अति अभिराम घनस्यांम वैद,
आयौ रस-दानी रानी सरस सुजान हैं ।
कहां धौं रहैगी अब तेरे उर-अंतर मैं,
मांन ज्वर जदपि विकार वलवान है ॥३३॥

अथ चेट

मिलावने मैं चतुर, सो चेट ।

सुंदर

॥ सवैया ॥

दैव के जोग तें आंनि जुरे जुग, कुंज मैं कान्ह[र]राधिका रानी ।
षेलि न बोलि सकै कहिसुंदर, मान ह्वै वैठि रहै चुप ठांनि ॥
मेरौ सकोच कियौ है इन्है यह, चातुर चेटक यौं जिय जानि ।
या मिस आप उहां तै उठ्यौ, जमुना तट जात हों पीवत पानी ॥३४॥

अथ विदूषक

वाक्यादि चातुरता करि कैं अरु हास्यकार होइ, सो विदूषक ।

सोमनाथ

॥ सवैया ॥

केलि निकुंज मैं कुंज विहारी रमैं, तिय संग हिये सचुपायकैं ।
ए ससिनाथ जू ताही घरी उठि वोल्यौ, सषा छल वैंन वनायकैं ॥
आइये वीर वली वलदेव सुनी, यह स्याम सुजान सुभायकैं ।
आइ गये हरि चौंकत से विहस्यौ, तव ओट लतानि की जायकैं ॥३५॥

अथ अष्ट गुन तिन मैं प्रथम सोभा

जा करि कैं अनुरागिता झलकै, सो सोभा ।

।। कवित्त ।।

दसरथ-नंद जगवंदन आनंदकंद,
छायौ तव कीरति कौ विमल वितान है ।
जानकी के रवन सुजान उपमांन आन,
भानु-कुल भानु चहूं चक्कनि मैं आंन है ।।
मोही पै कृपाल रघिपाल भुवपाल राम,
असी भांति जानें जिय जेतिक जिहांन है ।
ज्यौं नदी अनेक अनुकूल गनें सिंधु कौं पै,
सिंधु कें गुविंद कवि सव ही समान हैं ।।३६।।

अथ विलास

जा करि कें गति मैं विचित्रता जानि आइ, सो विलास ।

।। सवैया ।।

पाय धरे तें धरा लचकै गज-मत्त ज्यौं, गोविंद चाल चलंत है ।
लोचन चारु चितौं निके आगें गनें, तृन सौं जग असो लसंत है ।।
कौसलराज कुमार यहै सुकुमार हि तें सुषमां सरसंत है ।
मूरति वंत किधौ रस वीर कीधौं, अभिमान ही मूरतिवंत है ।।३७।।

अथ माधुर्ज

छोव के कारण हू मैं छोभ नही होइ, सो माधुर्ज ।।

।। कवित्त ।।

प्रकट प्रचंड भुज-दंडनि मैं सस्त्र लै कें,
लंक तें निसंक कुंभकरन सिधायी है ।
तैंसी संग विकट वलिष्ट ठट्ट भट्टनि कौ,
कपिनु कौं कटक निपट्ट ही भगायौ है ।।
हनुमांन जांमुवान अंगद कपेंद्र आदि,
भीम भेष देपि भांति भांति भय पायौ है ।।

आनद के कंद श्री गुविंद रामचंद्र सो ही,
सौं ही जुद्ध काज वीर विहसि वुलायौ है ॥३८॥

अथ धैर्य

विघन होतें हूं कारज तें चलायमांन नही होइ, सो धैर्य ।

॥ कवित्त ॥

सीतल सुगंध मंद पवन चलायौ, दर-
सायौ रितु सरस वसंत-सम यौ नयौ ।
मैंन मंत्र मोहिनी दिढ़ायौ री मचायौ फाग,
हाव भाव कौतुक कटाछिनि महा ठयौ ॥
मधुर मृदंग वीन वंसहि वजायौ राग,
रंग बरसायौ अनुराग घन ऊ नयौ ।
सब करि हारी सुर नारी यौं गुविंद कहै,
तदपि पुरारी कौ विकारी चित्त ना भयौ ॥३९॥

अथ गांभीर

भय सोकादिक तै चित्त मैं विकार नही होइ, सो गांभीर ॥

॥ कवित्त ॥

राजनि के राजा महाराजा दसरत्थराज,
राज साज दैन काज राघव वुलाये हैं ।
आनँद के कंद श्री गुविंद रामचंद्र जू,
प्रफुल्लित मुषारविंद आये छवि छाये हैं ॥
परम उदार रिझवार सुकुमार तिन्हैं,
कांनन कौं केकई के कहैं तें पठाये हैं ।
जानकी रवन दुष दवन भवन छाडि,
तैसै हीं प्रसन्न मन वन कौं सिधाये हैं ॥४०॥

अथ तेज[1]

और के किये अपमानादिक कौ नही सहनौं, सो तेज ।

॥ कवित्त ॥

आनँद के कंद श्री गुविंद रामचंद्र जू कें,
सनमुप रावन डरावन कों आयौई ।
जानकी कौं देहैं न तौ वेगि फल पैहै दुष्ट,
ऐसी भांति सवद सुग्रीव नैं सुनायौई ।।
सुनत ही गरवाय भृकुटि चढ़ाय कें सु,
प्रगट प्रताप आप अधिक जनायौ ही ।
वीस भुज सीस दस रीस ह्वै कपीस पर,
सायक लगाय चाप चाप चाय सौं चढ़ायौ ही ।।४१।।

अथ लालित्य

वाणी मैं वेपादिक मैं मधुरता सौ, लालित्य ।

॥ सवैया ॥

चंदमुपी अरविंद विलोचनि अंग, अनंग के रंग सौं भीनी ।
जोवन रूप अनूप प्रभा सव ही विधि, केलि-कलानि प्रवीनी ।।
जाति कहां इत आइये चाय सौं, देषत ही मति कौं हरि लीनी ।
हाथ मैं हाथ लै वात कही पुनि, सैंन संकेत कौं गोविंद कीनी ।।४२।।

अथ औदार्य

सत्रु मित्र मैं समान वुद्धि सो, औदार्य ।

1. अ० अलवर प्रति में पहले 'लालित्य दिया गया है, तदुपरान्त 'तेज'

।। सवैया ।।

श्री रघुनंद गुविंद अनंद के कंद हैं, को उपमा कवि टोहैं ।
कीरति की अति जोति जगामग, जागि रही सव कौ मन मोहै ।।
सत्रुहू मित्र समान सवै जग मैं, जन ऐसौ उदार सु को है ।
जैसी कपेंद्र पै सोहै कृपा दसकंध के वंधु पै तैसी एसो है ।।४३।।

इति नायक निरूपणं ।

अथ नाइका निरूपणं

जोवनादिक गुन-संजुक्त नायक के रति कौ आलंवन जो स्त्री, सो नाइका ।

।। कवित्त ।।

मृदु अरविंद-सी अमंद चंद-सी सुगंध,
चंदन-सी भारी भौर भीर मडराति है ।
अंगनि मैं अंग राग नैंननि मैं रंग राग,
भौंहनि मैं हाव भाव मुरि मुसकाति है ।।
पट फहरात उघरात गात एक हाथ,
ढ़ापैं इक हाथ जलजातहि पिराती है ।
गोविंद अनंद सौं चितौतिचारु सोहै मोहै,
कोहै यह चित्तहि चुरायें चली जाति है ।।१।।

कृष्णलाल

छीवर छवीले वारी मुलकट नीले वारी.
लोचन लजीले वारी तिरछी चितै गई ।
चंपक वरन वारी कोमल करन वारी,
राते अधरनि वारी मैं न वीजवै गई ।।
कृष्ण वंक भौंहैं वारी नथुना चढ़ौं हैं वारी,
मुकता वडो हैं वारी हित सौं हितै गई ।

मद गज चाल वारी घूंघट रसाल वारी,
लाल साल वारी बाल हाल मन लै गई ।।२।।

अथ नाइका भेद–

सो नाइका तीन विधि–स्वकिया, परकिया, सामान्या ।

अथ स्वकिया भेद—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा ।

अथ मुग्धा भेद–

प्रथमावतीर्ण मदना, प्रथमावतीर्ण मदन विकारा, रतौ वामा, मान कोमला, अधि लज्जावती ।

अथ मध्या भेद—प्रौढ़, जोवना, प्रौढ़ स्मरा, सुरत विचित्रा ।

अथ प्रौढ़ा भेद–

कामांधा, घनतारुन्या, समस्त रस-कोविदा, भावोन्नता, आक्रांत लज्जा, आक्रांत नायका ।

अथ मध्या प्रौढ़ा के तीन तीन भेद है—धीरा, अधीरा, धीरा धीरा ।

ए छऊं द्वै द्वै प्रकार हैं—जेष्टा, कनिष्टा ।

अथ परकिया भेद– ऊढ़ा, अनूढ़ा ।

ए दोऊ छ प्रकार हैं–

गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, लछिता, अनसयना, मुदिता । गुप्ता-त्रिविधि,[1] विदग्धा-द्विविधि,[2] अनसयना-त्रिविधि ।

---

1. अ० अलवर प्रति के अनुसार ये तीन भेद—'भूत' 'भविष्य' और 'वर्तमान' हैं ।
2. अ० अलवर प्रति में ये दो भेद—वाक्य और क्रिया बताए गए हैं ।

ऐसैं तेरह भेद स्वकिया के, द्वै भेद परकिया के,एक भेद सामान्या कौ।

ए तीनूं नाइका तीन विधि हैं-

अन्य संभोग दुषिता, मानवती, गर्विता। और भेद सव इनहीं मैं अंतर्गत हैं। ये सोरह भेद आठ आठ हैं। संपूर्ण मिलि कैं तीन तीन विधि हैं। उत्तमा, मध्यमा, अधमा।

अथ अष्ट भेद भरतोक्त

वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीन पतिका, कलहांतरिता, पंडिता, प्रोषित पतिका, अभिसारिका।

ऐसैं तीन सौ चौरासी भेद हैं।

दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य इन भेदनि तें ग्यारह सौ बावन होत हैं। दिव्य रुक्मिण्यादिक, अदिव्य मालती कंदलादिक। दिव्यादिव्य सची, उरवसी, द्रौपदी, तारा, मंदोदरी आदि।

इन के जोवन के अलंकार अठाईस हैं (२८)-

तिन मैं भाव हाव हेलाए तीन तौ सरीर तें उतपन्न होत हैं। सोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्ज, प्रागल्भ्य, औदार्य, धैर्य। ए सात अनायास प्रगट होत है।

लीला, विलास, विच्छिति, विव्वोक, किलकिंचित, मोटायत, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मौग्ध, विक्षेप, कौतूहल, हसित, चकित, केलि। ए अठारै विसेस जोवन तें प्रगट होत हैं।

अथ दूती

सषी, दासी, धाय, नटी, प्रतिवेसिनी, रजकी, सन्यासिनी, सिल्पिनी आदि ।

अरु स्वयं--ए दूती तीन प्रकार हैं-उत्तम, मध्यम, अधम ।

अथ दूती कर्म तीनि– कुल द्रव्यादि कथन, बिरह निवेदन, संगम ।

अथ सषी कर्म चारि -शृंगार, सिक्षा, उराहनौ, परिहास ।

अथ स्वकिया - अपनें पति सौं अनुराग करै, सौ स्वकिया ।

।। कवित्त ।।

सुरत भवन लौं गवन की अवधि सषी,
श्रवण लौं वचन अवधि जिय जानिये ।
चित्त की अवधि श्री गुविंद कंत परजंत,
मान की अवधि एक मौंन हीं लौ मानियें ।।
हास की अवधि अधरानि हीं लौं लोयन,
विलासनि की कोयनि लौ औधि उर आनियै ।
सावधि संकल नीति प्रीति एक नावधि यौं,
कुल की वधू की रीति विदित वषानियैं ।।३।।

अथ परकिया

पर पुरुष सौं गुप्त अनुराग करै, सौ परकिया ।

॥ कवित्त ॥

वोल विन आई विन मोल ही विकाई गुन,
रावरे निकाई आदि मो मन वस्यौ करैं ।
तो संग सुहाग अनुराग की सरस चाह,
कहे तैं हसी-सी है पैं प्राण तरस्यौ करैं ॥
रसिक गुविंद स्यांमसुंदर सुजान प्यारे,
सो ही कीजैं जामैं रस-रंग वरस्यौ करैं ।
गोकुल मैं चहूं ओर चौगुनें चवायनि सौं,
दै दै कर ताली कोऊ आली न हर्यौ करै ॥४॥

ऊधौराम

[कवित्त]

पीर मैं ज्यौं नीर ज्यौं समानी वूंद सागर मैं,
तिल मैं सुमन वास भोइगी सु भोइगी ।
तेरे देषिवे की वांनि नैंननि कौं परि आंनि,
लाज और कुल-कानि षोइगी सु षोइगी ॥
लोक परलोक की विसारी सुधि ऊधौराम,
यही वात मन मांझ मोइगी सु मोइगी ।
रूप उजियारे गुन भारे प्रान प्यारे आंषि,
तो ही सौं लगी है हौंनी होइगी सु होइगी ॥५॥

अरु सामान्या गुनवान हूं पुरुष सौं अनुराग धन ही के लोभ तैं करति है । यातैं रसाभास प्रसंग जानि कैं कही नही ।

अथ मुग्धा

तन मैं जोवन की झलक कछुक आनिकैं झलकी होइ अरु लज्जा के के आधिक्य तैं सूछम अनुराग करैं, सो मुग्धा ।

।। कवित्त ।।

वानी की तरंगहू नवेली अलवेली की,
हेली ना भई सुधारस के वृंद की ।
कुचनि की सोभा कर कंधहू कौ वंधु नही,
करिवे कौं लायक न दायक अनंद की ।।
कुटिल कटाछिन समेत न प्रकृति वाके,
नैंननि की सोहै मोहै सौंहैं व्रजचंद की ।
तदपि लुनाई अंग अैसी कछु आई माई,
लपि ललचाई मति रसिक गुविंद की ।।६।।

अथ मध्यां

लज्जा अरु मदन समान होय जाकें, सो मध्या ।

।। सवैया ।।

सोइये तौ व्रजचंद गुविंद की, सुंदरता द्रग देषी न जाई ।
जागियै तौ रति जंग प्रसंग, पिया संग जानि हिये मैं लजाई ।।
दोऊ विचार विचारत ही सजनी, रजनी सव यौं हीं विताई ।
काम सँकोच की संधि कें मध्य न जागि सकी न तौ नीद ही आई ।।७।।

विहारी

समरस समर सकोच वस, विवस न ठिक ठहराइ ।
दुहुं ओर अैंची फिरै, फिरकी लौं दिन जाय ।।८।।

भेटत वनत न भांवतौ, चित तरसत अति प्यार ।
धरति लगाइ लगाइ उर, भूपन वसन हथ्यार ।।९।।

अथ प्रौढ़ा

जज्जा तिरस्कार अैसौ मदनानुराग है जाकें, सो प्रौढ़ा ।

॥ कवित्त ॥

सरद उज्यारी फुलवारी मैं लसत प्यारी,
आये तहां चतुर बिहारी छवि छायकैं ।
देषत हीं चाय सौं सरस अंग अंग भाव,
सात्विक ह्वै आयौ उर आनँद वढ़ायकैं ॥
आदर कै लीनैं वर सुंदर गुबिंद हरि,
इंदीवर नैंननि के पांवडे विछायकैं ।
कीने कल कोक की कलानि के अनंत भेद,
कंत कौं इकंत मैं निसंक अंक लायकैं ॥१०॥

भगवंत[1]

आज मन भावन करी हौं अति पावन सु,
क्यौं हूं क्यौं हूं आवन भयौ है चित चैंनी सौं ।
लैहौं कंठ लाइ जैहैं विरह बलाई भग-
वंत सुष पाइ वडे आदर की लैंनी सौं ।
कंचुकी उतारि उर अंचल उघारि डारि,
सकल सुगंध ढ़ारि दै हौं सुषदैंनी सौं ।
प्यार करि प्यारौ जौ लौं उर सौं विहार करै,
तौ लौं उर हार तू विहार करि वैंनी सौं ॥११॥

अथ मुग्धादिक के भेद—इनके नाम ही लक्षन हैं ।

अथ प्रथमावतीर्ण मदना

॥ कबित्त ॥

आई सिसुताई की तगीरी उर-पुर फिरी,
नृप मकरध्वज की नूतन दुहाई है ।

1. अ०—प्रति में यह कवित्त नहीं है ।

पीनताई कटि की नितंवनि छिनाई रोम,
राजी नें हुलसि हरि कुच लघुताई है ।।
लैलई द्रगनि मृदुताई श्रैपें हौं न जानौं,
कौनें मति रसिक गुविंद की चुराई है ।
जानि कैं दुराजे की रजाई सुषदाई माई,
आपस मैं लूटि अंग अंगनि मचाई है ।।१२।।

विहारी

लाल अलौकि(क)लरकई, लषि लषि सपी सिहाति ।
आज कालिह तैं देपियत, उर उक सौं हीं भांति ।।१३।।

अपनें तन के जानि कैं, जोवन नृपति प्रवीन ।
नैंन उरोज नितंव कौ, वडौ इजाफा कीन ।।१४।।

या सौं कोऊ अज्ञात जोवना कहै हैं ।

अथ प्रथमावतीर्ण मदन-विकार

॥ कवित्त ॥

आलस सौं मंद मंद धरा पैं धरति पाव,
भीतर सौं वाहिर न आवै चित चायकैं ।
रोकति द्रगनि छिन छिन प्रति लाज साज,
वहुत हसी की दीनी वानि विसरायकैं ।।
वोलति वचन मृदु मधुर वनाइ उर-
अंतर के भाव की गँभीरता जनायकैं ।
वात सपी सुंदर गुविंद की कहति तिन्हैं,
सुंदर विलोकें वंक भृकुटी नचायकैं ।।१५।।

॥ प्रसिद्ध कौ कवित्त ॥[1]

छाती देषि छांह देषि चलन प्रसिद्ध लागी,
औरैं गति लागी भुज दाहिनी ढुरावतैं ।
लोलता मुचन लागी हसि सकुचन लगि,
वतियां रचन लागी रस के सुभावतैं ॥
मुरि मुसकान लागी तानैं आनि कांन लागीं,
देषि अनषांन लागी सौतिन कौं आवतैं ।
ज्यौं ही ज्यौं बढ़न लागी भृकुटी चढ़न लागी,
घूंघट कढ़ने लागी जोवन जतावतैं ॥१६॥

मतिराम

इतै उतै सकुचति चितै, चलति डुलावति बांह ।
दीठि बचाय सषीनि की, निरषति छिन छिन छांह ॥१७॥

या सौं कोऊ ज्ञात जोवना कहैं हैं ।

अथ रती बामा

प्रीतम प्रीति सौं न देषै जवै, नव नागरि नीचे कौं नैंन नवावै ।
कंज कली ज्यौं रहै मुष मूंदि, कहै न कछू पिय जो वतरावै ॥
प्रेम प्रजंक पैं पीठि दै प्रौढ़ नई, कछू आपनी रीति चलावै ।
केलि मैं ऊठि चलै मिसु कैं तऊ, आनंदकंद गुविंद कौं भावै ॥१८॥

---

1. अ० प्रति में नीचे लिखा दोहा और मिलता है—

तिय कित कमनैंती पढ़ी, विन जिह भौंह कमान ।
चल चित वेऊत चुकति नहिं, वंक विलोकनि वान ॥

मतिराम

[सवैया]

साथ सषी कैं नई दुलही कौं भयौ, हरि कौ हिय हेरि हिमंचल ।
आय गये मतिराम जंही घर, जानि इंकत अनंग तें चंचल ।।
देषत ही नदलाल कौं बाल के, पूरि रहे असुवानि द्रगंचल ।
वात कही न गई सु रही गहि हाथ दुहूं सौं सहेली कौ अंचल ।।१९।।

।। दोहा ।।

ज्यौं ज्यौं परसै लाल तन, त्यौं त्यौं राषै गोइ ।
नवल वाल डर लाज तें, इंदु वधू-सी होइ ।।२०।।[1]

कोऊ या सौं नऊढ़ा कहै है ।

अथ मांन कोमला

।। सवैया ।।

सषी के सिषये विन अँगनि आनि कें, विभ्रमता की नवानि परी ।
रचना वचनालि की वक्र विलासमई, मुष तें न कछू निकरी ।।
अति उज्जल गोल कपोलनि पें अषियाँनी तें सज्जल धार धरी ।
पहिलें ही गुविंद के दोष तें प्यारी, रुषाई है तौं हू निकाई भरी ।।२१।।

---

1. अ० प्रति में नीचे लिखा सुंदर का कवित्त और मिलता है—

षेलन ही दुलहिनी सुंदर सहेली साथ,
सौनैं की-सी वेलि अलवेली वधू मई ।
आपस मैं सखी सब सराहति ताहि चाहि,
धाय कह्यौ दीठि लागि जायगी रहौ दई ।
तव मिसु घालि कह्यौ ष्याल ही मैं आये लाल,
तिहि काल उह वाल ऐसे हाल है भई ।
आखैं भरि आई मुख पीरी परिझांही चौंकि,
चिरैया की नांई भागि भौंन कौंन मैं गई ।

अथ अधिक लज्जावती

॥ कवित्त ॥

क्यौं हूं क्यौं हूं चली चंद-मुषी ब्रजचंद जू पैं,
लाज नैं लपेटि लई मारग मैं आयकैं ।
तदपि न केवल अलवेली चली उत ही कौं,
वचन सहेलिनु के सुन सुष पायकैं ।
देषत ही रसिक गुविंद लई सुंदरि कौं,
भाय सौं भुजा भरि कैं मृदु मुसकायकैं ।
रोम की उमंग अंग अंग रति जंग भीत,
चहूं और चकित चितौति चित चायकैं ॥२२॥

॥ काहू कौ सवैया ॥

रंग कैं राति नई दुल ही, सषियानि विसास दै सेज सुवाई ।
आवत ही रसिया अति चातुर, अंग सौ अंग छुवाइ जगाई ॥
ता समैं चौंकि परी चपला सम, रूप की वोलि इती छवि छाई ।
लीक दै मानहु कंचन से तन, काम सु नार सलाप लगाई ॥२३॥

विहारी

कत दल मलियत निरदई, दई कुसुम सौ गात ।
कर धरि देषौ धर धरा, उर कौ अजहु न जात ॥२४॥

॥ सुंदर [को] सवैया ॥[1]

पग सौं पग पींडुरी पीडुरी सौं गहि, सुंदरि जांघनि जोरि रही ।
कुच दोऊ गहे कर एक सौं ही कर, एक सौं घूंघरी गाढ़ै गही ॥

---

1. अ०—अलवर प्रति में यह सवैया नहीं है ।

इहि भांति लियें डर प्रीतम कौ संग, सोवत हीं लइ ही दुलही ।
अलि हौ तौ गई छकि सो छवि देपति, राति की रीझि न जाति कही ।।२५।।

या सौं कोऊ विश्रब्ध नवोढ़ा कहे हैं ।

अथ मध्या भेद

अथ आरूढ़ जोवना[1]

केसव

॥ कवित्त ॥

चंद ऐसौ भाल भाग भृकुटी कवान ऐसी,
मैंन कैसें पैनें सर नैंननि विलास है ।
नासिका सरोज गंध वाह से सुगंध वाह,
दारयौं से दसन के सौ वीजुरी सौ हास है ।।
भांई ऐसी ग्रीवा भुज पांन सो उदर अरु,
पंकज से पाई गति हंस कै सी जास है ।
देपी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता-सी,
सौंने सौ सरीर सव सौंवे-सी सुवास है ।।२७।।

लाल आनन मुकर-सी है रूप सुधारक-सी है,
सुधारस वरसी है वसुधा सुहाग है ।
सौरभ अतर-सी है उरज सतर-सी है,
सौति लपि तरसी है लाल मन लाग है ।
कंचन के सरसी है नैंन पंच सरसी है,
नेंक न कसर-सी है जोवन की जाग है ।
सव गुन सरसी है सोभा जल सरसी है,
तिन छिन दरसी है ता के भाल भाग है ।।२७।।

1. अ०—अलवर प्रति में 'प्रोढ़ जोवना'

॥ काहू कौ कवित्त ॥

द्रग तेरे देषैं मृग सेवत उजारि फिरैं,
कटि देषैं केहरि कुलहि तजि गयौ है।
देह देषैं कंचन अगनि परै धाय धाय,
मुप देषैं कलानिधि कला-हीन भयौ है॥
दसन की जोति देषि दारयौं हूं दरार षाति,
नासिका के देषैं कीर बनोवास लियौं है।
चाल तेरी देषैं गजराज न धरत पाउ,
भौंह की मरोर तैं धनुष तो हि नयौ है॥२८॥

अथ प्रौढ़समरा

॥ सवैया ॥

गुन जोवन रूप अनूप भरी, ब्रजचंद गुविंद कौं भावति है।
वहि अंतर गूढ़ अगूढ़ निरंतर, कोक-कलानि बढ़ावति है॥
पग पुंज निकुंज के सिष्य किये, रति कूजित शब्द पढ़ावति है।
तिन के मुष तें नव कांम कथा, घनस्यांम कौं वांम सुनावति है॥२६॥

अथ सुरत विचित्रा

केसव

॥ कवित्त ॥

केसौदास विलास मंद-हास जुत अवलो-
कन अलापनि कौ आनँद अपार हैं।
वहिरत सात भांति अंत्र रति सात पुनि,
रति विपरीतिनी के विविध विचार हैं॥

छूटि जात लाज साज भूषन सुदेस केस,
टूटि जात हार सब मिटत सिंगार हैं ।
कूजि कूजि उठैं रति कूजितनि सुनि पग,
सोही तौ सुरत सषी और विवहार है ।।३०।।

विहारी

तमक चमक हांसी ससक, मसक झपट लपटानि ।
ए जिहि रति सो रति मुकति, और मुकति रति हानि ।।३१।।

अथ सात वहिर रति

।। केसव ।।

आलिगन चुंवन परस, मरदन नषरद दान ।
अधर पान सौं जानिये, वहिरति सात सुजान ।।३२।।

अथ सात अंतर रति

स्थिक तिर्यक सनुमुष विमुष, अध ऊरध उत्तान ।
सात अंत्र रति जानिये, केसवराय सुजान ।।३३।।

अरु द्वै विपरीति रति

शृंगार विपरीति, क्रिया विपरीति । असैं सोरह रति हैं ।

अथ सोरह सिंगार

केसव

।। कवित्त ।।

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल वास,
जावक सुदेस पास केस कौ सुधारिवौ ।

अंग राग भूषन विविधि मुष वास राग,
कज्जल कलित लोल लोचन निहारिवौ ।।
वोलनि हसनि मृदु चातुरी चलनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत प्रति पारिवौ ।
केसौदास सविलास करहु कुवरि राधे,
याही विधि सोरह सिंगारनि सिंगारवौ ।।३४।।

कोक

[कवित्त]

उवटि अन्हाय अंग रागहि लगाइ नीकैं,
वेंनी कौं गुहाइ मांग सोभा सरसाइयै ।
पौरिहि दिवाय द्रग अंजन वनाय तिल,
मिस्सीरद लाइ मुप वीरी दरसाइयै ।।
वचन सुनाइ सौंधै भाय अंग अंग छाय,
भूषन सुमन सुभ सुरति लपाइयै ।
महदी रचाय पाय जावक लगाइ सषी,
सोरह सिंगार साजि स्यांम पै सिधाइयै ।।३५।।

अथ द्वादश भूषन

।। दोहा ।।

सीस भाल श्रुति नासिका, ग्रीवा उर कटि वाहु ।
मूल पांनि अगुरी चरन, भूषन रवि अवगाह ।।३६।।

अथ प्रोढ़ा भेद

कामांधा

।। सवैया ।।

केलि समैं हसि कैं रस वात पिया रसिया सौं करैं सुपकारी ।
और कहा कहियै सजनी धनि धन्नि हैं या जग मैं उनहारी ।।

मोचत नीवी कौ वंद गुविंद अनंद सौं श्री व्रजचंद विहारी ।
सांच कहौं मोहि ता छिन ही तें रहै न कछु सुधि सौंहै तिहारी ॥३७॥

अथ घन तारुण्या

॥ सवैया ॥

पीन नितंव महा कटि छीन उरोज उतंग लियें कठिनाई ।
कोमल हास मनोहर वैंन सुनें न विलासनि की सरसाई ॥
भांई भुजा भ्रुव वंक वनी गति मंद अमंद है अंग गुराई ।
आनँद कंद गुविंद किये वस सुंदरि तो तन की तरुणाई ॥३८॥

विहारी

लहलहाति तन तरुनई, लचि लग लों लफिजाइ ।
लगें लांक लोइन भरी, लोइन लेत लगाइ ॥३९॥

अथ समस्त रस कोविदा

कहूं पीक कहूं लीक जावक की अंजन की,
सेंदुर की सीक कहूं कन श्रम नीर के ।
केसरि अगर मृग मद घनसार कहूं,
चोवा चंदनादि कहूं अतर उसीर के ॥
गोविंद के संग की सुगंध मरगजी कहूं,
अैसे न सुगंध वृंद त्रिविधि समीर के ।
उर में सुरत सुघराई सरसाई ताहि,
वाहिर वपानें सव वसन सरीर के ॥४०॥

अथ भावोन्नता

विकस्यौ कछु कंजनि कौ वन, मंजु गुविंद वढ़ावतु है ।
मकरंद पराग सुगंध के वृंद दसौं दिसि कौं उफनावतु हैं ॥

तिहि भार लियें गति मंद किये, इम नूतन मारुत आवतु है ।
तिय सोवै हियें पिय के लगि कें, तिहि के तन ताप तचावतु है ।।४१।।

सुंदर

कान्ह आलिगन आसन चुंवन, कीने अनेक ते कौंन गनावै ।
यौं रति मांनै तऊ तिय कें पति की, छतियां छिन छोडि न भावै ।
भौर भयौ पिय जानें न जैसें, इते पर ए चतुरांई चलावै ।
आंचर सौं ढ़कि मोती-मालहि, सुंदर सीतलताई दुरावै ।।४२।।

मतिराम

प्रान प्रिया मन भांवन संग, अनंग तरंगनि रंग पसारे ।
सारी निसा मतिरांम मनोहर, केलि के पुंज हजार उघारे ।।
होत प्रभात चल्यौ चहै प्रीतम, सुंदरि के हिय मैं दुष भारे ।
इंदु आनन दीप-सी दीपति स्यांम, सरोज-से नैंन निहारे ।।४३।।

अथ आक्रांत लज्जा

लोचन विसालनि मैं अंजन रसाल भाल,
केसरि की पौरि नक-वेसरि सवांरियै ।
कुसुम हमेल हार वाजूवंद पौंहची गुहि,
अतर सुगंध वृंद अंवर मैं ढ़ारियै ।।
रसिक गुविंद स्यांम सुंदर सुघर मुप,
वास केस पास मोती मल्ली विसतारियै ।
कीजै रस रंग के प्रसंगनि उमंगी मेरे,
अंग अंग सरस सिंगारनि सिंगारियै ।।४४।।

अथ आक्रांत नायका

।। कवित्त ।।

आसन औ चुंवन आलिगन अनेक भांति,
जे जे कल कोक की कलानि के विधान है ।

अंतर वहिर रति रीति विपरीतिनि को,
नीति मैं निपुनन समांन उपमांन है ।।
ऐसें अदभुत सुप सिंधु अवगाहै तौ हू,
चाहै नित नयौ नेह चित्त मैं न आंन है ।
सरस विलासनि सौं रस वस दासी भूत,
कीनौं श्री गुंविद स्यांम सुंदर सुजान है ।।४५।।

अथ धीरादि भेद

॥ दोहा ॥

मध्या धीरा वक्र वच, विपम वचन जु अधीर ।
दै उराहिनौं प्रीतम हि, मध्या धीरा-धीर ।।४६।।

प्रौढ़ धीर कोपै गुपत, कोपै प्रगट अधीर ।
गुप्त प्रगट कोपै सुतौ, प्रौढ़ा धीरा-धीर ।।४७।।

॥ केसव कौ सवैया ॥

ज्यौं ज्यौं हुलास सौं केसवदास, विलास निवास हियैं अवरेष्यौ ।
त्यौं त्यौं वढ्यौ तन कंप कछू भ्रम, भीत भयौ किधौं सीत विसेष्यौ ।।
मुद्रित होत सपी वरही इन नैन, सरोजनि सांचु कैं लेष्यौ ।
तें जु कह्यौ मुप मौंहन कौ अरविंद, सौ है सुतौ चंद सौ देष्यौ ।।४८।।

अथ मध्या अधीरा

॥ सवैया ॥

इक तौ अभिलाष अने वसैं, वहुरयौं सविलास उहै दुलही ।
तुम्हरे उर ऐसे कठोर मैं ठौर, कहां हमरे रहिवे कौं रही ।।
विनती कर जोरि हहा करि पापरि, सौंह करौ पैं वृथा सव ही ।
कपटी हौ गुंविद जू जाहु नहौ किनि, झूंठि इते कु कहां तें लही ।।४९।।

विहारी

पट सौं पौंछि परी करी, परी भयानक भेप ।
नागनि ह्वै लागी द्रगनि, नागवेलि रस-रेप ॥५०॥

अथ मध्या धीराधीरा

॥ सवैया ॥

चूंवि भुजा भरि सुंदरि कौं अति, आनँद सौं रति रीति जु कीनी ।
वातनि कौं सुनि तैं उतकंठित, रैंनि विदा करि दीनी ॥
मंद प्रभा मुषचंद की है जडता, तन मैं पुनि न्याय नवीनी ।
यौं कहि कैं नद नंद गुविंद सौं, इंदु-मुषी अषियां भरि लीनी ॥५१॥

अथ प्रौढ़ा धीरा

॥ सवैया ॥

आवत ही लषि आदर कौं उठि आसन एक कौ वास गमायौ ।
पांनी के पांन के ल्यावन मैं न भुजा भरि गोविंद कंठ लगायौ ॥
वोलि लई संग की सजनी वचनामृत हू न पियौ नहि प्यायौ ।
अैसैं पिया रसिया सौं तिया मिसही मिस आपनौं कोप छिपायौ ॥५२॥

अथ प्रौढ़ा अधीरा

॥ सवैया ॥

ईस के सीस पै चंद अमंद सु, दिव्य दिपै सुपमां सरसावै ।
तामैं उमा अपनौं प्रतिविंव कौं, देषत ही उर मैं अनपावै ॥
लोचन लाल विसाल कै भामिनि, भौंहनि वंक निसंक चढ़ावै ।
अैसी सिवा कवि गोविंद कैं, सुकृपा कैं अनंद के वृंद वढावै ॥५३॥

अथ प्रौढ़ा धीराधीरा *

॥ कवित्त ॥

आवत ही रसिक गुविंद ब्रजचंद जू कैं,
आदर कैं हेत उठी हिय मैं हरषियां ।
धीठ्यों दै विहारी प्यारी निपट निसंक आंनि,
ठाढ़े सापराध सुतौ देषत अनषियां ।
कहां निसि जागे अनुरागे द्रग लागे कहौ,
कहां धौं रसाल मनिमाल लाल रषियां ।
ऐसैं कहि बाल ततकाल ही बिसाल जल,
जाल भरि लीनी उह लाल लाल अषियां ॥५४॥

अथ जेष्टा कनिष्टा

प्यारे को प्यार अत्यंत जासौं होइ, सो जेष्टा । सूक्षम होइ, सौ कनिष्टा ।

॥ कवित्त ॥

त्रिविधि समीर भौंर भीर जमुना कैं तीर,
तैसी ए सरस छाया सघन लतानि की ।
तहां आंषि मीच नीके षेल मिस एक की सु,
एक कर मूंदि द्वै पलक अषियांनि की ॥
एकनि के एक कर पकरि कपोल कुच,
पांन करी माधुरी गुविंद अधरानि की ।
हौं तौ विन मोल ही विकाई सुनि माई आज,
देषि सुघराई स्यांम सुंदर सुजान की ॥५५॥

*अ० प्रति में विहारी का नीचे लिखा दोहा भी है—
सकत न उव ताते वचन, मो रस कौ रस खोइ ।
खिन-खिन औटे खीर लौं, खरौ सवादिल होइ ॥

अथ परकिया भेद

ऊढ़ा—विवाहिता होइ, सो ऊढ़ा ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

क्यौं इन नैंननि सौं निरसंक ह्वै, मोहन को तन पानिप पीजै ।
नैंक निहारैं कलंक लगै इहि, गांउ वसें कहौ कैसें कै जीजै ॥
होति रहै मन यौं मतिराम कहूँ, वन जाइ बडौ तपु कीजै ।
ह्वै वनमाल हियें लगिये पुनि ह्वै, मुरली अधरामृत लीजै ॥५६॥

केसव

॥ कवित्त ॥

पंथ न थकत पल मनोरथ रथनि के,
केसौदास जगमग जैसें गाये गीत मैं ।
पवन विचार चक्र-चंक्रम न चित्त चढ़ि,
भूतल अकास भ्रमैं धाम जल सीत मैं ॥
कौ लौं रापौ थिरि बपु वापी कूप सर सम,
हरि विन कीनें वहु वासर वितीत मैं ।
ज्ञान गिरि फोरि तोरि लाज तरु जाइ मिलौं,
आपही तें आपगा ज्यौं आप निधि प्रीत मैं ॥५७॥

॥ सवैया ॥

जाति भई संग जाति लै कीरति, केसव सो सव सौं हित पूछ्यौ ।
गर्व गयौ गुन जोवन रूप कौ, पुंन्य सु तो पल ही पल वूछ्यौ ॥
कान्ह निहारी ए आन कियें कहौं, लाज कौ नीकै ह्वै नांतौ ई टूट्यौ ।
छाड्यौ सवै हम हेरि तुमैं तुम, पै तन कौ कपटौ नहि छूट्यौ ॥५८॥

अथ अनूढ़ा—अविवाहिता होइ, सो अनूढ़ा ।

मतिराम

॥ सवैया ॥

गोप सुता कहैं गौरि गुसाइनि, पाइ परैं विनती सुनि लीजै ।
दीन दयानिधि दासी कैं ऊपर, नैंसुकि चित्त कृपा सु करिजै ॥
व्याहि जो देहि उछाह सौं मोह न मात पिताहू की सो मन कीजै ।
सुंदर सांवरो नंदकुमार वस्यौ उर, जो वर सो वर दीजै ॥५९॥

॥ दोहा ॥

हौं सुनि आइ नंद-घर, अब तू होइ निसंक ।
राधा मोंहन व्याह तें, जैहै धोय कलंक ॥६०॥

॥ कवित्त ॥

जा के संग पेल आंपि-मीचनी कौ पेलत ही,
दुरि दुरि जहां भली भीरि है लतानि तें ।
सोही श्री गुविंद व्रजचंद आयौ ताही मग,
देपन कौं हरषी सनेह भरी वानि तें ॥
प्यारी सुकुमारी तात मात के भवन परी,
सकुची सरस सपियानि कुल-कानि तें ।
पिय मुप छवि की मरीची सो दरीची[1] ह्वै कैं,
नीची नीची देपति तिरीछी अपियानि तें ॥६१॥

मुकंद

[सवैया]

मात पितानि वुलाय कैं विप्रनी, वेद-रिचानि सौं व्याह रचायौ ।
नागरि कैं तव सोक समूह, मुकंद कहै अति ही सरसायौ ॥
जा सौं सनेह कियौ दुरि कैं सु, उही दुलहा वनि व्याहन आयौ ।
देपत दुष्प गये जिय के तिय के, हिय के मधि आनद छायौ ॥६२॥

1. दरीची=झरोखा ।

अथ गुप्ता

सुरत कौं छिपावै, सो गुप्ता । सो त्रिविधि—१. भूत, २. भविष्य, ३. वर्तमान ।

अथ भूत सुरत गुप्ता

ह्वै गये सुरत कौं छिपावै, सो भूत सुरत गुप्ता ।

॥ सवैया ॥

नीर तैं गागरि भारी भरी सु धरी सिर पैं पुनि दूरि तैं ल्याई ।
देषतैं स्वेद गुविंद की सौं तन स्वासनि की पुनि ऊरधताई ॥
चौंथि चकोर गये मुष कौं जिय जानि कैं चंद अमंद जुह्नाई ।
या(या)दुष तैं जमुना जल कौं अब हौं कवहूं नहि जाउंगी माई ॥६३॥

विहारी

केसर केसरि कुसम के, रहे अंग लपटाइ ।
लगे जानि नष अनष लै, कत वोलति सितराई ॥६४॥

अथ भवष्य सुरत गुप्ता

हौंनहार सुरत कौं छिपावै, सो भवष्य सुरत गुप्ता ।

॥ कवित्त ॥

जमुना[1] के तीर भीर सघन लत्तानि की मैं,
सुघर सुघर सुवा सारिका पढांऊगी ।
अधर मधुर विव जानि कैं गुविंद की सौं,
चैंचुनि सौं चांपि है पैं नैंकु न रिसांऊगी ॥
घोपैं चारु चंद कैं चकोर मुष चौंथि जै हैं ।
अैसे अैसे जद्दपि अनेक दुष पांऊगी ।

1. प्र० 'कालिंदी'

सांझ के समाज काज कुंजनि मैं माई आज,
सांवरी सषी के संग फूल लैन जांऊगी ॥६५॥

अथ वर्त्तमान सुरत गुप्ता

साक्षात सुरत कौं छिपानै, सो वर्त्तमान सुरत गुप्ता ।

॥ काहू कौ दोहा ॥[1]

हसति कहा ह्यां है कहा, हांसी कौ मजकूर ।
कान्ह बनावत गहि गरौ, यौं मारौं चांडूर ॥६६॥

देव

॥ सवैया ॥

लोग लुगाइन होरी लगाइ मिला मिली, चावनि भेटत ही बन्यौं ।
देवजू चंदन चूर कपूर लिलाटनि, लै लै लपेटत ही बन्यौं ॥
ये इहि औसर आय गये समुहाइ, हियौ न समेटत हीं बन्यौं ।
दीनी अनाकिनी औं मुप मोरि पै जोरि, भुजा भटू भेटत ही बन्यौं ॥६७॥

वैनी

[सवैया]

वैनी जू या व्रज में बसि कैं हसि कैं, न चली न मैं सीस उठायौ ।
आज कलिंदी के कूल गयौ गिरिटी कौ, लिलाट की नीकौ न प्रायौ ॥
हेरि लियौ हरि टेरि कह्यौ हसि, कौंन कौ है अजू मैं परचौ पायौ ।
मोहि जंजाल महा उपज्यौ नंदलाल सौं बोलत ही बनि आयौ ॥६८॥

1. अ०—'बिहारी कौ'

अथ दुविधि विदग्धा

वचन मैं चतुर, सो वचन विदग्धा । क्रिया मैं चतुर, सो क्रिया विदग्धा ।

अथ वचन विदग्धा

॥ कवित्त ॥

वर पिछवारैं आनि वंसी मैं सुजान कान्ह,
हेरी दई एरी तांन परी वाके कान मैं ।
सुनि झुकि झूमि कैं झरोषैं झांकी इंदुमुषी,
गुविंद अमंद आभा मंद मुसकानि मैं ॥
आतुरी सौं चातुरी सौं कहति परोसिन सौं,
कही प्यारे पीय सौं सहेट सुभ थांन मैं ।
जमुना के कूल कालिह चलौंगि तिहारे संग,
झूलन कौं पूलन कौं सघन लतान मैं ॥६९॥

विहारी

रह्यौ मोह मिलनौ रह्यौ, यौं कहि गही मरोर ।
उत दै अलिहि उराहनौं, इत चितई मो ओर ॥७०॥

अथ क्रिया विदग्धा *

सुंदर

॥ सवैया ॥

जाति ही वाल सषीनि मैं लाल कौ, पीछे ते वोल सुन्यौ अनुरागी ।
क्यौं लषियैं लषि जांहि सषी लषिवेइ के लालच के रस पागी ॥

*अ०—प्रति में सुन्दर के सवैये की एक पंक्ति का कुछ अंश लिखकर काट दिया गया है । तदुपरान्त सुन्दर का एक कवित्त लिखा है वह भी लाल स्याही से काट दिया गया है । इनके बाद वही सवैया आता है जो जोधपुर प्रति के अनुसार दिया गया है ।

छोरि दई सब साथ की सुंदर यौं, डगरी डग द्वै करि आगी ।
फेरि कैं नारि कह्यौ चलि नारि सु, टेरन के मिस हेरन लागी ।।७१।।

विहारी

मज्जन करि पंजन नयनि, बैठि व्योरति वार ।
कच अँगुरिनु विच दीठि दै, निरपति नंदकुमार ।।७२।।

न्हाय पहरि पट झट कियौ, वेंदी मिस पर नाम ।
द्रग चलाय घर कौं चली, विदा कियै घनस्यांम ।।७३।।

अथ कुलटा

जाकैं रति की तृप्तिता नही, सो कुलटा ।

सुंदर

।। सवैया ।।[1]

अंचल डारें रहै अलवेलि, द्रगंचल चंचल हैं चपला तैं ।
नैंक ही नैंन की सैंननि माँझ, अनेक अनाघत आनति घातैं ।।
बैठि झरोपनि मांझ उहै उझकै, दुरिकैं मुरिकैं मुसकातैं ।
जौ ही लौं जी कौं परै कल तौ लौं, चलैं कछु काम कलोल की बातैं ।।७४।।

सदानंद

।। कवित्त ।।

झनक मनक जोति नासिका वनक मोती,
सदानंद कोती तिय तेरे तीर तोरदार ।

1. अलवर वाली प्रति में इससे पहले निम्नांकित दोहा है—

निस दिन जाकैं रति कथा, सदा कांम सौं काम ।
मीत अनेकन सौ रमैं, कुलटा जाकौ नांम ।।

रतन के काननि तरौंनां इंदु आनन पैं,
पुली है अलक मोती-मालनि मरोरदार ॥
उन्नत उरोजनि पैं कैसी लपी उरवसी,
तैसी तैसी कसी कंचुकी कसूंभी रंग वोरदार ।
छोरदार अंचल की ओर दुरैं दौरदार,
करत कजाकी कजरारे नैंन कोरदार ॥७५॥

विहारी

फिरि फिरि दौरत देषियत, निचले नैंक रहैं न ।
ए कजरारे कौंन पैं, करत कजाकी नैंन ॥७६॥

अथ लच्छिता

वहुत दु रा रायें हूं सपी नें लषी है प्रीति जाकी, सो लच्छिता ।

॥ सवैया मुकंद कौ ॥

करकी कत चारु चुरी कर की, करिकी लर किंकिनि सुंदर की ।
दरकी कुच कंचु तनी तरकी, तरकी लगैं आंषि मनौं सर की ॥
सरकी सिर सारी सु वेसरि की, सरिकी न मुकंद मनोहर की ।
हरकी अति ओप सुधारस की, सरकी छवि शुद्ध सुधारस की ॥७७॥

[सवैया]

लपटी लगि गुविंद लौंने लला सौं, सुलोचन लाली लसैं ललकैं ।
अलसी अलवेली अली अरविंद से, आनन पैं अलसी अलकैं ॥
छतियां छवि छाजैं नप-छत की, छकि मो सौं छिपाति कहा छलकैं ।
पलटैं पट प्रेम पियूष पियें पुनि, पीक पिया कैं पगी पलकैं ॥७८॥[1]

---

1. अलवर की प्रति में यह सवैया इस स्थान पर नहीं है। मतिराम के सवैया के उपरान्त दिया गया है। परिणाम यह हुआ कि अलवर की प्रति में यह सवैया मतिराम का प्रतीत होता है और जोधपुर की प्रति में मुकंद का ।

मतिराम

आई हौ पाइ दिवाय महावर कुंजनि तें करि कैं सुप सैंनी ।
सांवरे आज सवारयौ है अंजन नैंननि कौं लपि लाजति ग्रैंनी ।।
वात के वूडत ही मतिराम कहा कहिये यह भौंह तनैंनी ।
मूंदि न रापति प्रीति अली यह गूंदी गुपाल के हाथ की वेंनी ।।७९।।

अथ अनसयना त्रिविधि

संकेत कौं विगरयौ जानि कें दुपित होइ, सो प्रथम । संकेत मैं न जाइ सकी या तें दुपित होइ, सो दुतिय । हौंनहार संकेत के अभाव तै जो दुपित सो, तृतीय ।

अथ प्रथम अनसयना

।। कवित्त ।।

जमुना के तीर वहै सीतल समीर सोर,
सुक पिक भृंगनि की भीरि सरसात कौं ।
प्यारी सुकुमारी तहां छल सौं सिधारी श्री–
गुंविद सौं मिलन डर डारि तात मात कौं ।।
ललित लवंग की सघन लता सुषी लपि,
वाढयौ अति उर मैं समूह उतपात कौ ।
सूपि गयौ गात वात मुप तें कही न जात,
मंद मुप भयौ जैसैं चंद होत प्रात कौ ।।८०।।

अथ दुतिय अनशयना

।। कवित्त ।।

कुंडल कटक कीट सौं न जुही सेवती के,
मालती की माल औ गुलाव छरी पानि मैं ।
रसिक गुंविद स्यांम सुंदर सुजान आये,
या छवि सौं छवीले छवीली गलियांनि मैं ।।

देषत सयानी मुष वानी न वषांनि मन,
अति पछितानी अकुलानि अंषियानि मैं ।
जमुना के तट बंसी-वट के निकट आज,
हौं न गई कुंजनि मैं सघन लतानि मैं ॥८१॥

मतिराम

छरी सपल्लव लाल कर, लषित माल की हाल ।
कुमिलानी उर-साल धरि, फूल-माल ज्यौं वाल ॥८२॥

अथ तृतिय अनसयना

विहारी

सन सूषी वीत्यौ वनौं, ऊषै लई उषारि ।
अरी हरि अरहरि अजौं, धरि धीरज हिय नारि ॥८३॥

मतिराम

॥ सवैया ॥

वेलिनि सौं लपटाइ रही हैं, तमालनि की अवली अतिकारी ।
कोकिल कीर मयूरनि के कुल, केलि करैं जहँ आनंद भारी ॥
सोच करौ जिन होहु सुषी, मतिराम प्रवीन सवै नर नारी ।
मंजुल वंजुल कुंजनि के घन पुंज, सषी ससुरारि तिहारी ॥८४॥

अथ मुदिता

पिय कौ मिलिवौ निहचैं जानि कैं जो मुदित होइ, सो मुदिता ।

सुंदर

॥ सवैया ॥

लोग बरात गये सिगरे तुम, राति जगे कौं चलीं सब कोऊ ।
सुंदर मंदिर सूंनौ जु है इहां, को रषवारी है ताहि न जोऊ ॥
सास कही तब ही लपि ही, लहु री दुलही घर ही इह सोऊ ।
फूलि गये सुनि बात यौं गात, समात न कंचुकी मैं कुच दोऊ ॥८५॥

सास सपूती सु वारि मैं सुती, जिठानी की हैं अषियां दुपियारी ।
सौति सु न्यारी बसै ननदी, अँधरी बहिरी प्रति वेसनि नारी ।
पौरिये आवैं रत्यौंध पिया परदेस, पिता ढ़िग रैंनि अँध्यारी ॥
यौं जिय जानि सुजान तिया कें, गुविंद अनंद बढ्यौं उर भारी ॥८६॥

मतिराम

बिछुरत रोवत दुहुन कौ, सषि यह रूप लपैं न ।
दुप असुवा पिय नैंन हैं, सुप असुवा तिय नैंन ॥८७॥

अथ अन्य संभोग दुषिता

लछिन नाम ही मैं[हैं] ।

॥ सवैया ॥

नांकें भर्‌यौ सिगरी कुच कुंकुम, सुद्ध सुधो अधरानि ललाई ।
नैंननि तें बिथुर्‌यौ कजरा, मृदु अंग रुमावलि की सरसाई ।
झूठें भनैंनी गुविंद की सौं न गनैं, अपनें जन कौं दुप माई ॥
मैं पठई सठ की सुधि कौं, तू सनान सरोवर मैं करि आई ॥८८॥

---

1. अलवर-प्रति में यह सवैया मतिराम के दोहे के बाद दिया गया है ।

राम

॥ कवित्त ॥

स्वेद-कन जाली अंसमाली की तपनि आली,
सु की कहूं षंडे तोहि बिंवाधर बूझै हैं ।
वैनी जानि सांपिनी सो चौंथी है कलापिनी नैं,
बापुरी चकोरी कौं कपोल चंद सूझै हैं ॥
रांम जू सुकवि मैं पठाई तहां तू न गई,
बंद कंचकी के काहू भार मैं उरूझै हैं ।
उन्नत उरोजनि समुझि संभु किंसुक सौं,
कुंजनि के कौंने इन्है कौंनै आज पूजे हैं ॥८९॥

अथ मानवती

पूर्ण प्रेम के प्रताप तें उपजि परै जो गरूरता, सो मान । सो दुविधि--प्रणयमान, ईर्षामान ।

अथ प्रणयमान

विना कारण मान होइ, सो प्रणयमान ।

प्रश्न—विना कारण मान कैसें वनें ।

उत्तर—प्रेम कौ कुटिल स्वभाव है, यातें यही मान रूप ह्वै जातु है ।

नंददासजू

उज्जल रस को यह सुभाव, वांकै छवि पावै ।
बंक कहनि अरु चहनि, बंक अति रसहि वढावै ॥९०॥

उदाहरन दोहा

रसिक निमप नहि बीछुरें, दुरि बैठें कहुं ओर ।
एतौ मान विहार मैं, मुरत नैंन की कोर ॥६१॥

यह मान सहजें हांसी पेल ही मैं मिटि जातु है ।

॥ सवैया ॥

मानवती गनि प्रान प्रिया कों, गुविंद नें गान कियौ सुपदाई ।
प्यारी प्रवीन महा परि वंसी मैं, जानि कैं तान कौं चूकि वजाई ॥
सो सुनि वोलि उठी तजि मान, रह्यौ न गयौ यौ कह्यौ सुपदाई ।
स्यांम सुजान भले जू भले तुम, सीपी जू नीकी नई सुघराई ॥६२॥[1]

अरु कारण तें मान होइ, सो ईर्पा के प्रसंग मैं कहि आये हैं ।

अथ मांन मोचन उपाय

साम्य(साम), दान, भेद, प्रणति, अपेक्षा, प्रसंग, विध्वंस, भेद उपाय मैं अंतर्गत है । अरु दंड तें रस की हानि होत है यातें कह्यौ नही ।

अथ साम्य(साम)—मीठे वचन सुनाइवौ, सो साम्य(साम) ।

॥ दयानिधि कौ सवैया ॥

रूठि रहौ हम सौं तौ हमैं नित ही, परि पायनि आय मनायवौ ।
वोलौ न वोलौ हमैं नित वोलिवौ, चाह करौ न करौ हमैं चाहिवौ ॥

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं है ।

देयौ न देयौ दयानिधि प्यारी हमैं, सुष नैंननि कौ सरसायबौ ।
मानौ न मानौं हमैं यह नैंम नयौ, नित देह कौ नांतौ निवाहिबौ ।।६३।।

आनंदघन

[सवैया]

राधे सुजान इतौ चित दै हित मैं, चित दै कित मांन मरोर है ।
मांपन तें मन कोमल है परि, वान न जानिये कैसें कठोर है ।।
सांवरे सौं मिलि सोभित ऐसी, कहा कहिये कहिबे कौं न जोर है ।
तेरौ पपीहरा है घन आंनंद है, व्रजचंद पें तेरौ चकोर है ।।६४।।

कृष्ण

।। कवित्त ।।

लोचन लहे कौ फल सफल हमारौ करि,
प्यारी प्रानपति कौं सनेह रसलीन करि ।
तेंही पाई परम निकाई की अवधि अव,
ए री वृषभान की कुमारि अरबौ[1] न करि ।।
टारि पट घूंघट कौ हा हा ए उघारि द्रग,
निज तन पांनिप मैं पीके नेंन मीन करि ।
कंज छवि छीन करि ससिहि मलीन करि,
सौतिन कौं दीन करि प्यारे कौं अधीन करि ।।६५।।

अथ दान—भूषणादिक दैनौं सो, दान ।

केसव

।। कवित्त ।।

कोमल अमल दल दीनें सो दान मल—[2]
[2]भव अरुण अरुण प्रभुजू कौं सुपदाईये ।

1. अरबौ=अकड़
2-2. मलभव=पङ्कज ।

केसौदास सोभा धर सधर सुधा के धर,
अधर मधुर उपमा तौ यह पाइये ।।
उरज मलय-शैल सील सम सुनि देषि,
अलक वलित व्याल आसा उर आइये ।
निपट निगंध यहै हार वंधु जीव कौ सु,
चाहत सुगंध भयौ नैंक ग्रीव नाइये ।।६६।।

अथ भेद—छल के वचन सुनाइवौ, सो भेद ।

केसव

।। कवित्त ।।

मैंनु ऐसौ मनु काहू मृदुल मृणालिका के,
सूत के से सुर धुनि मन ही हरति है ।
दारयौं कै सी वीज दांत पांत से अरुण ओठ,
केसौराय देषि द्रग आनँद भरति है ।।
एरी मेरी तेरी मोहि भावति भलाई यातें,
वूझति हौं तोहि और वूझति डरति है ।
मांषन-सी जीभ मुष कंज ऐसौ कोमल पै,
काठ-सी कठेठी वात कैसें निकरति है ।।६७।।

सुंदर

[कवित्त]

लाल अपनै यै अलि नैंकु न रिसैयै वलि,
कहा भयौ त्रलि हसे नैंक नंद नंद है ।
वैठियत वोलियत हिलि मिलि पेलियत,
कैधौं कीजियत कहा सुंदर यौं दंद है ।।
हा हा देषि सौं हैं तोहि कोटि कोटि सौहैं कियौ,
ऐसे समैं मांन तेरौ ऐसौ मन मंद है ।
कैसौ नीकौ नायक सकल सुषदायक है,
कैसी नीकी चांदिनि है कैसौ नीकौ चंद है ।।६८।।

सोमनाथ

[कवित्त]

जरक-सी सारी तामैं कारी सटकारी वैनी,
कंचन की भूमि-सी चुरायें चित्त लेति है ।
कंचुकी कसनि की कसनि कसकति पुनि,
फौंदा फवे मोतिन के भवनि समेत है ।।
सोमनाथ कहैं आली अहे निधरक तुव,
वानी तेरी उपमा कहति नेति नेति है ।
कैसी है अयानी जौ तू लालैं देति अैसी पीठि,
हे हे धीठि तेरी पीठि तोही पीठि देति है ।।९९।।

अथ प्रणति—पायनी को परिवौ, सो प्रणति ।

।। सवैया ।।

ठोडी गही व्रजचंद गुविंद नैं चंदमुषी की भलैं चित्त चायनि ।
सौंहनि पात पिया रसिया मुष सौंहैं न सौंह चितौति गुसांयनि ।।
कोरि करै कर जोरि विनै पुनि, हा हा करै औ परै पिय पायनि ।
कान्ह सुजान मनावत मान यौं, मानति मानवती ठुकरायनि ।।१००।।

अथ उपेक्षा

मान मनावन उपाय तजि कैं अग्र और ही प्रसंग कहियै, सो उपेक्षा ।

।। केसव कौ कवित्त ।।

चपला न चमकति चमक हथ्यारनि की,
वोलत न मोर वंदी सुभट समाज के ।
जहां तहां गाजत न वाजत दमामें दीह,
देत न दिपाई दिन मनि लीनें लाज के ।।
चलि चलि चंद-मुषी सांवरे सषा पैं वेगि,
सोच करि केसौदास उर सुप साज के ।

चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगनि गगन घन,
चाहत फिरत चंद जोधा तमराज के ॥१०१॥

किसोर

काली भई कोइल कुरंग वार कारे किये,
कुढ़ि कुढ़ि के हरि के अंक लंक हदली ।
जरि जरि जंबू नद विद्रुम हैं वदरंग,
अंग फाटि दारिम तुचा भुजंग वदली ॥
एरी चंद-मुषी तैं कलंकी किये चंद आज,
चलि व्रजचंद पैं किसोर आप अदली ।
लजि गयौ कीर गजराज सिर छार डारैं,
पुंडरीक वूडयौरी कपूर पायौ कदली ॥१०२॥

कोऊ यह तीन उपाय ही कहै है ।

॥ भाषा भूषण दोहा ॥

सहजें हांसी पेलतैं, विनय वचन सुनि कांन ।
पाय परैं पिय के मिटैं, लघु मध्यम गुरु मान ॥१०३॥

कहूं अनायास ही मान छुटि जातु है ।

केसव

॥ कवित्त ॥

घननि की घोर सुनि मोरनि कौ सोर सुनि,
सुनि सुनि केसव अलाप आली-जन कौ ।
दामिनी दमक देषि दीप की दिपति देषि,
देषि देषि सुभ सेज सदन सुमन कौ ॥
कुंकुम की वास घनसार की सुवास भयौ,
फूलनि की वास मन फूलि कैं मलिन कौ ।

हसि हसि बोलें दोऊ बिन ही मनायें मान,
छूटि गयौ एकै बार राधिका रवन कौ ॥१०४॥

ऐसें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

अथ दुविधि गर्विता

रूप कौ गर्व जाकें, सो रूप-गर्विता । प्रेम कौ गर्व जाकें, सो प्रेम-गर्विता ।

अथ रूप-गर्विता

॥ सवैया ॥

चौंकी चकोरी चितै चहूंधा, चकई, चकवानि बियोगता ठानी ।
मूंदि लिये मुष कंजनि तामैं, सिली मुष फंदि रहे अभिमानी ॥
रोइ परीं भमरी सिगरीं यौं, गुविंद की सौं कहौ कौ लौं कहानी ।
या दुष तें अलि हौं कबहूं, अब जाउ नही जमुना तट पानी ॥१०५॥

[कवित्त]

सांझी के समाज काज फूल बीनि लाई आज,
अकथ कहानी कहौं कहां लौं नई नई ।
दिन ही में फूले कल कुमुद गुविंद चकवा—
कनि तें चकई हू बिसरि गई गई ॥
चौकि चौंकि चितै चित चाय सौं चकित चहु,
ओरनि चकोरनि की मंडिली कई कई ।
गलिनु गलिनु भई अलिनु अलिनु मई,
नलिन नलिन भई कलिनु मई मई ॥१०६॥

विहारी[1]

अरी परी सटपट परी, विधु आवे मग हेरि ।
संग लगै मधुपनि लई, भागिनु लगी अँधेरि ॥१०७॥

मतिराम

कैसें हौं जैहौं जितै, तित है नंदकिसोर ।
दिन ही मैं मुपचंद कौं, लपि ललचात चकोर ॥१०८॥

अथ प्रेम-गर्विता

॥ सवैया ॥

सैल चली वन कुंज की छैल तौ; गैल मैं आंनि कैं फूल विछावै ।
झूलौं लतानि मैं जाइ तौ, चाय कै भाय भले सौं गुविंद झुलावै ॥
आपुही मेरे सिगार वनाइ, दिपाइ कैं आरसी वीरी पवावै ।
पौढि रहौं पट ओढ़ि तौ, प्रीतम पाइ द्रगंचल सौं सहरावै ॥१०९॥[2]

केसव

॥ सवैया ॥

मेरे तौ नांहि नें चंचल लोचन, नाहि नें केसव वानी सुहाई ।
जानौं न भूपन भेद कि भाव सु, भूलैं हूं मैं नहि भौंह चढ़ाई ॥
भूलैं हूं ना चितई हरि ओर सु, घैरु करैं इहि भांति लुगाई ।
रंचक तौ चतुराई न चित मैं, कान्ह भये वस कै सैंधौं माई ॥११०॥

1. अ०—प्रति में विहारी का यह दोहा भी है:—
मैं वरजी कै वार तू, इत कत लेति करोट ।
परवरी गडत गुलाव की, परि है गात खरोट ॥
2. अ० प्रति में यह सवैया नहीं है ।

मतिराम

॥ कवित्त ॥

मेरे हसें हसत है मेरे वोलें वोलत है,
जानत है मो कौं तन मन धन प्रान री ।
कवि मतिराम भौंहैं टेढ़ी कियें हांसी हू मैं,
छाडि देत भूपन वसन पानी पान री ॥
मैं तौ प्रान प्यारी प्रान प्यारे कौन ग्रौर कोऊ,
ता सौं ग्रव मांन कीजै कहां कौ सयान री ।
मैं न कामिनी के मैं न काहू के न रूप रीझैं,
मैं न क़ाहू के सिषाये मानौं मन मान री ॥१११॥

ग्रथ ग्रष्ट नाइका

ग्रथ वासक सज्जा

पिय को ग्रागम देषि कैं शृंगार सेज्ज्यादि सजे, सो वासक सज्जा ।

भूधर

॥ कवित्त ॥

जोवन उज्यारी प्यारी वैंठी रंग रावटी मैं,
मुष की मरीची सो दरीची वीच झलकैं ।
भूधर सुकवि सौहैं भौंहैं मन मोहैं षरी,
षंजन-सी ग्रांषें मन रंजन-सी पलकैं ॥
सीस फूल वैंना वैनी वीर ग्रौर वंदिनी की,
चंदन की चरचा की चारु छवि छलकैं ।
कोरवारी चूनरी चकोरवारी चितवनि,
मोरवारी वेसरि मरोरवारी ग्रलकैं ॥११२॥

केसव

॥ सवैया ॥

भापति है मुप वैंन सषी सहुलास, हियैं अभिलाष विपोहैं ।
कोमल हासनि नैंन विलासनि, अंग सुवासनि कैं मन मौहैं ॥
मूरतिवंत किधौं तुलसी तुलसी, वन मैं रति मूरति कोहैं ।
कुंज विराजति गोप-वधू कमला, जनु कंज कुटी मधि सोहैं ॥११३॥

अथ विरहोत्कंठिता[1]

संकेत विषैं नायक के अनागम के कारण चितवन करै, सो विरहोत्कंठिता ।

केसव

॥ कवित्त ॥

किधौं गृह काज किन छूटत सषा समाज,
किधौं कछु आज व्रत वासर विभात तैं ।
दीनौं पैं न सोध किधौं काहू सौं भयौ विरोध,
उपज्यौ प्रवोध किधौं उर अवदात तैं ॥
सुप मैं न देह किधौं मोही सौं कपट नेह,
किधौं अति मेह देषि डरे अधराति तैं ।
किधौं मेरी प्रीति की प्रतीति लेत केसौराय,
अज हौं न आये मन सोधौं कौंन वात तैं ॥११४॥

अथ स्वाधीन पतिका

जा के पति आधीन, सो स्वाधीन पतिका ।

---

1 अ० प्रति में केवल उत्कंठिता दिया गया है ।

रसखान

॥ सवैया ॥

ब्रह्म मैं ढूढ़ि पुराननि गाननि, वेद रचा पढ़ी चौगुने चायनि ।
देष्यौ सुन्यौं न कहूं कवहूं उह, कौंन सुरूप है कैसे सुभायनि ॥
हैरति हेरति हारि परी रसषांन, बतायौ न लोग लुगायनि ।
देषौं कहां उह कुंज कुटी दुरचौ, बैठ्यौ पलोटत राधा के पायनि ॥११५॥

केसव

॥ कवित्त ॥

चोली कौ सौ पांत तोहि करत सवारिवोइ,
मुकर ज्यौं तोही मांझ मूरति समानी है ।
केसौदास सविलास तेरौ रूप संपदा सु,
सदा सु सदा उर जीवन की वृत्ति-सी वषानी है ॥
तेरे री मनोरथ भगीरथ रथनि पीछैं,
डौलत गुपाल मेरी गंगा कौ सौ पानि है ।
ग्रैसी वातैं कौंन जो न मानी सुनि मेरी रानी,
इनकैं तौ तेरी वानी वेदकी-सी वानी है ॥११६॥

॥ ध्रुवदासजी कौ दोहा ॥

कुंवरि चरण ग्रंकित धरनि, देषत जिहि जिहि ठौर ।
प्रिया चरण रज जानि कैं, लुठत रसिक सिर मौर ॥११७॥

श्रीभट्ट देवजू[1]

प्यारी जू के चरन पलोटत मोहन इत्यादि ।

1. प्र० प्रति में भट्ट देवजू का उद्धरण नहीं है ।

अथ कलहांतरिता

पिय सौं कलह करि पीछैं पछिताइ, सो कलहांतरिता ।

॥ सवैया ॥

जा हित मान महा लघु मांन कैं, सील कुसील कैं लांछिन लीनौं ।
धीरज धर्म तज्यौ री तज्यौ कुल, नांतौ सुनी तिहूं सौं तजि दीनौं ॥
लाज के साज तिना सम तोरि, सह्यौ जु घरा घर बैरु नवीनौं ।
आजु उही ब्रजचंद गुविंद कौं, मैं मतिमंद अनादर कीनौं ॥११८॥

मतिराम

[सवैया]

जाके लियैं गृह काज तज्यौ न सिपी, सषियानि की सीष सिषाई ।
वैरु कियौ सिगरे ब्रज गाऊं सौं, जाके लियैं कुलकानि गमाई ॥
जाके लियैं घर वाहिर हू मतिराम, रह्यौ हंसि लोग चवाई ।
जा हरि सौं हितु येक ही वार, गँवारि मैं तोरति वार न लाई ॥११८॥

॥ कवित्त ॥

आये श्री गुविंद ब्रजचंद सुरतोत्सव कौं,
तिन्हैं देषि मोहू भयौ रस सरसायकैं ।
दूती की कहानी सो प्रमानी मैं कुमति ठांनी,
स्यांम सुषदानी दिये छिन मैं रिसायकैं ॥
उर अकुलाइ नारि नीचे कौं नवाय छिति,
व्यरथ लिपति पछिताय पछितायकैं ।

कर पै कपोल की रुपाई मैं निकाई मानौं,
सोयो चारु चंद अरविंदहि बिछायकैं ॥१२०॥[1]

अथ खंडिता

राति कहू रमि कैं प्रभात ही प्रीतमजा के घर आवै, सो खंडिता।[2]

॥ सवैया ॥

सौंही हौ सूरति स्याम सुजान, लटैं बिथुरी सुथरी सरसौंहीं।
सौंही भये इत भोरैं गुविंद रमैं, रजनी सजनी परसौंहीं॥
सौंही यहै बिन हीं गुनमाल सुभाल, महा वर लीक लसौंहीं।
सौंही कितेक करौ न करौ तुम, आये लला अंखियां अलसौंहीं ॥१२१॥

केसव

[सवैया]

आजु कछू अंखियां हरि और-सी, मांनौं महावर मांझ रंगी है।
मोहन मोही-सी लागति मोहि इते, पर मोहन मोहन लगी है॥
मेरी सौं मो सहु मान हुवे गहिये, रस रोसकि राति जगी है।
मेरे वियोग कैं तेज तची किधौं, केसव काहू के प्रेम पगी है ॥१२२॥

॥ कवित्त ॥

आंखिन तैं सूझत न काननि तैं सुनत न,
केसौराय ऐसे तुम लोक महि गाये हौ।

1. अ० प्रति में यह कवित्त मतिराम के सवैये से पहले दिया गया है।
2. अ० प्रति में इस प्रकार दिया गया है—
पति रति राति अनत ही करिकैं प्रात आवै जाकैं, सो खंडिता।
3. अ० प्रति में केसव को कवित्त पहले है और सवैया बाद में।

वंस की विसारी सुधि काक ज्यौं चुनत फिरौ,
झूठे सीठे सीठ सठ ईंठ धीठ ठायौ हौ ॥
दूरि दूरि कहँ तौहू दौरि दौरि गहौं पाय,
जानौ न कुठौर ठौर जानि जिय पायौ हौ ।
को के घर घालिवे कौं कहां वसे घनस्यांम,
घू घू ज्यौं घुसन प्रात मेरे घर आये हौ ॥१२३॥

विहारी

पलनि पीक अंजन अधर, धरें महावर भाल ।
आज मिले सु भली करी, भले वने हौं लाल ॥१२४॥[1]

कत लपटत इत मोगरें, सौन जुही निसि सैंन ।
जिहि चंपक वरणी किये, गुल्लाला रँग नैंन ॥१२५॥

मतिराम

कोऊ करौ कितेक यह, तजौ न टेक गुपाल ।
निसि औरनि के पग परौ, दिन औरनि के लाल ॥१२६॥

अथ विप्रलब्धा

संकेत मैं आवत ही सूनौ देपि कैं सषी सौं सतराइ, सो विप्रलब्धा ।

सुंदर

॥ कवित्त ॥

घटा वहराति घन वीजुरी न ठहराति,
आई है हरवराति औसे मेघ झर मैं ।
काम की चपेट लियें लाज की लपेट पुनि,
हरि सौं भई न भेट सहेट के घर मैं ॥

1. विहारी के दोहों का क्रम भी दोनों प्रतियों में उलटा है ।

भँचकी-सी रही कहि सुंदर अचंभै अति,
हली नाहि चली बूडि गई सोच सर मैं ।
आधी आधी आंपिनि तें आलोकति आली तन,
आधी बात आनन मैं आधीक अधर मैं ।।१२७।।

केसव

[कवित्त]

देपत उदधि जात देपि देषि निज गात,
चंपक के पात कछू लिष्यौ है वनाय कैं ।
सकल सुगंध ढारि दूतिका कौ मान मारि,
फूल-माल तोरि डारि वीरी बगराय कैं ।।
लै लै दीह स्वास तजि विविधि विलास हास,
केसौदास ह्वै उदास चली अकुलाय कैं ।
देपि कैं संकेत सूनौं कान्ह जू सौं वोलि ऊनौं,
मो से कर जोरि दूनौं दूनौं दुप पाय कैं ।।१२८।।[1]

मतिराम

[कवित्त]

सकल सिंगार सजि सँग लै सहेलिनु कौं,
सुंदर मिलन चली आनँद के कंद कौं ।
कवि मतिराम मग करति मनोरथनि,
देष्यौ परजंक पै न प्यारे नंद नंद कौं ।।
नेह सौं लगी है देह दाहन दहन ग्रेह,
वग के विलोकि द्रुम वेलिन के वृंद कौं ।

---

1. अ० प्रति में यह सवैया और है—
मूल से फूल सु कुवास-सी भखसी से भये भौंन सभागे ।
केसव वाग महावन सौ ज्वर चढ़ि जोन्ह सवै अंग दागें ।।
नेह लायौ उर नाहर सौ निसि नाह घरी कवहूं अनुरागे ।
गारी से गीत विकी दिससी सिगरेई सिंगार अंगार से लागे ।।

चंद कौं हसत जब आयौ मुषचंद अब,
चंद लाग्यौ हसन तिया के मुषचंद कौं ॥१२९॥

॥ दोहा ॥

तिय कौं मिल्यौ न प्राणपति, सजल जलद तन मैं न ।
सजल जलद लषि कैं भये, सजल जलद से नैंन ॥१३०॥

अथ प्रोषित पतिका

पति प्रवास ज्ञानवती प्रोषित पतिका प्रवास ज्ञान तीनूं काल मैं हैं या तें प्रोषित पतिका, अवस्यत पतिका, आगम पतिका इनके नाम ही लक्षन हैं। अरु आगत पतिका, आगम पतिका मैं अंतर्गत है ।

इति भरत आचार्ज सूत्रकार की उक्ति ।

अथ प्रोषित पतिका

॥ सवैया ॥

फूल पलास की डार अँगार से, देषत ही जियरा पजरायौ ।
क्वैलिया कूर कुलाहल के, रँगरेज को रेजा करेजा बनायौ ॥
ब्यारि सुगंध गुविंद बिना, बिरहागिनि दै अति ही तन तायौ ।
दुप्प अनंत को अंत न आयौ री, आयौ बसंत पै कंत न आयौ ॥१३१॥[1]

विहारी

छिनक छुंही लागति छटा, घटा धूम विस्तार ।
पावस रितु प्राणेस बिन, होत सकार ककार ॥१३२॥

1. अ० प्रति में नहीं है ।

।। संभु कौ कवित्त ।।

आहि कैं कराहि कांपि कृस-तन बैठी आइ,
चाहति सँदेसौ कहिवे कौं पै न कहि जात ।
फेरि मसि भाजन मंगायौ पत्र लिपिवे कौं,
चाहति कलम गहिवे कौं पै न गहि जात ।।
एते मैं उमडि असुवानि कौ प्रवाह आयौ,
चाहै शंभु थाह लहिवे कौं पै न लहि जात ।
दहि जात गात वात वूझैं हूं न कहि जात,
वहि जात कागद कलम हाथ रहि जात ।।१३३।।

।। सवैया ।।

वालम के विछूरें भई वात कौं, व्याकुलता विरहा दुपदानि तैं ।
चौफरि आनि रची कवि शंभु, सहेलिनु साहिवनी सुपदानि तैं ।।
तू जुग फूटें न एरी भटू यह, काहू कह्यौ सपियां सपियानि तैं ।
कंज से पानि तैं पासे गिरे, अँसुवा गिरे पंजन-सी अंपियानि तैं ।।१३४।।

।। देव कवित्त ।।

बालम विरह जिन जान्यौं न जनम भरि,
वरि वरि उठै ज्यौं ज्यौं वरसैं वरफराति ।
सीतहू मैं वीजना ढुरावति सपी जन पैं,
सौतिन के श्राप तन तापनि तरफराति ।।
देव कहै नैंन तैं असुवा सुपात मुप,
निकसै न वात लै लै सिसकी सरफराति ।
लोटि लोटि परति करौट पटपाटी गहि,
सूपे जल सफरी ज्यौं सेज पै फरफराति ।।१३५।।

मतिराम

।। दोहा ।।

लाज छुटी गृह हू छुट्यौ, मुप सौं छुट्यौ सनेह ।
सपि कहियौ वा निठूर सौं, रही छूटिवै देह ।।१३६।।

अथ प्रवस्पति पतिका

॥ काहू कौ कवित्त ॥

करि हैं पयान पिय नैंकु न सयान तोहि,
कांन वीच आनि परचौ गोला-सौ कहर कौ ।
भोर विन सोर करि उठचौ तू अचानक ही,
हेला विन वेला कत दीजिये जहर कौ ॥
दई दई करि दई लई है जु यही निसि,
तूहू परि रहैं पिंड छाडि या सहर कौ ।
जोगी जोग साधि पें वियोगी हू की सुधि रापि,
संष संष पूरि न रे पिछले पहर कौ ॥१३७॥

ब्रह्म

॥ सवैया ॥

हौं सुनि तोहि सुनावत आई, सुनैं तव हाथनि ढ़ील वलैगो[1] ।
चाहै कह्यौ सु अवै कहि लै, वहुरचौं कहि है मोहि संग न लैगौ ॥
ब्रह्म भनैं विरहा तरु री, सव ही दुष के फल फूल फलैगौ ।
रापि सकैं तौ तू रापि लै री, न तौ भामिनी भांवतौ भोर चलैगौ ॥१३८॥

विहारी

पूसमान सुनि सपिंन मैं, सांई चलत सकार ।
गहि कर वीन प्रवीन तिय, राग्यौ राग मलार ॥१३९॥

अथ आगम पतिका

॥ राय प्रवीन कौ कवित्त ॥

सकल सुगंध चारु मंजुन कैं घनसार,
ऊजरैं अँगौछैं आछैं अँजन सँवारि हौं ।
दैहौं न पलक एक लगन पलक परि,
पूरि पूरि अभिलाप तपत निवारि हौं ॥

1 वलैगो=मुड़ेगा ।

भनत प्रवीनराय मौं जया फरकिवे की,
सुनौं वांये नैंन यही वैंन प्रतिपारि हौं ।
जवही मिलैंगे मोहि राजा राम प्रान प्यारे,
दाहिने द्रगहि मूंदि तोही तें निहारि हौं ॥१४०॥

विहारी

वाम वाहु फरकत मिलै, जिय की जीवनि मूरि ।
तौ तोहि तें भेटि हौं, राषि दाहिनी दूरि ॥१४१॥

राम

॥ कवित्त ॥

केसरि कपूर और चंदन अगर-चूर,
कुंकुम गुलाव मेद मृग मद गारौंगी ।
मोलसिरी मालति के माधवी के हार भांति-
भांति के ललित चीर चुनि चुनि धारौंगी ॥
हरष हिये कौं वांह फरकि जतावति है,
रामजू प्रतीति मोहि अंगनि सँवारौंगी ।
अंक भरि प्यारे कौं निसंक आज भेटत ही,
दै जुग उरोज मैं मनोज मीडि मारौंगी ॥१४२॥

अथ आगत पतिका

देव

॥ कवित्त ॥

धांई पौरि पौरि तें वधांई पिय आगम की,
कोरि कोरि भांति रस भायनि भरति हैं ।
मोरि मोरि वदन निहारत विहार भूमि,
दौरि दौरि आनंद घरी-सी उघरति है ॥

देव कर जोरि जोरि वंदत सरस गुरु,
लोगनि कैं लोरि लोरि पांयनि परति हैं ।
तोरि तोरि माल पूरे मोतिन के चौंकनि,
निछावरि कौं छोरि छोरि भूषन धरति हैं ।।१४३।।

सोमनाथ

।। सवैया ।।

गाय हौं मंगलचार घनैं, लपि आवत ही तन ताप बुझाय हौं ।
झाय हौं पाय गुलावनि सौं, जरी वाफ के पांवडे धाय विछाय हौं ।।
छाय हौं मंदिर वादिले सौं, ससिनाथ जू फूलनि के झर लाय हौं ।
लाय हौं सौ तिन के उर साल, जवै हंसि लाल कौं कंठ लगाय हौं ।।१४४।।[1]

अथ अभिसारिका

प्यारे सौं मिलिवे कौं जाय, सो अभिसारिका ।

।। संभु को कवित्त ।।

मंद मंद चली नंद नंद पै अनंद भरी,
उमग अमंद संभु मंद मुसकान की ।
वोलति अली सौं विहसित ललना के लट-
कनि की लुरनि औ मुरनि अधरानि की ।।
फहरात छोर थहरात लँहगे की छवि,
गूजरी जयानि की औ जावक जयानि की ।
पगनि की लाली पग नपन उज्याली आगें,
जाली-सी परति जाति लाल मुकतानि की ।।१४५।।

1. अ० प्रति में नहीं है ।

इन अभिसारिकानि के लक्षन नाम ही तें जानि लीजें ।

अथ प्रेमाभिसारिका

[कवित्त]

चंदमुषी चाय सौं गुविंदहि मिलन चली,
सहज सुगंध की उमंग नई नई है ।
गात की गुराई सुघराई हाव भावनि की,
सुमन सिगार की निकाई ठीक ठई है ॥
चौंकति चकोर चहुँ ओर चारु चांदिनी तें,
चंदहू तें चौगुनी सुछंद छवि छई है ।
अलि अवली में अली अधिक अनंद मई,
गली गली गोकुल गुलाव मई मई है ॥१४६॥

केसव

[कवित्त]

नैंननि की अतुराई वैननि की चतुराई,
गात की गुराई न दुरति दुति चाल की ।
आपुनें चरित्रनि कें चित्रत विचित्र गति,
चित्रिनि-सी लीनें साथ पुत्रिका गुलाव की ॥
चंद के समान चारु चाय सौं चढ़ी फिरति,
करि कें तिहारें मृग-नैंननि की पालिकी ।
कीजै पय पान पुनि पैजे पान प्रान प्यारे,
आई है जु आज अलवेली ग्वालि काल्हिकी ॥१४७॥

अथ गर्वाभिसारिका

[कवित्त]

अतर अन्हाय अंग अंग आछे आभूषन,
अंवर अमल आभा है अनेक इंदु-सी ।

आस पास अली अलि अवली है श्री गुविंद,
अंगना अनंग की तें अधिक अमंद-सी ।।
आरसी सौं आनन अलक अवलोकि और,
अंजन अनूप आंजो आंखें अरविंद-सी ।
एहो अति आदर कैं आतुर सौं अंक लीजौ,
आई अलवेली आज आनंद के कंद-सी ।।१४८।।

केसव

[कवित्त]

चंदन चढ़ाय चारु अंबर के उर हार,
सुमन सिंगार सौंहै आनँद के कंद ज्यौं ।
वारौं कोटि रति नाथ वीना मैं वजावै गाथ,
मृगज मराल साथ वानी जग वंद ज्यौं ।।
चौंकि चौंकि चकई ज्यौं सौतिन की दूति चली,
सौतैं भई दीन अरविंद दुति मंद ज्यौं ।
तिमिर वियोग भूले लोचन चकोर फूले,
आई व्रजचंद्र चंद्रावली चलि चंद ज्यौं ।।१४६।।

अथ कामाभिसारिका

।। कान्ह कवित्त ।।

तैसौ वन पावस कौ उमडि घुमडि आयौ,
तैसी यै अँध्यारी रैनि सूझत न संग कौ ।
प्यारी वनवारी पैं सिधारी पनवारी मांझ,
सालै उर वांन पंच वान के निषंग कौं ।
पाय तर दव्यौ अहि आहि रह्यौ पाय गहि,
कहां लौं कहत कान्ह कौतुक भुजंग कौं ।

अलवर तथा जोधपुर की दोनों प्रतियों में छंदों का इधर-उधर होना बहुत कुछ पाया जाता है। इसका कारण केवल प्रमाद तो नहीं कहा जा सकता। लिपिकार का निर्णय भी एक कारण हो सकता है। (सम्पादक)

लियैं लोह लंगर कौं संगर करन छूट्यौ,
जात है मतंग मानौं नृपति अनंग कौ ॥१५०॥

केसव

[कवित्त]

उरझत उरग चंपत फन चरननि,
देषत विविधि निसिचर दिसि चारि के ।
गनति न लागति मुसलधार सुनति न,
झिल्ली गन घोष निरघोष जलधार के ॥
जानति न भूषन गिरत फट फाटत सु,
कंटक अटक डर उर न उजारि के ।
प्रेतनि की बूझैं नारि कौंन पै तैं सीष्यौ यह,
जोग कौ सौ सार अभिसार अभिसारि के ॥१५१॥

अथ कृष्णाभिसारिका

॥ सुंदर कौ कवित्त ॥

कारी घन घटा भारी पहरी लैं कारी सारी,
आंषिन मैं देषि तेरैं कारो कजराई है ।
कारोई कुरंग सार घसि कैं चलायौ अंग,
कारे चोवा कंचुकी सु भलैई भिगाई हैं ॥
कारे पाट सुंदर पुहाये सब आभूषन,
कारी वैनी पीठि पर छोरि दै सुहाई है ।
अैसी समैं अैसी ह्वै कैं जाय मिलि कान्हर सौं,
आज तेरी सिगरी कराई काम आई है ॥१५२॥

मतिराम

उमडि घुमडि दिग-मंडलनि घुमडि रहे,
झूमि झूमि बादर कुहू की निस कारी मैं ।

अँगनि मैं कीनौं मृग-मद अंग राग तैसौ,
आनन छिपाय राख्यौ स्यांम रंग सारी मैं ।
मतिराम चिवुक मैं स्यांम विंदु राजि रही,
आभरन साजि मरकत मनि वारी मैं ।
मोहन छवीले सौं मिलन चली ऐसी छवि,
छांह ज्यौं छवीली छिपि जाति अँधियारी मैं ।।१५३।।

अथ शुक्लाभिसारिका

मुकंद

॥ कवित्त ॥

सेत उजियारी सेत फूलनि सँवारी मांग,
धारी सेत अतर सुगंधनि के गन कौं ।
सेत घनसार सेत चंदन चढ़ाय चारु,
सेत हार हीरे के हरैं मुकंद मन कौं ।।
सेत ही हसनि सेत लसनि दसन दुति,
भूषन वनाय सेत मोतिन के तन कौं ।
सेत सारी सेत ही किनारी जरतारी सजि,
प्यारी चली प्रीतम विहारी के मिलन कौं ।।१५४।।

॥ सवैया ॥

भूषन हैं घनसार के चंदन चित्र विचित्र हैं अंग गुराई ।
वादिली सारी किनारी है मोतिन मांग गुही जुही मालती जाई ।।
दंतनि दीपति दिव्यदि पै पुनि मंजु हसी सरसी छवि छाई ।
श्री व्रजचंद गुविंद जू पैखिये देखिये मूरतिवंत जुन्हाई ।।१५५।।

सुंदर

॥ कवित्त ॥

फूलनि सौं गुही मांग चंदन चढ़ाय अंग,
उमडि है मांनौं गंग सरद के नीर की ।
सब तन सोहत है मोतिन के आभूषन,
मोतिन की जोति सौं मिली है जोति चीर की ॥
मुसकाति आछी अति दंतनि दिपति दुति,
तैसी यै गुराई कहि सुंदर सरीर की ।
चांदिनी सी बाला मिली चांदिनी मैं असी चली,
मांनौं छीर सिंधु मैं चली तरंग छीर की ॥१५६॥

मतिराम

[कवित्त]

अंगनि सघन घनसार अंग राग सेत,
सारी छीर फैंन कै सी भांति उफनाति है ।
राजति रुचिर रुचि मोतिन के आभरन,
कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है ॥
कवि मतिराम प्रान प्यारे सौं मिलन चली,
करि कैं मनोरथनि मृदु मुसकाति है ।
होति न लपाइ निसि चंद की उज्यारी तन,
छांहीं छिपि जाति है ॥१५७॥[1]

विहारी

छिप्यो छिपा कर छिति छयो, तम ससि हरि न सँभारि ।
हसति हसति चलि ससि मुषी, मुष तैं घूंघट टारि ॥१५८॥

---

1. अलवर वाली प्रति में अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

होति न लखाइ निसि चंद की उज्यारी मुख ।
चंद की उज्यारी तन छांहीं छिपि जाति है ॥

जुदति जौन्ह मैं मिलि गई, नैकु न परति लपाइ ।
सौंवे कैं डोरैं लगी, अली चली संग जाइ ।।१५६।।

दिन मैं सुरत कौ निषेध धर्म-शास्त्र लिषै है यातैं दिवाभिसार कह्यौ नही ।

अथ उत्तमा

सापराध प्रीतम कौं देषि कैं अरु हित ही करै, सो उत्तमा ।

मतिराम

।। सवैया ।।

राति कहूं रमि कैं मन भांवन, आंवन प्रात तिया घर कीनौं ।
देपत ही मुसकाय उठी चलि आगैं, ह्वै आदर कैं फिरि लीनौं ।।
मौंहन के तन मैं मतिराम दुकूल, सुनील निहारि नवीनौं ।
केसरि के रंग सौं रंगि कैं पट पीत, सु प्रीतम के कर दीनौं ।।१६०।।

।। कवित्त ।।

रसिक गुविंद अलसांत औ जभांत आये,
अंजन अधर पीक पलनि लगाय कैं ।
विन गुन माल भाल जावक नयन लाल,
वदलि वसन वतरात तुतराय कैं ।।
देषि हुलसाय चित्त चाइ कियौ आदर सौं,
इंदीवर नैननि के पांवडे विछाई कैं ।
लीने धरि धाय कैं भुजानि भरि भाइ कैं,
उमंगि उर लाय मंद मंद मुसकाय कैं ।।१६१।।

अथ मध्यमा

अपराध सौं मांन करै हित सौं हित करै, सो मध्यमा ।

॥ सवैया ॥

आये कहू रति मांनि पिया लपि, मानिनी मांनि धर्‌यौ जु नवीनौं ।
बैठे जबै ढ़िग आंनि सुजान, रही मुष मोरि नही हितु कीनौं ॥
हाथ धरें पुलक्यौ तन गोविंद, बंद जबै कर नीवी कौ लीनौं ।
मानद कौ उर आतुर मानि कैं, मांन गुमान तही तजि दीनौं ॥१६२॥

तिराम

॥ कवित्त ॥

आयो प्रानपति राति अनतैं विताय वैठी,
भौहनि चढ़ाय[नव]रंगी सुंदर सुहाग की ।
वातनि वनाय परचौ प्यारे के पगनि आइ,
छल सौं छिपाय छैल छवि रति दाग की ॥
छटि गयौ मांन लागी आप ही सँवारत है,
पिरकी सुकवि मतिराम पिय पाग की ।
रिस ही के आंसू रस आंसू भये आंषिन मैं,
रोस की ललाइ सो ललाइ अनुराग की ॥१६३॥

अथ अधमा

हित हू किये तैं पिय सौं सतराय, सो अधमा ।

[सवैया]

विनती ब्रजचंद गुविंद करै तुव, वोल कुवोल वषानति है ।
कर जोरि हहा कैं परैं पग तौ हठ, पीठि दै वैठिवौ ठानति है ॥
पुनि रूसति वार ही वार वियोग मई, मति कौं उर आनति है ।
नहि मानति माननी मानद कौं इक, मान हीं मान कौं मानति है ॥१६४॥

मतिराम

[कवित्त]

आयौ है सयानपनौं गयौ न अयान तौहू,
नित उठि मांन करिवे की टेव पकरी ।
घर घर मानिनी है मानति मनाये तें वे,
तेरी अैसी रीति और काहू में न जकरी ॥
कवि मतिराम काम रूप घनस्यांम लाल,
तेरे नैंन कोर ओर चाहै एकटक री ।
हहा कैं निहोरें हूं न हेरति हरिन-नैंनी,
काहे कौं करति हठ हारिल की लकरी ॥१६५॥

अथ भाव हाव हेला[1]

शुद्ध चित्त में विकार जो अदृश्य सो भाव अरु यही नेत्रादिक द्वारा कछु लष्यौ जाइ, सो हाव । अतसै लष्यौ जाइ, सो हेला ।

अथ भाव

॥ सवैया ॥

व्यारि उही सुरभी हू उही, भौरि तु राति उही सुपदाई ।
कुंज उही जमुना हूं उही, अलि पुंज की गुंज उही छवि छाई ॥
वाल उही उह जोवन रूप, गुंविद कहै उह चंद जुन्हाई ।
पैं कछु या तिय के चित की वृति, और भई सु कही नही जाई ॥१६६॥

1. अ० प्रति में 'इति नाइका भेद' दिया गया है ।

अथ हाव[1]

[सवैया]

इक बाल कंदव पिल्यौ है मनौं, छवि यौं अंग अंगनि पावति है ।
कहि गोविंद आनंद सौं तिन अंगनि, दक्ष सुता सकुचावति है ।।
मुप लज्जित कुंचित नैंननि तैं सिव की, दिसि दीठि चलावति है ।
अपने मन कौं मन हीं मैं उमा इहि, भांति सौं भाव दुरावति है ।।१६७।।

अथ हेला[2]

।। कवित्त ।।

सरस सुदेस अंग अंगनि उमंगनि सौं ।
रोम लतिका के उठे अंकुर नवीने हैं ।
सीचे सुद्ध सुधारस उज्जल तैं आली रप-
वाली करि मैं न माली निपट प्रवीने हैं ।।
जोवन रसाल ही के मौर हैं मनोहर कि,
भांति भांति फूल अनुराग वाग कींनें हैं ।
उरपुर अमल जमाइवे कौं मेरे जानि,
भले वान आंनि पंचवान नृप दीने हैं ।।१६८।।

केसव

[कवित्त]

मेरी मुप चूमें तेरी पूजी साध चूमिवे की,
चाटें ओस अंस क्यौं सिरात प्यास दाढ़े हैं ।

1. अ० प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
ग्रए यही नेत्रादिक द्वारा कछु लख्यौ जाइ, सो हाव ।
2. अ० प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
मतैं लख्यौ जाइ, सो हेला ।

छोटे छोटे कर कहा छावति छवीली छाती,
छ्वावौ जाके छ्वाइवे कौं अभिलास बाढ़े है ॥
पेलन जौ आई हौ तौ पेलौ जैसें पेलियत,
केसौराइ की सौं यह कौंन पेल काढ़े हैं ।
फूलि फूलि भेटति है मोहि कहा मेरी भटू,
भेटति न जाहि जे वे भेटिवे कौं ठाढ़े हैं ॥१६९॥[1]

[कवित्त]

चोरि चोरि चित चितवति मुप मोरि मोरि,
काहे तें हसति हिये हरप बढ़ायौ है ।
केसौराय की सौं तू जंभाति कहा वेर वेर,
वीरा षाहु मेरी वीर आलस जौ आयौ है ॥
अेंड सौं अेंडाति अति अंचल उडात उर,
उघरि उघरि जात गात छवि छायौ है ।
फूलि फूलि भेटति रहति उर झूलि झूलि,
भूलि भूलि कहति कछू तें आज पायौ है ॥१७०॥[2]

अथ गुन

प्रथम सोभा ।

जोवनादिक तें अंगनि की जो रमणीयता, सो सोभा ।

॥ कवित्त ॥

उज्जल अनूप अति उत्तम सदन सुभ,
मदन महीपति की क्रीडा कौं सुहायौ है ।
प्रीतम के पुन्यनि कौं प्रगट परम पद,
सुक्रति सुधन्य जानें भौगिवे कौं पायौ है ॥
कल कलपद्रुम अपूरव कौ फल भल,
सरस रसिक श्री गुविंद मन भायौ है ।

1-2 अलवर प्रति में ये दोनों कवित्त नहीं है ।

ऐसी नव जोवन की सोभा कौ समूह तेरै,
हौं न जानौं कौंन भांति अंग अंग आयौ है ।।१७१।।

अथ कांति

कंदर्प के विकास तें विस्तरित जो सोभा, सो कांति ।

।। सवैया ।।

कुंदन-सौ तन इंदु-सौ आनन, जौंन्ह से हास विलास सुहाते ।
ओठ मजीठ-से नैंन ससी सिसु-से, कच कज्जल से दरसाते ।।
सौंधे समूह-सौ अंग सुवास अली, अनयास भये मदमाते ।
सुंदरि तैं व्रजचंद गुविंद कौं, न्याय किये वस नेह के नाते ।।१७२।।

लाल

।। कवित्त ।।

कौंल[1] दल पांवडे निकस कि धरति पांउ,
जौ पै कहूं जागतु है भाग अंगनाई कौ ।
ताहि तुम कहौं अब ल्यावौ कि निकुंजनि लौं,
भौंन हूं मैं मानैं डर भौर की अवाई कौ ।।
और अति कठिन सु कैसैं कै दुरांऊ लाल,
वार न भयौ है दीप गात की गुराई कौ ।
जहां जहां मंजुल वद[न]विहसात वाकौ,
जहां जहां जान्यौं जात जनम जुन्हाई कौ ।।१७३।।

अथ दीप्ति

अतित विस्तरित जो कांति, सो दीप्ति ।

---

1. कौंल=कोमल ।

॥ सवैया ॥

सुंदरताई कौ हास प्रकास, विलास है जोवन कौ सुषदाई ।
भूपन भूतल कौ कलपद्रुम, पूरन प्रेम कौ लीनें लुनाई ॥
नैननि कौं अधि देव वसी कर हैं, हिय कौं यौं गुविंद नें गाई ।
अैसी अनोपी वा तिय के अंग अंग, उमंगि महा छवि छाई ॥१७४॥

॥ कवित्त ॥

काम भट भूप कौ कि विक्रम है कि लावंन्य,
लछिमी के मद ही की छकनि सुतौंन है ।
भूपणादि संपति मधुरिमा कौ हास की,
सुहाग की विनोद भूमि सरस सुठौंन है ॥
किधौं श्री गुविंद गुण संपति कौ अद्वैत कि,
केली विलासवली कौं भली भांति भौंन है ।
मेरे इन लोचननि चतुर चकोरनि की,
जगमग जोह्न यहै हौंन जानौं कौंन है ॥१७५॥

अथ माधुर्ज

सर्व अवस्थानि मैं जो रमणीयता, सो माधुर्ज ।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोवन अनूप सदा सीता जू कैं,
सुंदर सरस सोहै सहज सुभायकैं ।
आनंद के कंद श्री गुविंद रामचंद्र धर्यौ,
इक पतिनी कौ व्रत न्याय चित चायकैं ॥
सकल सिंगार सजि भांवते भवन वैठी,
रतन-सिंघासन पै छवि अति छायकैं ।
तैसी ए लसति वन-वीथिनु सघन तन,
भूपन वसन वलकल के वनायकैं ॥१७६॥

अथ प्रगल्भ्य

अतसैं दृष्टता, सो प्रगल्भ्य ।

॥ सवैया ॥

उरोजनि कों कर सौं अति मीडि, नषच्छत दीनें अनेक अमंद ।
अनौपे अलिगंन चुंवन चुंवि, डसी दसनावलि तें नंद नंद ॥
भली विधि वांधी भुजानि के वंधन, अैसो न आंन महा द्रढ़ फंद ।
तऊ सविलासनि दास कैं राष्यौ, पिया रसिया व्रजचंद गुविंद ॥१७७॥

अथ औदार्य

तीनू काल विषैं नमृता, सो औदार्य ।

॥ सवैया ॥

व्रजचंद गुविंद कौं चंदमुषी सुष दै, सव भांति लडावति है ।
अपराध कौं नैंकहू मानें नही, नित नेह नयौ सरसावति है ॥
मुष तें कटु वात कहे न कछू, भृकुटी नही वंक चढ़ावति है ।
जल सौं भरि नैंन सषी दिस, देषति सैंन नहीं समुझावति है ॥१७८॥

अथ धैर्य

चंचलता तें रहित जो मन की वृत्ति, सो धैर्य ।

॥ सवैया ॥

मांनहू जाहु गुमानहूं जाहु, चवावहु क्यों न चलौ चहुं घांही ।
लाज समाज हू सीलहू जाहु, कलंक निसंक लगौ जग मांहीं ॥
हौनी जु होहु सु होहु सषी, व्रजचंद गुविंद तजौं तऊ नांहीं ।
ज्यौं नहीं छाडति छैल छवीले, छिपा कर कौं छिनहूं छित छांहीं ॥१७९॥

।। कासीराम [कौ] कवित्त ।।

घर तजौं बर तजौं नागर नगर तजौं,
डर तजौं कासीराम काहू सौं न लजि हौं ।
हेम तजौं नेम तजौं प्रेम कहौ कैसैं तजौं,
लाज साज तजौं अरु औ सेज सजि हौं ।।
बावरे कितेक लोग बावरी कहत मो सौं,
बावरी हू कहौ काहू नाहिं नैं बरजि हौं ।
कही है सु नाय तजौं बाप तजौं भैया तजौं,
मैया दैया तजौं पै कन्हैया कौं न तजि हौं ।।१८०।।

इति गुन ।

अथ लीलादिक हाव

अथ लीला

अंग वेषादिक करि कैं प्यारे को अनुकरन करनौं, सो लीला ।

।। सवैया ।।

कछिनी कटि क्रीट सिषी सिर पैं, श्रुति कुंडल कौ झलकावति है ।
पट पीत धरैं बन-माल गरैं, मधुरै मुष बैंन बजावति है ।।
व्रजचंद गुविंद कौं वेष कियें, लषि दर्पन नैंन नचावति है ।
हसि झूमैं झुकै झिझकै उझकै, मुष चुंबन कौं ललचावति है ।।१८१।।

।। काहू कौ सवैया ।।

उह मोर किरीट विराजत सीस, उहै मुरली बन-माल हियें ।
मकराकृत कुंडल तै से बने, पट पीत अनूपम ओप लियें ।।
मुष की छवि मौंहन आज विलोकि, अघात न लोचन रूप कियें ।
पलट्यौ रंग जानति हौं इहि हेत सु, प्रान पियारी कौ ध्यान कियें ।।१८२।।

॥ काहू कौ सवैया ॥

आपुनी ओर की चाहै लिष्यौ, लिपि जात कथा उत मोहन ओर की ।
प्यारी मया करि वेगि मिलौ, सही जाति व्यथा नहि मैंन मरोर की ॥
आपु ही वांचि लगावति अंक कहै, किन आनी चिठी चितचोर की ।
राधे कौं राधे लगी रट भोर तें, ह्वै रही मूरति नंदकिसोर की ॥१८३॥

विहारी

पिय के ध्यान गही गही, रह उही होइ नारि ।
आपु आपु ही आरसी, लपि रीझति रिझवारी ॥१८४॥

अथ विलास

वांछित के देषे तें बोलनि हंसनि नेत्रादिकनि मैं जो विकार, सो विलास ।

॥ कवित्त ॥

वांनी मैं विचित्रताई हास मैं मधुरताई,
चपलाई भौंहनि मैं गति मैं सुहाई है ।
उरज उतंगताई अंगनि मैं सत्वताई,
सहज सुगंध मैं मनोहरता छाई है ॥
मदन महीप उर-पुर थिरताई पाई,
धीरज की कटकाई सकल पलाई है ।
रस बस रसिक गुविंद करिवे कौं तेरैं,
सरस निकाई माई का पैं जाति गाई है ॥१८५॥

अथ विच्छिति

कबहूं थोरी हू सोभा विसेस सोभा कौं करै, सो विच्छित्ति ।

॥ कवित्त ॥

नीर निरमल न्हाय तीर जमुनां कैं षरी,
उज्ज़ल सरीर भौंर भीर आस पास है ।
ललित तमोल की ललाई अधरनि छाई,
तैसौ रह्यौ लपटि निपट भीनौं वास है ॥
एते ही सिंगार तैं गुविंद नव सुंदरी की,
सुंदरता सौं गुनी सरस सविलास है ।
मदन महीपति सदन उर अंतर,
निरंतर वसत ताकौं प्रगट प्रकास है ॥१८६॥

विहारी

सोभित धोती सेत मैं, कनक वरन तन बाल ।
सारद वारिद वीजुरी, भारद की जित लाल ॥१८७॥

विहारिनदासजू[1]

वुरौ सिंगार विहार मैं, भूषन दूषन जानि ।
विहारी दासि सेवति सुषै, मन कौ मरम पिछानि ॥१८८॥

अथ विव्वोक

अत्तित गर्व तैं भावते कौ जो अनादर, सो विव्वोक ।

॥ सवैया ॥

नैंननि सौं नहि देषनि सो उठि, धावनि आदर कैं हित नीकी ।
नांही करै व्रजचंद गुविंद सौं, हाहीं सु तौ निहचै निज जीकी ॥
मौंन गहैं हीं रहै सु उहै प्रति, उत्तर है मति मोहत पीकी ।
यौं सरसावति मींत सौं प्रीति नई, कछु रीति नई दुलही की ॥१८९॥

---

1. अलवर वाली प्रति में विहारिनदास जू का यह दोहा नहीं हैं ।

अथ किलकिंचित[1]

गर्वाभिलास रुदित, स्मित, असूया, भय कोपादिकनि की हर्ष तें जो संकरता, सो किलकिंचित।

॥ सवैया ॥

पिय कौं कर रोकति है रिस कैं, चित की अति चाह दिषावति है।
बरजै तरजै कटु बातनि तैं, मधुरैं मुष हासि जतावति है॥
असुवा बिन नैंन सरोज कियें रस, प्रीति की रीति बढ़ावति है।
अरविंद बिलोचनी इंदुमुषी, ब्रजचंद गुबिंद कौं भावति है॥१६०॥

सुंदर

[सवैया]

गौंनो भये दिन द्वैक भये, कवि सुंदर नेह दुहूं मैं नवीनौं।
पेलत काम कलोलनि मैं ललना कौ, सुरूप लला लषि लीनौं॥
कोऊक अंग दव्यो तिय कौ तव, एक ही बार सवै यह कीनौं।
रोई रिसानी डरी थहरानी चकी, सकुचानी चितै हसि दीनौं॥१६१॥

केसव

[सवैया]

कौंनैं त्रसै बिहसै लषि कौंन हि, का पर कोपि कैं भौंह चढ़ावै।
भूलनि लाज भट्ट कवहूं कवहूं, मुष अंचल मेलि दुरावै॥
कौंन की लेति बलाय बलाय ल्यौं, तेरी दसा यह मोहि न भावै।
ऐसी तौ तू कवहू न भई अव, तोहि दई जिनि वाय लगावै॥१६२॥

---

1. अलवर की प्रति में स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

प्यारे कौं देषि कैं हास्यादिक चेष्टानि की जो संकरता, सो कलकिंचित।

अथ मोट्टायत

प्यारे के गुन श्रवन करिवे कौ हर्ष हिय मैं वाहिर श्रोत्रादिकनि कौ पुजावनौं, सो मोट्टायत ।

॥ सवैया ॥

स्यांम सुजान कथानि मैं नाम सुनैं, जब प्रान पियारी तिहारी ।
कान पुजाइ रहै मुप मोरि, जँभावति है छिन हीं छिन भारी ॥
चौगुनी चाह रहै चित मैं सु उहै, गति कौन पै जाति उचारी ।
आनँद कंद गुविंद अनौंषी मैं प्रीति, प्रती[त[की रीति निहारी ॥१९३॥

अथ कुट्टमित

सुष के समैं दुष कौं प्रगट करनौं, सो कुट्टमित ।

॥ सवैया ॥

चंद अमंद प्रकाश मैं गोविंद, चंदमुषी सौं रमैं गलवांही ।
अंक निसंक लै पीवै पिया, अधरामृत मोद महा मन मांही ॥
नांक चढ़ाय षिजै वरजै तरजै, तरुनी सुकही नहि जाई ।
नीवी बिमोच रसीवी करै अति भोग, सँजोग मैं रोग की नांही ॥१९४॥

निवाज

[सवैया]

वाजैं चुरी वीछिया घुघुरू मुष स्वासैं कढ़ैं ते सुगंध झकोर सौं ।
ऊचे उरोज लगे थहरैं छुटि केस, निवाज रहे चहु ओर सौं ॥
मोल ही लेति सुहाग भरी चितवै, जव लाग भरी द्रग कोर सौं ।
सौगुनौं स्वाद वढ़ावति सु दरि वा, सुष मैं सिसकीन के सोर सौं ॥१९५॥

अथ विभ्रम

विना स्थान भूपन धारन करिवौ, सो विभ्रम ।

॥ कवित्त ॥

सेत जर सारी धारी मैं किनारी वारी,
वारी सारी सरस सुदेस मन मानिकैं ।
चोवा मृग-मद के भरोसैं अँग अँग राग,
कीनौं घनसार चारु चंदन कौं सानिकैं ॥
रसिक गुविंद की सौं सौति दुषदाई माई,
संग कौं जगाई सुषदाई सषी जानिकैं ।
अँपें घर वाहिर न आई पग एक हू,
सहाई भये पूरव परम पुन्यं आनिकैं ॥१९६॥

विहारी

रही मथनिया ढिग धरी, भरी मथनियां वारि ।
कर उलटा उलटो रई, नई विलोवनि हारि ॥१९७॥

अथ ललित

सुकुमारता सहित अंगनि कौ जो दिपावनौं, सो ललित ।

केसव

॥ कवित्त ॥

कोमल विमल मन विमला-सी सपी साथ,
कमला ज्यौं लीनैं हाथ कमल सनाल के ।
नूपुर की धुनि सुनि भोरैं कलहंसनि कैं,
चौंकि चौकि परैं चारु चैटुआ मराल के ॥
कचनि के भार कुच भारनि सकुच भार,
लचकि लचकि जात कटि तट वाल के ।
हरैं हरैं वोलति विलोकति हसति हरैं,
हरैं हरैं चलति हरति मन लाल के ॥१९८॥

॥ सवैया ॥

संग अली अवली अलि की, कर कंज की मंत्र कली लै फिरावै ।
अंग सुवासनि कोमल हासनि, नैंन बिलासनि मैंन नचावै ॥
भूपन भेद की कौंन कहै धुनि, नूपुर ही की कहि नहि आवै ।
नृत्यति-सी गति वानी विचित्रित, मित्र गुविंद कौ चित्त चुरावै ॥१९९॥

अथ मद

सौभाग्यादिक के गर्व तैं प्रगट्यौ जो चित्र मैं विकार, सो मद ।

॥ सवैया ॥

मित्र के पीक की चित्र कपोलनि, जानि तिया तू कहा गरवावै ।
मेरे पिया रसिया की कथा, मुष एक तैं माई कहा कोउ गावै ॥
चित्र चरित्र विचित्र गुविंद, अनंद सौं आछे अनेक वनावै ।
मो अंग अंग अनंग उमंग सौं, जौ कहुं कंप नही होइ आवै ॥२००॥

अथ विकृत

कहिवे के समैं हूं कहिवौ नही वनैं, सो विकृत ।

॥ सवैया ॥

लोग लुगाइन के डर मित्र मिलाप घने दिन मैं दुरि कीनौं ।
वूझै उहै कसरात की वात भली विधि भांवतौ ह्वै कैं अधीनौं ॥
अंग अनंग उमंगनि सौं उपज्यौ उर सात्विक भाव नवीनौं ।
सोई तिया नें पिया रसिया व्रजचंद गुविंद कौं उत्तर दीनौं ॥२०१॥

॥ कवित्त ॥[1]

[दोहा]

विनती रति विपरीत की, करी परसि पिय पाय ।
हसि अन बोलें हीं दियौ, उत्तर पियाहि जताय ॥२०२॥

अथ तपन

पति के वियोग तें जो मदन चेष्टा, सो तपन ।

॥ सवैया ॥

आनंद कंद गुविंद विना मद मैं न सुमाई महा सरसावै ।
नैननि तें मग जोवै उहै तरुनी हरिनी ज्यौं हियें अकुलावै ॥
चंदन चंद सरोज की सेज सुगंध समीर सरीर तचावै ।
लोटहि पोट करौट छिना छिन नागरि कौं निसि नींद न आवै ॥२०३॥

अथ मौग्ध्या

जानीहूं वात कौ वूझनौं, सो मौग्ध्य ।[2]

॥ कवित्त ॥

कौंन तरवर ए सघन वन कौंन से के,
कौंन के लगाये ग्राम कौंन से की वाट के ।
उह तरवर कौंन जहां व्रजभूपन जू,
भूपन वनाये लै लै सुमन सुघाट के ॥
रसिक गुविंद वाजूवंद वलयादिक,
उतारि धरे चारु हार हीरनि के ठाट के ।
लोल नैंनी आगें विन मोल ही विकाने पिय,
सुनत अमोल अैसे वोल ओट पाट के ॥२०४॥

1. अलवर की प्रति में इसे विहारी का दोहा कहा गया है ।
2. अ० 'मुग्ध्य'

केसव

[कवित्त]

हसति हसति आई आनि एक गाथा गाई,
कहौ जू कन्हाई या कौ भेद समुझायकें ।
दंपति अधर रस पीवै कैसें एकै वार,
रदन कर जल थल दीजियै वतायकें ॥
यह परिरंभन कहाऊँ कौंन केसौराय,
मेरी सौंह मो सौं तुम राषौ जु दुराइकें ।
राधिका की अधिकाई कहा कहौं माई लियौ,
आपुनौं पियारो पीव आपु ही मनायकें ॥२०५॥

अथ विक्षेप

आभूषन की अर्द्ध रचना, सो विक्षेप ।

॥ सवैया ॥

कछु मोतिनि मांग गुही न गुही, कछु केसरि षौरि लगावति हैं ।
कछु भूषन भेद रचे न रचे, रसिया पिय सौं वतरावति हैं ॥
तिरछाय चितै रहसै विहसै, व्रजचंद गुविंद कौ भावति है ।
उह चित्रिनि चारु चरित्र विचित्रनि, मित्र को चित्त चुरावति है ॥२०६॥

अथ कौतूहल

सुंदर वस्तु के देषिवे की इछ्या को जो आधिक्य सो कौतूहल ।

॥ सवैया ॥

आये गोविंद सुनें वन तें अति, मारहू तें सुकुमार कन्हाई ।
गोकुल की कुल की तिय की मति, देषन कौं अति ही ललचाई ॥
अंजन सीक दई इक हो द्रग, दूसरी हाथ की हाथ सुहाई ।
अंग अनंग उमंग सों ओचक, आतुर हीं उठि देपन धाई ॥२०७॥

अथ हसित—जोवन तें प्रगट्यौ जो व्रथा हास्य, सो हसित ।[1]

॥ कवित्त ॥

रसिक गुविंद स्यांम सुंदर कौं देषत,
अमंद हसि उठी चंदमुषी विन काज है ।
यातें यह वात घात भीतरि की भली-भांति,
वाहिर विसेष लषी सषिनु समाज है ॥
जोवन की जवर जमायति कौ जोर जानि,
भाजि गई वापुरी रुषाई अरु लाज है ।
उर-पुर राज राजनीति सौं करत अति,
राजनि कौं राजा महाराजा रतिराज है ॥२०८॥

अथ चकित

काहू कारण तें पति के निकट जो भय संभ्रम, सो चकित ।

॥ कवित्त ॥

आज जल-केलि मैं नवेली अलवेली केली,
रसिक गुविंद अंग संग जानि लीजियै ।
औचक निकसि गई परसि उरू कौं कोऊ,
सफरी सचिक्कन यौं सजनी सुनी जियैं ॥
ता छिन छवीली अति छोभ कैं उछरि परी,
वां छवि की कछू उपमांन आंन दीजियै ।
तरुनी अकारन ही छोभ करै कारण तें,
छोभ करै छैल तौ परेषौ कहा कीजियै ॥२०९॥

अथ केलि

रति के समैं पति सहित जो क्रीडा, सो केलि ।

---

1. अलवर प्रति में स्पष्टीकरण न देकर उदाहरण ही दिया गया है ।

॥ सवैया ॥

सीतल मंद सुगंध समीर अमंद है, चंद की चारु जुन्हाई ।
चंद-मुषी व्रजचंद गुविंद के संग, रमैं अति आँनददाई ॥
पीवै पिया रसिया अधरामृत त्यौं त्यौं, करै तिय दूनी दिठाई ।
गेंद उरोजनि की करि मार भुजा भरि, अंक लगै लपटाई ॥२१०॥

इति हाव ।

अथ दूती

वाक्यादि चातुरता करि कैं अरु नायक सौं नाइका भली प्रकार आंनि मिलावै, सो दूती ।

अथ उत्तम दूती

हित के वचन मीठे सुनाइ कैं अरु मन कौं हरै, सो उत्तम दूती ।

केसव

॥ कवित्त ॥

आंषिन के तारेनि मैं राषौं प्यारे पुतरो कैं,
मुरली ज्यौं लाय राषौं दसन वसन मैं ।
राषौं भुज वीच वनमाली वन-माल करि,
चंदन ज्यौं चतुर चढ़ाय राषौं तन मैं ॥
केसौराय कलकंठ करि कठुला कैं करम,
करम क्यौं हूं आंनी हैं भवन मैं ।
चंपक कली ज्यौं कान्ह सूंघि सूंघि देवता सी,
लेहु मेरे लाल याहि मेलि राषौ मन मैं ॥२११॥

अथ मध्यम दूती

कछू हित के वचन कछू अनाहित के कहै, सो मध्यम दूती ।

॥ मतिराम कौ कवित्त ॥

चरन धरै न भूमि विहरै जहां हीं तहां,
फूले फूले फूलनि बिछायौ परजंक है ।
भार के डरनि सुकुमारु चारु अंगनि मैं,
करति न अंग राग कुंकुम की पंक है ॥
कवि मतिराम नैंक वातायन वीच आयें,
आतप मलिन होत वदन मयंक है ।
कैसैं उह वाल लाल वाहिर वगर आवैं,
विजन वयारि लागैं लचकति लंक है ॥२१२॥

॥ दोहा ॥

रीझि रही रिझवारि उह, तुम ऊपर व्रजनाथ ।
लाज सिंधु की इंदिरा, क्यौं करि आवै हाथ ॥२१३॥

गंग

॥ कवित्त ॥

वाहि न सुहाति वात कहे सौंह पाति वार,
वार गयें कछु फेरे सौ करति है ।
कहै कवि गंग सो तौ जोवन मतंग माती,
कर के छुवे तैं माते हाथी ज्यौं अरति है ॥
तिहारी तौ प्यारी समुझाई समुझति नांहि,
सौंने कौ सुमेरु भई टारी न टरति हैं ।
कहिवे कौ हुती सुतौ कहि आई प्यारे लाल,
और कहा दूती स्रम सेरनि लरति हैं ॥२१४॥

सुंदर

[कवित्त]

पहलें हौं गई नीकें बातनि लगाइ लई,
मैं हूं जानी भली भई रीझि बतराति है।
सुंदर मैं हसिकें चलाई रस कथा कछू,
हसि हसि रीझि रीझि मुरि मुसकाति है॥
अैसे मैं तिहारौ नाम लीनौं मन मौंहन जू,
और रंग और रीति और भई भांति है।
देषति ही सौंहै भये नैंन तिरछौंहैं उह,
गई फिरि भौंहैं ज्यौं कवांन फिरि जाति है॥२१५॥

अथ अधम दूती

सतराय कैं बचन कहै सो अधम दूती।

मतिराम

॥ कवित्त ॥

जानत न कछू पैं कहावत रसिकराय,
ल्याव ल्याव करत तिहारैं यह टेक हैं।
कूरनि की रीति है जुडेल अैसौ डारि देत,
मतिराम चतुर चतुरता लियें कहैं॥
वोली न नवेली कछू वोल सतराय वाहि,
मनसिज ओज कौ अनौषौ आज से कहै।
वात के कहेतें अगराति अरसाति गात,
सौंहैं करि नैंन उह सौंहीं भई नैंक है॥२१६॥

सुंदर

[कवित्त]

दीठि सौं न जोरै दीठि दै दै बैठै फिरि पीठि,
सुंदर बसीठि कहौ कहा करै ताती सौं।
तिहारैं तौ लागी जक ल्याव ल्याव जाह जाह,
हौं तौं फिरि जाती पैं तिहारी जौ न षाती सौं ॥
कोऊ पचौ राति दिन निवहै न एकौ छिन,
नेह बिन कैसें कैं उज्यारौ होत बाती सौं।
हौ तौ थकी जाय जाय हाहा षाय गहे पाय,
आप ही मनाय जाय लाय लेहु छाती सौं ॥२१७॥

केसव[1]

[कवित्त]

सुष दै सषीनि वीच दै कै सौंह षाय कैं,
षवाइ कछु स्वायंवर कीनी परवस है।
कोमल मृणालिका-सी मल्लिका की मालिका-सी,
वालिका जु डारि मीडि मांनस कि पसु है ॥
जान्यौं न विभात भयौ केसव सुनें को वात,
देष्यौ आनि गात जात भयौ किधौं असु है।
चित्रि-सी जु रापी यह चित्रिनी विचित्र गति,
कहौ धौं नये रसिक या में कौंन रसु है ॥२१८॥

इन दूती सषीनि के लक्षन नाम हीं तें जानि लीजें।

1. अलवर-प्रति में सुंदर के सवैया पर ही 'दूती कर्म' प्रसंग समाप्त हो जाता है। 'केसव' का कवित्त जोधपुर-प्रति में और मिलता है।

अथ दूती-कर्म कुल द्रव्यादि कथन

॥ कवित्त ॥

नदन सुथान सुधा पांन जांन चढ़िवे कौं,
मंदाकिनी गंग की तरंगनि मैं न्हाय है ।
देवार उपेंद्र अति आनंद कौ कंद पै है,
रंभादिक दासिन पैं हुकम जमाय है ॥
रांनी इंद्रपुरी की जिठानी इंदिरा की अैसें,
जग मैं सुजस श्री गुविंद कवि गाय है ।
दमयंती सुंदरि या सुंदर पुरंदर कौं,
जौ पै वरमाल तू रसाल पहराय है ॥२१९॥[1]

विहारी

रही लटू ह्वै लाल हौं, लषि उह वाल अनूप ।
कितौ मिठास दयौ दई, इते सलौंने रूप ॥२२०॥

हौं रीझी लषि रीझि है,[2] छविहिं छवीले लाल ।
सौं न जुही-सी होति दुति, मिलति मालती माल ॥२२१॥

अथ विरह निवेदन

अथ नायका की विरह निबेदन नायक सौं-

॥ सवैया ॥

काल्हि की ग्वालि तौ आज हू लौं, न सँभारति केसव कैसं हूँ देहै ॥
सीरी ह्वै जाति उठै कवहूं जरि. जीव, रह्यौ कि रही रुचि रैहै ॥

---

1. अलवर-प्रति में 'जमाय', 'गाय', 'पहराय', के स्थान पर 'जगाइ', 'गाइ', 'पहराइ', शब्द मिलते हैं ।

2. अलवर-प्रति में इस प्रकार दिया गया है—

हैं उझकि झांकि इकवार । रूप रिझावनि हार, उह ए नैंना रिझवार ॥२२०॥
हौं रीझी लखि रीझि हो ।

कोटि विचार विचारति हैं, उपचारनि कैं बरसैं सषि मेहैं ।
कान्ह बुरौ जिन मानौं तिहारी, बिलोकनि मैं बिसु बीस बिसे हैं ॥२२२॥

[सवैया]

काल्हि ही कूल कलिंदी के आनि, गुबिंद जू मूरति देषी तिहारी ।
ता छिन तें उह बौरी भई, कुलकानि की मैं उ सबै तजि डारि ॥
षाइ पिवै न सुनैं न कछू, न सभारति है अँगिया अँग सारी ।
लागि रही रट एक ही एक, बिहारी बिहारी बिहारी बिहारी ॥२२३॥

सुंदर

[कवित्त]

मेरी आली आगें काल्हि टेढ़ी चाल चालि,
आये ता घरी तें षेलति न बोलति है ।
जैसें मीन बिन जल क्यौं हू न परति कल,
बेसुधि बिकल भई सुंदर ससति है ॥
कहूं डारें रहै मन नेंकु न सभारै तन,
तिहारे निहारें हरि न्याय तरसति है ।
आंषिन मैं भौंहनि मैं मुरि मुसकानिन मैं,
ठौर ठौर ठग तेरें ठगौरि बसति है ॥२२४॥

कासीराम

[कवित्त]

नागरि गई ही घाट गागरी भरन काज,
हाटक सों तन ताको कैसी नीको परी है ।
तब तुम एक पल ताकि रहे कासीराम,
ता घरी तें उह तो घरी-सी करि धरी है ।

हाथ पाय टारति न आँचर सँभारति न,
आँपिन उँधारति न यौं चेत परी है ।
ए हो वनवारी जू तिहारी चितवनि मांझ,
विष है कि सुरा है कि जंत्र है कि जरी है ॥२२५॥

अथ नायक की विरह निवेदन नाइका सौं

॥ कवित्त ॥

तेरे नैंन वान लगे गोविंद सुजान कैं सु,
भूल्यौ सुधि वुधि तन मन धन धाम है ।
गोधन चरैवौ वन जैवो मुसकैवौ गैवौ,
वंसी कौ वजैवौ पैवौ पीवौ कौंन काम है ॥
विरह विथारी भारी व्याकुल विहारी या तैं,
प्यारी प्यारी प्यारी यौं पुकारैं इक नाम है ।
झुकि झुकि झूमि झूमि भूमि पै घने हीं घनें,
घायल ज्यौं घूमै घरी घरी घनस्यांम है ॥२२६॥

सुंदर[1]

[कवित्त]

कहूं वन माल कहूं गुंजनि की माल,
कहूं संग सषा ग्वाल अैसें हाल भूलि गये हैं ।

1. अ०+अलवर वाली प्रति में यह 'काहू को कवित्त' और दिया गया है—
तेरे नैंन वान उर मोहन के लगैं आनि,
जव तैं न वाकै वीर पीर ठहराय है ।
पलकनि मूंदि मूंदि गहरे उसास लेति,
होत न सचेत मुख रटै हाय हाय है ॥
जमुना को कूल कुंज सीतल कुसुम पुंज,
लगै तन ताते तेज विखम वराय है ।
येरी चल नागरी तू सौंचि सुधा चाहिनि सौं,
और पनि के घायल कूं आखै ही उपाइ है ॥

कहूं मोर चंद्रिका लकुट कहूं पीत पट,
मुरली मुकट कहूं न्यारे डारि दये हैं ।
कुंडल अडोल मुष सुंदर न वोलें वोल,
लोचन अलोल मांनौं काहू हरि लये हैं ।
घूंघट की ओट ह्वै कें चित यौं कि चोट करी,
लालन तौ तब ही तें लोट-पोट भये हैं ।।२२७।।

अथ संगम करावनौ

॥ सवैया ॥

तेरौ सनेह लग्यौ है सही अति, याहू नें तोमैं सनेह लगायौ ।
तेरे वियोग के दुष्य दुषी, सुष समाज सवै विसरायौ ।।
सोई पिया रसिया व्रजचंद गुविंद, भली विधि सौं चलि आयौ ।
लीजै भुजा भरि अंक निसंक ह्वै, कीजै अली अपनौं मन भायौ ।।२२८।।

महाकवि

॥ सवैया ॥[1]

राधिका माधव एक ही सेज मैं, धांइ लै सोई सुभाइ सलौंने ।
पारे दुहूंन के वीच महाकवि, रावे कहै यह वात न हौंने ।।
ह्वै है न सांवरी सांवरे सौं मिली, वावरी वातैं सिपाई ए कौंने ।
सौंने कौ रंग कसौटो लगै पैं, कसौटी कौ रंग लगै नहिं सौंने ।।२२९।।

अथ सषी-कर्म

शृंगार करावनौं ।

---

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं है ।

॥ सवैया ॥

व्रजचंद गुविंद की केलि सषी, हसि बूझति प्रीति बढ़ावति है ।
सकुचै नव नारि नवावति नैंन, कछू मुष तें न बतावति है ॥
तव मित्र वसी कर चंदन कौ, तन चित्र विचित्र बनावति है ।
कुच वीच नषच्छत की छवि, राति की बात जतावति है ॥२३०॥

मतिराम

[सवैया]

जावक रंग रंग्यौ पद पंकज, नाहु कौ चित्त रंग्यौ रंग जातें ।
अंजन दै वड नैंननि मैं सुषमा, बढ़ी स्यांम सरोज प्रभातें ॥
मोती के भूषन अंग रचे मतिराम, सवै वस कीवे की घातें ।
यौं ही चले न सिंगार सुभाव ही मैं, सषि भूलि कही सव बातें ॥२३१॥

अथ सिक्षा

[कवित्त]

रसिक गुविंद स्यांम सुंदर सुजान पिय,
जौ पै कहू कहै वैंन विन अनुराग के ।
श्रवन भवन मैं रहन जिनि दीज्यौ उह,
मंत्र है सुप्रेंम कौं उचाटन की लाग के ॥
वीस विसे वीर विसवास के मिटावन,
घटांवन तिहारे उत करम सभाग के ।
प्रगट करन वारे निपट विकट आली,
अंकुर है सौतिन के सरस सुहाग के ॥२३२॥

मतिराम[1]

॥ दोहा ॥

क्यों सजनी ह्वै अनमनी, असुवा भरति ससंक ।
वडे भाग नदलाल सौं, झुठें हु लग्यौ कलंक ॥२३३॥

॥ रसषांन कौ सवैया ॥

तेरी गलीन में जा दिन तें निकस्यौ, मन मोहन गोधन गावति ।
ए व्रज लोग सु कौंन सी वाल सु, देषि कैं जो नहि नैंन नचावति ॥
जौ रसपान वे रीझैं हैं नैंक तूं, रीझि कैं क्यों न वनाव वनावति ।
आली री जौ पै कलंक लग्यौ तौ, निसंक ह्वै काहि न अंक लगावति ॥२३४॥

॥ लाल कौ कवित्त ॥

मेह वरसानैं तेरे नेह वरसांनै देषि,
येह वरसानैं वर मुरली वजांवैंगे ।
साजि लाल सारी लाल करैं लाल सारी देषिवे,
की लालसा री लाल देषें सुष पावेंगे ॥
तूही उरवसी उरवसी नहि आंन तिय,
कोटि उर वसी तजि तोसौं चित लावेंगे ।
सेज वनवारी वनवारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी वनवारी आज आवेंगे ॥२३५॥

---

1. अलवर-प्रति में मतिराम के दोहे से पूर्व यह छंद और है—

मलय पवन मद मंद कै गवन लाग्यो, फूलनि के वृंदनि तें मकरंद डारनैं ।
कवि मतिराम छिति छोर चारयों ओर चाहि, लाग्यो चैन चंद चारु चांदनी पसारनैं ॥
अलिनि की अवलीनि मैं न कैसे मंत्र पढि, लागे मानिनी के मनन-मान झारनैं ।
सुमन समाज साजि सेज सुख साजि करो नाज, व्रजराज पर आज सवै वारनैं ॥

अथ उराहनौ

॥ सवैया ॥

नैंन अनौपे भये तौ कहा, अवलोकत ही करि घाव घुमाइवौ ।
वैन मनोहर मीठे भये तौ कहा, इतनैं वड वोल सुनायवौ ॥
जोवन जोर भयौ तौ कहा व्रजचंद, गुविंद कौं पाय लगायवौ ।
रूप अनूप भयौ तौ कहा सषि, प्रीतम कौ नित नांच नचायवौ ॥२३६॥

[सवैया]

उह मंजुल गुंज ज्यौं वाल भली, मन तें तुम ही इक भावतु हौ ।
रस रंग रंगी अंग अंग तऊ, तुम नैंकु न ताहि पत्यावतु हौं ॥
कपटी उर-अंतर हौ परि वाहिर, प्रीति की रीति जतावतु हौ ।
व्रजचंद गुविंद सुनौं सुक ज्यौं, मुष पैं अनुराग दिपावतु हौ ॥२३७॥

मतिराम

॥ दोहा ॥

वा कौ मन लीनौं लला, वोल्यौ वोल रसाल ।
झुकति तनक-सी वात मैं, अलवेली नव वाल ॥२३८॥

सुंदर

॥ कवित्त ॥

कहा होइ रही मौंन टेव यह परी कौंन,
नैंननि सौं कहै क्यौ न यौं निहारियतु है ।
पंजन कमल मृग मीननि के जैतवार,
सुंदर भये तो काहू यौं विदारियतु है ॥
चातुर हैं चाल कहैं नागर हैं नायक हैं,
लायक ह्वै मान सानि दौरि मरियतु है ।

बांके हैं बिसाल हैं जो बडाई के बडे हैं तो,
विलोके तें आगिले कौं वेधि डारियत है ॥२३९॥

अथ परिहास

सषी को परिहास नाइका सों

॥ सवैया ॥

ध्यावति है नित ही हित सौं अति, कंद्रप वेद सु मैं ही पढ़ायौ ।
ताकैं वसी कर मंत्रनि तें वसि कैं, व्रजचंद गोविंद कौं पायौ ॥
सैंन समैं सुरतोत्सव मैं पिय कौं, विपरीति कौ षेल षिलायौ ।
सो उठि आज ही भेद भली विधि, कैसैं अली हम हीं सौं दुरायौ ॥२४०॥

मतिराम[1]

[सवैया]

गौंने की रीति कहै मतिराम, सहेलिनि कौ मिलि कैं गन आयौ ।
कंचन के विछिया पहरावति, प्यारी सषी परिहास जतायौ ॥
प्रीतम श्रोंन समीप सदा बजौ, यौं कहि कैं पहलैं पहरायौ ।
कामिन कंज चलावन कौ कर ऊचौ कियौ पैं चल्यौ न चलायौ ॥२४१॥

॥ दोहा ॥

प्रभा तरौंना लाल की, परी कपोलनि आंनि ।
कहा दुरावति नवल तिय, कंत दंत-छत जानि ॥२४२॥

भुज फुलेल लावति सषी, कर चलाइ मुसकाइ ।
गाढ़ैं गह्यौ उरोज तिय, विहसी भौंह चढ़ाइ ॥२४३॥

1. प्रन्यवर-प्रति में सवैया तथा दोहों के क्रम में व्यतिक्रम है ।

अथ सषी कौ परिहास नायक सौं

देव

॥ सवैया ॥

सोहै सलौंनी सुहाग सनी सुकुमारि सषीनि समाज मडी-सी ।
देव जू सोत तें आये लला मुष मांहि, महा सुषमा घुमडी-सी ॥
प्यारी की पीक कपोल पिया कैं विलोकि, सषीनि हसी उमडि-सी ।
सोचनि सौं हीं न लोचन होत सकोचनि, सुंदरि जाति गडी-सी ॥२४४॥

अथ नायक कौ परिहास नायका सौं

॥ कवित्त ॥

छाडि उडे कंदिरानी कौसिक[1] कहूं के कहूं,
काकनि के बोल कौं विसेष त्रास पायौ है ।
ता समैं तिहारौ मैं उघारचौ उर अंचल,
लतानि ओट अंग तुम दौरिकैं दुरायौ है ॥
आंनद के कंद श्री गुविंद रामचद्र जू नें,
कर अंगुरी सौं हसि हसि कैं बतायौ है ।
देष हु सिया जू सविलासनि तें यही गैल,
उही सैल सरस सुदेस आज आयौ है ॥२४५॥

अथ नायका कौ परिहास नायक सौं

केसव

॥ सवैया ॥

जुवती सुनि औगुन मोंहन के, निकसी मटकी सिर रीतिय लै ।
पुनि ढांपि लई रचना रुचि सौं, छल वाहिर बूंद कहूं कहूं पै ॥

---

1. कौसिक=उल्लू ।

निकसी तिहि गैल तहां हरि केसव, लीनी उतारि निहारि तिन्हैं ।
पतुकी कर कान्ह पिसाय रहे तव, ग्वालि हसी मुष अंचल है ॥२४६॥

अथ स्वयं दूतिका

मुकंद

॥ दोहा ॥

बिछुरी गई संग की सषी, परी सघन वन आइ ।
गगन घटा लषि डरति हौं, भूलि डगर वताइ ॥२४७॥

केसव

॥ सवैया ॥

धाय नही घर दाई परी ज्वर, आई पिलाई की आंषि बहाऊं ।
पौरि मैं आवै रत्यौंध इते पर, ऊंचौ सुनैं सु महा दुष पाऊं ॥
कान्ह निवेरहु न्याय नयौ, इन आलिनु कौल गहौं वहराऊं ।
ए सब मो ढ़िग सोवन आवैं, कि इन के ढ़िग सोवन जांऊं ॥२४८॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

सास है नियारी नंद सास के सिधारी यह,
घटा अन्धियारी भारी सूझत न कर है ।
प्रीतम कियौ है गौन सूनौ हैं सकल भौंन,
दारुन वहति पौंन लायौ मघ झर है ॥
संग न सहेली अकुलाति हौ अकेलि इत,
परी तालावेली इत आयौ पंच-सर है ।
सांवन की राति मेरौ हियरा डरात जागि,
जागि रे वटोही इहां चोरनि कौ डर है ॥२४८॥(२४९)

इति श्रीमद्वृंदावनं चंद्रवर चरणारबिंद मकरंद-पानानंदित अलि रसिक गोविंद कविराज विरचितं श्री गोविंदानंदघने नाइका-नायक निरूपणं नाम द्वितिय प्रबंधः ।।२।।[1]

अथ दूषण निरूपणं

वार्त्ता

जद्यपि गुणालंकार रस के उपकारक हैं यातें निरूपण करिवे जोग्य है तौहू दोष ही प्रथम कहत है। काहे तें कि संपूर्ण कबि प्रथम दोष ही कहते आये हैं, यातें ।

अथ दोष लक्षणं

मुष्यार्थ कौं नून करै, सो दोष ।

मुष्यार्थ रस है। रस के आश्रय तें वाच्यहू मुष्यार्थ है। दोऊन के उपमेयोगित्व तै शव्दहू शव्दनि के वर्णहू मुष्यार्थ है। यातें मुष्यार्थ कहिवे मैं इन सवनि कौ वोध होत है ।

अथ दोष पांच विधि

कितेक तौ पद-दोष कितेक पदांस दोष, कितेक वाक्य-दोष, कितेक अर्थ-दोष, कितेक रस-दोष ।

अथ पद-दोष(१६)

१. श्रुति कटु, २. संस्कारहत, ३. अप्रयुक्त, ४. असमर्थ, ५. निहतार्थ, ६. निरर्थक, ७. त्रिविधि अश्लील, ८. अनुचितार्थ

---

1. जिस प्रकार जोधपुर-प्रति में यहां 'द्वितीय प्रबंध' की समाप्ति की गई है वैसा संकेत अलवर-प्रति में नहीं मिलता। वहां तो कवित्त के वाद तुरन्त ही 'दूषण निरूपण' शुरू हो जाता है। पर, छंदों की संख्या आगे नहीं बढती, अर्थात् २३४ छंद तक चलकर फिर छंद सं. १ आती है जिससे यह निश्चय है कि अलवर-प्रति के छंद सं. २३४ पर तथा जोधपुर-प्रति के छंद सं. २४८ (२४९)पर दूसरे प्रवन्ध की समाप्ति है।

६. अवाचक, १०. ग्राम्य, ११. अप्रतीत, १२. संदिग्ध, १३. नेयार्थ, १४. क्लेष्ठ, १५. अविमृष्ट विधेयांस, १६. विरुधमति कृत ।

अथ श्रुति कटु

कांननि कौं करुवी लगै सो श्रुति कटु । सुनिवे वारे कौं उद्वेग दोष मैं कारन यह दोष अनित्य है । साब्दिक श्रोता कौं उद्वेग नहीं, यातें ।

।। कवित्त ।।

गोविंद से पिय सौं न मांन करि मांनिनी तू,
मानि कह्यौ मेरौ मांन अैसे मैं न चाहिये ।
लघु दिन दीह रैनि मैंन की फिरती सैंन,
अैंन हू लजात ए अंदेसे कौ लौं सहिये ।।
सीतल अकास भूमि भूषन वसन भौंन,
सीत भीत मीत सौं मिलाप करि रहियै ।
लीजै परजंक पै निसंक अंक भुज भरि,
काठे से कठेठे पटु अैसै कैसें कहिये ।।१।।

इहां "काठ से पटु" की ठौर "करकस वोल वाल" अैसें कहैं तौ दोष नही ।

अथ संस्कारहत

सास्त्र विरुध जो पद, सो संस्कारहत ।

इहां पाप की उतपति दोष मैं करण यह दोष नित्य ।

।। कवित्त ।।

प्यारी तेरे अंग की सुवास के प्रकास मैं,
विलास हित भारी भौंर भीर मडराति है ।

नागिनु समाज नुप साज मांझ सुंदरि तू,
देवता सौ वैठी पान पात मुसकाति है ।।
रूप को निकाई को वपान कवि करै कौंन,
देपि कें गुविंदहू की मति ललचाति है ।
चांमी कर चापि जाति दामिनी हूं छिपि जाति,
चंदहू लजाति चारु-चांदिनी लजाति है ।।२।।

इहां "प्यारी तेरी अंग देवता सौ रूके निकाई चामी कर चपि जाति चंद हू लजाति" ए पद संस्कारहत हैं । इनकी ठौर "प्यारी तेरे अंग देवता-सी रूप की निकाई चामी कर चपि जात चंदहू लजातु" अैसै कहै तौ दोष नही ।

अथ अप्रयुक्त

जा पद विषैं कवीश्वरनि कौ प्रयोग नही सो अप्रयुक्त संकेत निषेध दोप मैं कारण । यह दोप अनित्य हैं । जमक श्लेष चित्र इन मैं अंगीकार करिवे तें ।

॥ दोहा ॥

तुम जु पसम वस जगत के, सुनियैं साद संमर्थ ।
प्रभु प्रसाद मुहि धोइये, यही सु मेरे गर्थ ।।३।।

इहां "पसम साद धोइयै गर्थ" इन की ठौर "नाथ टेर दीजियै अर्थ" अैसें कहे तौ दोप नही ।

अथ असमर्थ

प्रसिद्धार्थ रहित पद कहनौं सो असमर्थ । जथा जोग्य अर्थ की अप्राप्ति दोप मैं कारन । यह दोप नित्य ।

॥ कवित्त ॥

चोग्रा चारु कंचुकी कुरंग सार अंगनि,
उमंग सौं सवारि पुनि वार भार भारी कौं ।
नीलमनि भूषन बनाइकें नचाय भौंहें,
अंजन सौं आंजी आंछें आंपें अनियारी कौं ॥
रस बस रसिक गुविंद करिबे कें हित,
सरस सिंगारि नष-सिष सुषकारी कौं ।
छादि मुष नवल दुलारी कारी सारी सौं,
बिहारी सौं मिलन प्यारी हनी फुलवारी कौं ॥४॥

इहां "छादि हनी" की ठौर "ढांपि चली" यौं कहै तौ दोष नही ।

अथ निहितार्थ

उभयार्थ वाचक कौ अप्रसिद्धार्थ विषैं कहनौं, सो निहितार्थ । विलंब करि कैं अर्थ की प्राप्ति, दोष मैं कारण । यह दोष अनित्य । जमक श्लेष चित्र इन मैं अंगीकार करिवे तैं ।

॥ कवित्त ॥

सर सरितानि मांझ अमल कमल भयौ,
अंजुव अकास मैं प्रकास सरसायौ है ।
भुवन मैं नलिननि कर छवि छायौ पुनि,
जमुनां नैं संवर ही अंवर तनायौ है ॥
काम हू तें अति अभिराम घनस्यांम वाम,
तेरे धाम मुदित मनावन आयौ है ।
ऐसे मैं गुविंद सौं न मान करि मानिनि तू,
मानि कह्यौ मान तेरें कैसें मन भायौ है ॥५॥

इहां "कमल अंवुज भुवन संवर" इन की ठौर "उदक चंद्रमा सलिल पानिप" ऐसैं कहै तौ दोष नही ।

अथ निरर्थक

केवल पूर्णादिक प्रयोजन कौ पद कहनौ, सो निरर्थक। प्रयोजना भाव दोप मैं कारन। यह दोप नित्य।

।। सवैया ।।

जोवन रूप अनूप'रु आनन मंजु, हसी सरसी छवि छाई।
मांग भरी मुकतावलि सौं उर, फूल सु माल की सुंदरताई ।।
चंदन चित्र किये सु चली जहं, गोविंद आंनद-कंद कन्हाई।
अंबर मैं अंग-अंग की दीपति है, मनु मूरतिवंत जुन्हाई ।।६।।

इहां "अनूप'रु फूल सुमाल किये" सु इन की ठौर "अनूपन फूलनि-माल वनाइ" यौं कहै तौ दोप नही।

अथ अश्लील

वुरौ लगै सो असलील। लज्जा अमंगल ग्लांनि हौंनौं दोष मैं कारण। यह दोप अनित्य। भगिन्यादि पद देषियैं हैं यातैं।

।। कवित्त ।।[1]

जावक की लिग लाल भाल पै लगाय आये,
प्रातकाल पाय स्याम बदन दिषायौ है।
रावरे शरीर कौ पवन इत आवै ताकौं,
गंध वृंद श्रीगुविंद का पै जात गायौ है ।।
नीलपट धारैं पीतपट कौं विसारैं पुनि,
विन गुन चारु हारु हियें हरि आयौ है।
आनंद के कंद नंद नंद व्रजचंद तुम्हैं,
निपट कपट एतौ कौंनैं धौं सिपायौ है ।।७।।

इहां "लिग काल स्यांम पवन" इनकी ठौर "चिह्न समैं आप समीर" ऐसैं कहै तौ दोप नही।

अथ अनुचितार्थ

वर्नन करिवे जोग्य अर्थ को तृस्कारकारी अर्थ सहित पद कहनौं सो अनुचितार्थ। विवक्षत अर्थ कौ त्रस्कार दोष मैं कारन। यह दोष नित्य।

॥ कवित्त ॥

लोक वेद कुल-मरजाद परमांन ह्वै,
थिर रहै सो सपूत सुजस वढ़ाय है।
पशु ह्वै कें होमैं अंग अंग जुद्ध अद्ध रमैं,
सौंहीं साँचौ सूर सुरलोक कौं सिधाय है॥
सव सौं विरक्त अजगर ह्वै उजारि मैं,
इकौ सौ परचौ रहै गुन गोविंद के गाय है।
सोही सतपुरुष कहाय है जगत मांझ,
अंत समैं उत्तम परम पद पाय है॥८॥

इहां "पाहन पशु अजगर" ए पद अनुचितार्थ हैं।

॥ काहू कौ दोहा ॥

साधु वडे परमारथी, जेसे धरम के ऊंट।
पांच सात कौं लै चलैं, जा डारैं वैकुंठ॥९॥

इहां "ऊंट" पद अनुचितार्थ है।

अथ अवाचक

कहिवे जोग अर्थ कौं पद नही कहै, सो अवाचक। विपरीत अर्थ कौ वोध हौंनौं दोप मैं कारन। यह दोप नित्य।

॥ दोहा ॥

आज सुपर्वत मैं रमैं, जुवती नायक संग।
लगी गहरि वेलीनि कें, नचत विहंग उमंगि॥१०॥

इहां "गुपर्वत जुवती नायक वेली विहंग" इन की ठौर "गुवर्द्धन राधा मोहन कदली मयूर" ऐसैं कहैं तौ दोप नही।

अथ ग्राम्य

केवल लोक ही मैं स्थित होइ जो पद सो ग्राम्य। सुनिवेवारे कौं विमुपता दोप मैं कारन। यह दोप अनित्य। विदूपकादिक के वाक्य मैं अंगीकार करिवे तैं।

॥ दोहा ॥

नंद महरि कौ छोहरा, वन्यौ छवीलौ छैल।
होरी के दिन पाइ कैं, नित उठि रोकत गैल ॥११॥

इहां "छोहरा" की ठौर "लाडिलौ" कहै तौ दोष नही।

अथ अप्रतीत

सास्त्रांतर मैं अरु देसांतर मैं प्रसिद्ध संकेत होइ, सो अप्रतीत। वा सास्त्र के वा देस के न जानिवे वारे कौं अर्थ की अप्राप्ति दोष मैं कारण। यह दोप अनित्य। वा सास्त्र के वा देस के जानिवे वारे के जानिवे तैं।

॥ कवित्त ॥

कुंचि मन मानत हौ उड ठिक ठांनत हौ,
दारी रोकि ठाढ़े हौ उघारी गारी गाय गाय।
भलौ कियौ पेर तुम उर मैं अनेक भांति,
ऊधम करौ हौ जू अरौ हौ नित आय आय ॥
रसिक गुविंद-वर सुंदर कहावौ पै,
मचावतु हौ धूम लियैं संग सपा चाय चाय।
डफहि वजाय मुसकाय भृकुटी नचाय,
मेरे अंग आनि भरौ हौ रंग धाय धाय ॥१२॥

इहां "कुंचिम उड दारी पेर ऊर" इन की ठौर "तनक घनें राह नाम ग्राम" अैसें कहै तौ दोष नही ।

अथ संदिग्ध

अनिर्द्धारित पद कौं कहनौं, सो संदिग्ध । कहिवे जोग्य अर्थ के निश्चय कौ अभाव दोष मैं कारण । यह दोष अनित्य । अप्रकर्ण स्फूर्ति करिकैं निश्चय होत यातैं ।

॥ कवित्त ॥

कैरव प्रचंड अरु पांडव उदंड इन,
भारत कौं स्वारथ कें हेत विस्तारयौ है ।
आंनि पांच सातक महारथी अचानक ही,
मिलिकैं सवनि अभिमन्य मारि डारयौ है ॥
श्री गुविंद नर यह कौतुक निहारियौ तव,
भीम ह्वै कैं भट्ट सरासन कौं सँभारयौ है ।
जुद्ध मध्य क्रुद्ध कैं विरुद्धी दुरवुद्धिन के,
वद्धन कौं भांति भांति उग्र रूप धारयौ है ॥१३॥

इहां भीम अरु उग्र पद मैं यह संदेह है कि भीम भयंकर किधौं भीमसैंन अरु उग्र उद्धत किधौं सिव ।

अथ नेयार्थ

लक्षण करिकैं अर्थ की प्राप्ति होइ जा पद मैं, सो नेयार्थ । लक्षण ज्ञान रहित कौं अर्थ की अप्राप्ति दोप मैं कारण । यह दोष अनित्य । लक्षण ज्ञान वारे के जानिवे तें ।

॥ कवित्त ॥

रूप गुन जोवन सुवास कौ प्रकास तेरो,
गोविंद कौ वसी कर नेह कौ नितेक है ।

दास कियौ दर्पन पवास किये मोती मनि,
कुंदन क मीन कियौ हियौ हरि लेत है ।।
चेरी कियौ चंपावन चंदन कौ चाकर,
गुलाव कौ गुलाम कुंद कमल समेत है ।
दासी करि दामिनी कौं चांदिनी कौं चेरी करी,
चंद्रमा कैं चाय सौं चपेटादि न देत है ।।१४।।

इहां चंद्रमादिक कैं चपेटादिक संभवै नही तव लक्षणा करिकैं जानिये कि इन तैं अधिक सुंदर रूप है ।

अथ क्लेष्ट

विविधान करिकैं अर्थ की प्राप्ति होइ जा पद मैं, सो क्लेष्ट । विलंब करि कैं अर्थ की प्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष अनित्य । जमकादिक मैं अंगीकार करिवे तैं ।

।। दोहा ।।

जोति अत्र के नेत्र तैं, प्रगटी तासु प्रकास ।
ता मधि सोभित तिन सद्रस, रवुवर जस सविलास ।।१५।।

इहां "कुमुद सद्रस रघुवर को जस" इतनो अर्थ के लियैं इतनौं वडौ पद कहनौं अनुचित ।

अथ अविमृष्ट विधेयांस

विना विचारैं विधेय कौ जो कहनौं सो अविमृष्ट विधेयांस । विधेयार्थ की सीघ्र अप्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष नित्य है ।

[दोहा]

अपराध जु यह पिया, भोरहि आये भौंन ।
सपी थकी समुझाइ सव, अरु समुझावै कौंन ।।१६।।

इहां "यह अपराध जु है पिया" अैसें कहनौं उचित ।

अथ विरुद्धमति कृत

विरुद्ध वुद्धिकारी जो पद सो विरुद्धमतिकृत । विरुद्ध अर्थ की प्राप्ति दोष मैं कारन । यह दोष नित्य ।

॥ दोहा ॥

सिव जु अंविका रवन तुम, त्रिभुवन के सिरदार ।
होहु सहाय गुविंद कें, करौ अनंद अपार ॥१७॥

"अंविका" माता कौ नाम है या तें "भवानी" कहनौं उचित ।

इति पद-दोष ।

अरु पदांस-दोष काम भाषा मैं वहुधा परै नही यातें कहै नही ।

अथ वाक्य दोष

१. प्रतिकूल वर्ण, २. वृत्त हत, ३. नून पद, ४. अधिक पद, ५. कथित पद, ६. पतत्प्रकर्ष, ७. समाप्त पुनरात्त, ८. अर्द्धातिरैक वाचक, ९. अभवन मत जोग, १०. अनभिहितवाच्य, ११. अस्थानस्थ पद, १२. अस्थानस्थ समास, १३. संकीर्ण, १४. गर्भित, १५. प्रसिद्ध-हत, १६. भग्न प्रक्रम, १७. अक्रम, १८. अमतपरार्थ ।

अथ प्रतिकूल वर्ण

और वृत्ति के वर्ण और वृत्ति मैं कहनौं, सो प्रतिकूल वर्ण ।

॥ कवित्त ॥

विज्ज छटा छुट्टति सुघट नट वट्टा सम,
संघट वलिष्ट घन घट्टानि के ठाट कौं ।

झिल्ली झंनाट घनौ घोर कौ घटघटाट,
जान्यौं जात आहट वटोही कौन वाट कौ ।।
नटवर गोविंद कें चित्त चटपटी तेरौ,
अटपटौ विकट सुभाव औट पाट कौ ।
झटपट सटकि कपट हठ सठ छाडि,
ओढ़ि पट प्रगट निपट कोर पाट कौ ।।१।।

इहां शृंगार मैं परुषावृत्ति कहनौं अनुचित उप नागरि का तथा कोमला चाहिये ।

अथ वृत्तहत

छंदोभंग सो वृत्तहत । सो दुविधि-मात्रा वृत्तहत, वर्ण वृत्तहत ।

अथ मात्रा वृत्तहत

॥ दोहा ॥

सरस सुगंधित वार भार, सिर पर भली प्रकार ।
नव जोवन गुन रूप लपि, भयौ गुविंद रिझवार ।।२।।

इहां "भार" की ठौर "भर" कहै तौ दोप नही ।

अथ वर्ण वृत्तहत

॥ भुजंगी छंद ॥

विहारी गुविंदादि आनंदकारी ।
व्रजाधीस भारी जगज्जाल-हारी ।।
प्रिया संग लीनें सवै सुप्प साजें ।
सदा सर्वदा ही सर्व ऊपर विराजें ।।३।।

इहां अंत की तुक मैं "ही" अधिक है ।

अथ नून पद

जा पद विना अर्थ वनै नही ता पद कौ जो अभाव सो नून पद ।

॥ सवैया ॥

गाय कैं गारी वजाय कैं चंग, करौंगी मनोरथ दाय उपायकैं ।
पाय कैं होरी गोविंद की सौं अव, पेल रचाय हौं धूम मचायकैं ॥
चाय कैं नांच नचाय कैं धाय भुजा, भरि कैं रस रंग भिजायकैं ।
जाय कैं लैंहुगी माल रसाल हौं, गाल के लाल गुलाल लगायकैं ॥४॥

इहां "गुपाल के लाल गुलाल लगाय कैं" ग्रैसैं कहै तौ दोष नही ।[1]

अथ अधिक पद

जा पद के कहे विना कछू विगरै नही अरु कहे तै कछू सुधरै नही, सो अधिक पद ।

॥ दोहा ॥

मुष ससि सौ उज्जल सपी, घन से कारे वार ।
दीपति दमकति तडित सम, लपि गुविंद रिझवार ॥५॥

इहां "उज्जल कारे दमकत" ए पद अधिक है ।

अथ कथित पद

एक पद कौं द्वे वेर कहनौं, सो कथित पद ।

---

1. अलवर-प्रति में 'ग्रैसैं कहै तौ दोप नही' के स्थान पर 'यौं कह्यौ चहिये' दिया गया है । स्पष्टीकरण में अनेक स्थानों पर समान अर्थ के लिये अन्य उक्ति दी गई है । लिपिकर्त्ता तो इस प्रकार बदल नहीं सकता । फिर ये परिवर्तन किसने क्यों किया । क्या लेखक ने स्वयं ही ?

॥ दोहा ॥

तव मुप मोहत मो मनहि, मुप कें यहई टेक ।
मुप पर वारौं चंदमा, अर अरविंद अनेक ॥६॥

इहां 'मुप' कहि कें फिरि 'मुप' कहनौं अनुचित ।

अथ पतत्प्रकर्ष

प्रथम उद्धत रचना करिकैं अरु कोमल करनौं, सो पतत्प्रकर्ष ।

॥ छप्पै ॥

घोरि घोरि घन सघन घोर निरघोष सुनावत,
धुरवा धुकि धुकि धाय धाय धुंधरि सरसावत,
पवन झुक्कि झंकार झुंड झिंगार झिंगारत,
विज्ज छटा छुट्टति घटानि इम गुविंद उचारत,
धारानि धरत धारा धरन धरनि धूम इन अधिक किय ।
गोपाल लाल अवलंब विन रालंब अति विकल हिय ॥७॥

इहां अंत की तुक मैं "सुंदर आधार गिरधरन विन निराधार धरक्कत हिय" अैसं कहै तो दोप नही ।

अथ समास पुनरात्त

वाक्य कौं समाप्त करिकैं फिरि गृहण करनौं, सो समाप्त पुनरात्त ।

॥ कवित्त ॥

देपी एक नागरि नवेली अलवेली आज,
सुकवि गुविंद करै कहां लौं उचार है ।
सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
सरस सुगंधमई वारनि कौ भार है ॥

रूप कौ अगार रस रंग कौ पसार सब,
सुषमा कौ सार मेरे हिय कौं अधार है ।
द्रग अरविंद भ्रू अलिंद मंद हसनि,
अमंद मुष चंद सौ सुछंद सुकुमार है ।।८।।

इहां चौथी तुक कौं तीसरी की ठौर कहै तौ दोष नहीं ।

अथ अर्द्धांतरैक वाचक

उत्रार्द्ध को पद पूर्वार्द्ध मैं कहनौं सो अर्द्धांतरैक वाचक ।

।। दोहा ।।

गोविंद वक्षस्थल सहित, कौस्तुभांक त्रिपुरारि ।
जटा जूट ससि सोभ जुत, ए सब कौं सुषकारी ।।९।।

इहां त्रिपुरारि पद उत्रार्द्ध को पूर्वार्द्ध मैं कहनौं अनुचित ।

अथ अभवन-मत जोग

कवि के हृदै के अर्थ कौं अक्षर पुष्ट नही करैं, सो अभवन-मत जोग ।

।। सोरठा ।।

जग को भूपन जान रति, पति नृप की जैतिश्री ।
सा सुंदरि विन प्रान अति, व्याकुल सो कित गई ।। १०।।

इहां "वा विन दूपि मम प्रांन सो वह सुंदरि कित गई" ।
असैं कहै तौ दोप नही ।

अथ अनभिहित वाच्य

नही भासै है कोईक वाच्य जा विषैं, सो अनभिहित वाच्य ।

॥ सवैया ॥

तो सौं[1] लगायौ निरंतर है, उर अंतर कौ अनुराग महा री ।
तेरी ए प्रीति की रीति कौं चाहै, प्रतिति यहै हिय मैं इन धारी ॥
तेरौ वियोग न होय कबू यह, चाहत चित्त विचित्र बिहारी ।
असे गुबिंद अनंद के कंद कौ, रंचक दोष न मानिये प्यारी ॥११॥

इहां 'रंचक" की ठौर "रंचहू" असें कहै तो दोष नही ।

अथ अस्थानस्थ पद

जहां जो पद चाहियै सो नही होइ, सो अस्थानस्थ पद ।

॥ दोहा ॥

सुंदर जुत अंजन नयन, पिय प्राननि के प्रान ।
हसनि लसनि मुष मधुर मृदु, रस बस कियौ सुजान ॥१२॥

इहां "अंजन जुत सुंदर नयन" असें कहै तौ दोष नहीं ।

अथ अस्थानस्थ समास

स्थान विषै समास नही, सो अस्थानस्थ समास ।

॥ सवैया ॥

तिय के हिय मध्य कौ मांन, अजौं कुच द्वै गढ़ मैं द्रढ़ वास चहै ।
यह जांनि कैं मांनि धिकार उदै कौं, वृथा गनि क्रुद्ध ह्वै लाल रहै ॥
अति उद्धत उद्धित दूरि हि तैं, विसतारित अंस गुबिंद कहै ।
विकसे कुमुदावलि कोरिक कोस, कढी अलि-पांति कृपान गहै ॥१३॥

1. अलवर-प्रति में 'तोमैं' दिया गया है ।

इहां चंद्रमा क्रोधी है ताकी उक्ति मैं समास चहियें कवि की उक्ति मैं कहनी अनुचित।

अथ संकीर्ण

और वाक्य के पद और वाक्य मैं होइ, सो संकीर्ण।

॥ कवित्त ॥

आनंद के कंद नंद नंद सौं न कीजै हठ,
दीजै दरसन रति रंग के सुथान मैं।
जीजियै जू देषि मुष प्यारे प्रीतम कौ,
लीजियै सुजस सदा सकल जिहान मैं॥
निरस वचन क्यौं हू कहियै न कान्ह जू सौं,
सरस सुजान तान तो समान आन मैं।
देषि मान सुंदरी गुविंद व्रजचंद की सौं,
छाडि चंद्र सुंदर अमंद आसमान मैं॥१४॥

इहां "छाडि मान देषि चंद" असैं कहनौं उचित।

अथ गर्भित

और वाक्य और वाक्य मैं लिष, सा गर्भित।

॥ दोहा ॥

पर अपकारहि मैं सदा, जे ततपर अंग अंग।
तत्व वात यह तोहि कहौं, उनकी तजि दै संग॥१५॥

इहां "उन कौ संग तजि दै इह तो सौं तत्व वात कहत हौं" असैं कहनौं उचित।

अथ प्रसिद्धहत

कविनु के संकेत रहित पद जामैं होइ, सो प्रसिद्धहत ।

[कवित्त]

आनंद के कंद नंद नंद सौं मिलन काज,
सुंदर सलौनी चली संग सषियांनि की ।
सुभग सिंगार काछें अंग सुकुमार आछें,
कुटिल कटाछें भृकुटी की अषियानि की ॥
द्रग अरविंद-वर वदन अमंद चंद,
मंद मंद हसनि गुविंद सुषदानी की ।
वलय गरज कटि किंकिनी धुकार पग,
नूपुर कौ सोर पुनि घोर विछियानी की ॥१६॥

"गरज घुकार सोर घोर" ए शब्द जुद्ध के समैं प्रसिद्ध हैं इहां शृंगार मैं "रणित कुणित नंदित धुनि" अैसें कहनौं उचित ।

अथ भग्न प्रक्रम

जहां प्रस्ताव-क्रम नही, सो भग्न प्रक्रम ।

॥ दोहा ॥

अस्त भयौ ससि जानि संग, अस्त ह्वै गई राति ।
नाथ साथ तन तजत जे, हैं तिय उत्तम जाति ॥१७॥

इहां "अस्त भई है राति" अैसें कहनौं उचित ।

अथ अक्रम

विद्यमांन क्रम जहां नहां, सा अक्रम ।

॥ दोहा ॥

पद भुज कुच आनन नयन, इनके यह शृंगार ।
अंजन नूपुर चारु अरु, वीरा वाजू-हार ॥॥१८॥

इहां "नूपुर वाजू हार अरु, वीरा अंजन चारु" ऐसें कह्यौ चहियै । कोऊ या सौं क्रमहीन कहैं हैं ।

केसव

॥ छंद ॥

गज की रचना कहि कौंन करी ।
किहि रावन की जिय पैज धरी ॥
अति कोपि कैं कौंन संधार करैं ।
हरि जू हर जू विधि क्रुद्ध ररैं ॥१९॥

इहां "विधि जू हरि जू हर" ऐसें कहनौं उचित ।

अथ अमतपरार्थ

प्रकर्ण विरुद्ध दूसरौ अर्थ जहां होय सो अमतपरार्थ ।

॥ छंद ॥

राम मन मथ सर दुसह ताडित हृदै निश्चरि भली ।
रुधिर चंदन गंध संजुत जीवितेश्वर ढिग चली ॥२०॥

इहां दूसरौ अर्थ तरिका कौ है यह शृंगार मैं वीभत्स कौ वोध होनौं प्रकर्ण विरुद्ध है ।

इति वाक्य दोष ।

अथ अर्थ दोष[1](२५)

१. अपुष्टार्थ, २. कष्टार्थ, ३. व्यर्थ, ४. अपार्थ, ५. अव्याहत, ६. पुनुरुक्त, ७. दुःक्रम, ८. ग्राम्य, ९. संदिग्ध, १०. निर्हेतु, ११. प्रसिद्धविद्या विरुद्ध, १२. अनवीकृत, १३. सनियम, १४. अनियम, १५. विसेष, १६. अविसेष, १७. साकांक्ष, १८. मुक्तपद, १९. सहचर भिन्न, २०. प्रकासित विरुद्ध, २१. विधि अनुवाद अयुक्त, २२. तिक्त पुनः स्वीकृत, २३. अश्लील त्रिविधि (२३,२४,२५)।

अथ अपुष्टार्थ

वहुत हू पद जहां अर्थ कौं पुष्ट नहीं करैं, सो अपुष्टार्थ ।

॥ सवैया ॥

ऊचौ अकास प्रकासित तास कौ, मारग है अति दुर्गम भारी ।
ता मधि आवत जातहि मैं तन के सुधि की जिनि ग्रंथि विसारी ॥
वात सुगंध करैं जल जात हसात, तिन्है मति मोहै हमारी ।
अैसे प्रभू परसिद्ध प्रभाकर, जै जै गोविंद कौं आनँदकारी ॥१॥

इहां "जै जै" अर्थ कौं ए पद पोपत नांहीं ।

अथ कष्टार्थ

कवि के हृदै कौ अर्थ अक्षरानि तें प्राप्ति जहां नही होइ, सो कष्टार्थ ।

---

1. अलवर-प्रति में २३ दिए गए हैं । यहां यह संख्या २५ है क्योंकि अंतिम 'अश्लील' दोष को त्रिविधि कहा गया है । अलवर-प्रति में 'अश्लील' मात्र लिखा है । इस प्रकार के अंतर पर ध्यान देना आवश्यक है । क्या कवि ने अलवर-प्रति को जोधपुर प्रति के वाद लिखा और उसमें कुछ परिवर्तन किए ?

।। कवित्त ।।

सूरज गुविंद जलवृंद बरसावै घन,
वृंद मंद जल की न बुंद बरसांवहीं ।
नीर कौ निवास भास मांन अंस ही मैं भान,
नदिनी हूं पानी जग पानी वहांवहीं ।।
व्यास जू की उक्तिनि कौं मांनत न कौंन श्रुति,
वचन सुनत श्रद्धा कौंन कौंन आँवहीं ।
तदपि प्रचंड मारतंड की किरनि मांझ,
प्यासी मृग-मुग्ध वधू रंचहू न पांवहीं ।।२।।

इहां मृग तृष्णा के अर्थ की प्राप्ति कष्ट सौं है ।

।। काहू कौ दोहा ।।

कूवा मैं कौ मैंडुका, कहै समुद की वात ।।३।।

इहां हंस प्रसंग के अर्थ की प्राप्ति कष्ट सौं है ।

।। सवैया ।।

नृप मारि चली अपनै पति पैं, पति सर्प डस्यौ विपता परि हीं ।
वन मांझ गई वनिजारैं लई, तव वेचि दई गनिका घर हीं ।।
सुत संग जरिवे कौं गई, घन वर्षत मेघ नदी तरि हीं ।
महाराज कु रहीं गुजरि हीं अव, छाडि कौ सोच कहा करि हीं ।।४।।

इहां कवि के हृदय के प्राप्ति कष्ट सौं है ।

गिरधर[1]

[कुण्डलिया]

नाइक अपनी नाइका जनम पाइ देषी न ।
रूप कुरूप लप्यौ नही सेज परस्पर लीन ।।

1. अलवर-प्रति में गिरधर वाला छंद नहीं है ।

सेज परस्पर लीन इते पर नाइक रूठौ ।
प्यारी लियौ मनाइ लिप्यौ मजकूर अनूठौ ।।
कहे गिरघर कविराइ हुते दोऊ सम लायक ।
यह जानी नहि परी कौंन विधि रूठौ नायक ।।५।।

इहां हूं कष्टार्थ है ।

अथ व्यर्थ

एक प्रवंध मैं अगिलौ पिछलौ अर्थ अनमिलत जहां होइ, सो व्यथ ।

केसव

।। मरहटा छंद ।।

सव सत्रु संघारहु जी जिन मारहु सजि जो धाउ मराऊ ।
वहु वसु मति लीजै मो मन कीजै दीजै अपनौं दाऊं ।।
कोउ न रिपु तेरौ सव जग हेरौ तू कहियत अति साधू ।
कछु देहि मगावहु भूष भगावहु हौ पुनि धनी अगाधू ।।५।।

इहां अगले पिछले अर्थ कौ विरोध है ।

अथ अपार्थ

मतवारे कौ सौ, उनमत्त कौ सौ, वालक कौ सौ वचन होइ अरु अर्थ जाकौ समझियै नही सो अपार्थ ।

केसव

।। दोहा ।।

पियें लेत नरसिंघु कौं, है अति सज्वर देह ।
ऐरावत हरि भांवती, देष्यौ गर्जत मेह ।।६।।

यह अर्थ समझिवे मैं आवै नहीं ।

॥ काहू कौ दोहा ॥

सांई तेरे कारनैं, छाछि भुनाई भार ।
आंपिन चरषा घुसि गयौ, तौ मूं तैगी किहि द्वार ॥७॥

यहू वैसी ही जानि लीजै ।

अथ अव्याहत

वस्तु कौं प्रथम निंदि कैं फिरि ताही कौं गृहण करणौं, सो अव्याहत ।

॥ सवैया ॥

या जग मैं मधुरे वहु भाव, सुभाव ही तैं सव है सुषकारी ।
नूतन चंद्रिका चंद्रकलादि, वढ़ावत हैं मन कौं मुद भारी ॥
गोविंद आनद कंद कहैं इन्हैं, चाहै न चित्त की वृत्ति हमारी ।
मेरे तौ चंद्रिका चंदमुषी उह, नैंननि कौ उत्साह है प्यारी ॥८॥

इहां प्रथम "चंद्रिकानिंदि" कैं फिरि ताही कौ गृहण करणौं अनुचित ।

अथ पुनरुक्त

एक अर्थ कौ संभ्रम तैं द्वे वेर कहनौं, सो पुनरुक्त ।

केसव

॥ सोरठा ॥

मघवा घन आरूढ, इंद्र आज अति सोहिये ।
व्रज पर कोप्यौ मूढ, मेघ दसौं दिस देपियै ॥९॥

इहां "मघवा अरु घन" कहि कैं "इंद्र अरु मेघ" कहनौं अनुचित ।

॥ दोहा ॥

दोप नही पुनरुक्त को, एक कहत कविराज ।
छाडि अर्थ पुनरुक्त कै, सब्द कहो इहि साज ॥१०॥

लोचन पैनें सरनि तें, है कछु तो कहँ सुद्धि ।
तन वेध्यौ मन विधि गयौ, वेधी मन की वुद्धि ॥११॥

अैसें कहियै तौ दोष नही ।

अथ दुःक्रम

प्रसिद्ध कर्म तें विरुद्ध होइ, सो दुःक्रम ।

॥ कवित्त ॥

रसिक गुविंद सुनौं सुंदर विनीति प्रीति,
रीति करै जा सौं प्रीति रीति सरसाइये ।
कवहू तौ डगर वगरहू मैं आइये न,
आइये तौ सदाइ हमारें घर छाइये ॥
येक वेर इहि ओर देषि मुसकैये मुस,
कैये न तौ नीकें भुज भरि उर लाइये ।
फूलनि को चौसर या औसर मैं दीजै जू न,
चौसर तौ मोतिन कौ नौसर दिवाइये ॥१२॥

इहां "सदाई घर छाइवौ भुज भरि उर लाइवौ मौतिन की नौसर" ए पहलैं कहे चहियें ।

अथ ग्राम्य

रसिकनि को प्रिय अर्थ नाही, सो ग्राम्य ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

सूरज तेज तपै तिहु लोग(क) मैं, आंधी जराइवे की मति ठाटी ।
सीतलता कहि कौंन करै जिहि, देषैं तृषारहू की वुधि नाटी ॥
जेठ मैं जीवन जौ ही वनैं तव, होइ तिवारी वनाय कैं पाटी ।
सीचि कैं कोरे घडानि के नीर सौं, द्वारनि दीजै जवासे की टाटी ॥१३॥

इहां "सीचि कैं आछे गुलाव के आव सौं द्वारनि दीजै उसीर की टाटी" औसैं कहनौं उचित ।

अथ संदिग्ध

प्रकर्ण विना अर्थ कौ निश्चै नही, सो संदिग्ध ।

॥ दोहा ॥

वडे विदित सव जगत मैं, अचल प्रकृति जिय जानि ।
सहनसील सज्जन सुपद, विविधि गुननि की पानि ॥१४॥

या अर्थ मैं प्रसंसा पंडितनि की पर्वतनि की यह संदेह है। अरु दोऊनि मैं एक के प्रसंग मैं कहिये तौ दोष नही ।

पुनः

[दोहा]

कपट निपट तजि दीजियै, कीजै सज्जन संग ।
जौ लौं जग मैं जीजियै, लीजै हिलिमिलि रंग ॥१५॥

ए वचन शृंगार पें कि शांति पें यह संदेह है ।

अथ निर्हेतु

विना कारण अर्थ कौ कहनो, सो निर्हेतु ।

॥ सवैया ॥

जंघनि वाजू भुजानि मैं, नूपुर हार लता कटि सौं लपटाई ।
वंदिनि वाँधी गुलीवंद ज्यौं, सिर किंकिनी जाल की जोति जगाई ॥
पौरि लिलार महावर की करि, पांयनि अंजन दै सुषदाई ।
अैसें सिंगार सिंगारि सवै मृग, भामिन ज्यौं गज गामिन धाई ॥१६॥

इहां कछू कारन कह्यौ नही या तें मौंहन की मुरली सुनि कैं "मृग भामिनी ज्यौं गज गामिनि धाई" यौ कहैं तौ दोष नही ।

अथ प्रसिद्ध विद्या-विरुद्ध

प्रसिद्ध विद्या तें विरुद्ध जो अर्थ, सो प्रसिद्ध विद्या-विरुद्ध । सो द्विविधि । कवि संप्रदाय-विरुद्ध, सास्त्र-विरुद्ध ।

अथ कवि संप्रदाय-विरुद्ध

॥ दोहा ॥

अधर मधुर मांपन सदृग, कपि से चंचल नैंन ।
उदित मुदित मुप रवि सद्रस, सिपी सदृस मृद वैन ॥१७॥

इहां "मापन कपि रवि सिपी सद्रस" की ठौर अंमृत मृग ससि कोकिल से" अैसें कहनौं उचित ।

अथ सास्त्र-विरुद्ध

[दोहा]

सुनि लछमन या जज्ञ तैं, वेग भजहु इहि वार ।
परसराम आयौ वली, लीनें कर तरवारि ॥१८॥

इहां "परसराम की तरवारि" सास्त्र मैं प्रसिद्धि नही यातें "हाथ कुठार" कहनौं उचित ।

केसव

[दोहा]

पूजिय तीनू वरन जग, करि विप्रनि सौं भेद ।
पुनि लीवौ उपवीत हम, सुनि लीजै सव वेद ॥१९॥

इहां विप्रनि सौं भेद करि कैं अरु तीनू वर्ण पूजिवौ अरु पहलैं वेद सुनि कैं पीछैं उपवीत लैंनौं यह सास्त्र-विरुद्ध है ।

अथ अनवीकृत

अनेक पदनि कौ एक ही भाव होइ अरु नवीन भाव देपियै नही, सो अनवीकृत ।

कुलपति

॥ सवया ॥

रूप की रासि भयौ तौ कहा रु कहा भयौ जौ गुन सागर गाह्यौ ।
वंधु अनेक भये तौ कहा औ कहा भयौ जौ अरि कौ उर दाह्यौ ॥
हाथी तुरंग भये तौ कहा औ कहा भयौ जौ जग-दान सराह्यौ ।
लापनि साज भये तौ कहा रु कहा भयौ जौ जग नेह निवाह्यौ ॥२०॥

इहां वांछित अर्थ और द्रष्टांत करि पोष्यौ नही यातैं "हरि सौं जग जो नहि नेह निवाह्यौ" ऐसें कहनौं उचित ।

अथ नियम मैं अनियम, अनियम मैं नियम, विसेष मैं अविसेष, अविसेप मैं विसेप इनके लक्षण नाम ही तें जानि लीजें ।

अथ नियम मैं अनियम

॥ अरिल्ल ॥

कथा श्रवण गुन कथन सुमरण सुठानियै,
पद सेवा अर्चना वंदना जानियैं,
दास्य सख्य आतमा निवेदन मानियैं ।
करि हरि भक्ति गुविंद सदा सुष-दानियैं ॥२१॥

इहां श्रवण कीर्त्तनादि नियम करि कैं फिरि भक्ति यह अनियम कहनौं अनुचित ।

अथअनियम मैं नियम

॥ दोहा ॥

अंग अंग सब सुपमा सरस, रस बस कियौ गुविंद ।
हाव भाव लावन्य गुन, जोवन रूप अमंद ॥२२॥

इहां अनियम सब सुपमा कहि कैं फिरि हाव-भावादिक यह नियम करनौं अनुचित ।

अथ विशेष मैं अविसेष

॥ दोहा ॥

सघन कुंज गुंजत मधुप, उपमा कौं नहि आंन ।
वृंदावन सुंदर सकल, रसिकनि जीवन प्रान ॥२३॥

इहां "सघन कुंज मधुप गुंज" यह विसेष कहि कैं फिरि "बृंदावन सुंदर सकल" यह अविसेप कहनौं अनुचित ।

अथ अविसेष मैं विसेष

॥ दोहा ॥

मथुरा मंडल अति वन्यौ, सव सुष मानि समेत ।
सुघट घाट विसराति मम, चित्त चुरायें लेत ॥२४॥

इहां "मथुरा मंडल" सव सुष मानि समेत" यह अविसेष कहि कैं फिरि "सुघट घाट विसरांति" यह विसेष कहनौं अनुचित ।

सोमनाथ[1]

[दोहा]

सघन वाग अनुराग-मय, सव सोभा सरसाइ ।
सींन जुही के फूल नैं, लीनौं चित्त चुराइ ॥२५॥

अथ साकांक्षा

कोईक अर्थ और अर्थ की चाह जहां करै, सो साकांक्ष ।

॥ सवैया ॥

मांते मतंग सौं सोभित गौंन सु, केहरि-सी कटि सुंदर सोहै ।
कोकिल से कल वैंन मनोहर, नैंननि को उपमा कवि टोहै ॥
जोवन रूप की जोति जगामग, देषति मौहन की मन मोहै ।
आनदकंद गुबिंद की तौं तिय, तो सी तिया तिहु लोक मैं को-है ॥२६॥

1. भरतपर-प्रति में सोमनाथ का दोहा तथा उनका स्पष्टीकरण नहीं है ।

इहां "माते मतंग के गौंन सौं गौंन सु केहरि की कटि-सी कटि सोहै, कोकिल बैंन से बैंन" इतने अर्थ की और चाह है।

अथ मुक्त पद

ठौर तजि कैं अर्थ कौं पूर्ण कीजै, सो मुक्त पद

॥ दोहा ॥

पिय के हिय मैं बिरह की, ज्वाला कियौ प्रवेस।
तिहि हरिये चलि ससि मुषी, मुष ससि सद्दस सुदेस ॥२७॥

इहां "ससि मुषी" कहिकें अर्थ पूर्ण भयौ फिरि "मुष ससि सद्दश" कहनौं अनुचित।

अथ सहचर भिन्न

उत्तम के साथ अधम कौं लिषियै, सो सहचर भिन्न।

सोमनाथ

[दोहा]

विद्या ही तैं बढ़त है, द्विज आदर अभिराम।
ज्यौं लोहे के गढ़न सौं, है लुहार कौ नाम ॥२८॥

ब्राह्मन की अरु लुहार की सहचरता नही यातैं इहां "जैसैं छत्री कौ सदा जुद्ध करन सौं नाम" ऐसैं कहनौ उचित।

अथ प्रकासित विरुद्ध

विरुद्ध अर्थ कौं प्रकासित करै, सो प्रकासित विरुद्ध।

॥ दोहा ॥

नील वसन तन मरगजी, सुगँध अटपटे वैंन ।
सकुची हैं भौहैं सषी, अति अलसौंहे नैंन ॥२६॥

इहां नायक कौ वर्नन है अरु नाइका को सौ प्रकासै है यह अनुचित ।

अथ विधि अनुवाद अयुक्त

विधि के अनुवाद करि कैं रहित जो अर्थ, सो विधि अनुवाद अयुक्त ।

[दोहा]

कोक कलानि प्रवीन तुम, जुवतिन के रिझवार ।
मोहि वेग ही कीजियें, भवसागर के पार ॥३०॥

इहां भवसागर के पार करने की विधि के एक विसेषण नही या तै "प्रभू पतितपावन प्रगट करुणासिंधु उदार" अैसें कहनौं उचित ।

अथ तिक्त पुनःस्वीकृत

अर्थ कौं तजि कैं फिरि ग्रहण करनौ सो तिक्त पुनःस्वीकृत ।

॥ कवित्त ॥

जुद्ध मध्य क्रुद्ध कैं विरुद्धी दुरवुद्धिन के,
मद्दित दुरद्द हतें अैसी असि नारी है ।
ताही अनुरागिनि सौं मन की लगाई लाग,
और कौन गनैं कछू मौंहनी-सी डारी है ॥
मोहि दई भृत्यनि कौं वडोई उदार चारु,
यह जिय जानि तात वात यौं हमारी है ।
कहै कवि गोविंद महीपति दिलीप यौं,
जतावन कौं सिंधु के समीप श्री सिधारी है ॥३१॥

इहां "यह जिय जानि तात" इहां ही अर्थ कौं समाप्त करिकैं 'तज्यौ फिरि यों जतावन कों सिंधु के समीप श्री सिधारी है" वह अर्थ गृहन करनौं अनुचित ।

अथ अश्लील

अर्थ में लज्जा[1] अमंगल[2] ग्लानि[3] कौं प्रगट करै, सो अश्लील ।

अथ लज्जाश्लील

कुलपति

॥ कवित्त ॥

छैल से फिरत छेद भेदनि के भेद लेत,
पेद पायें लालन वदन विलषायगौ ।
वांसुरी के वाही ठौर अधर लगायें रहौ,
जानियत याही भांति मदन वतायगौ ॥
मार के सुरूप यातें मारिवी वसत मन,
मार परें मौंहन जू मन सिथलायगौ ।
अंडे अंडे डोलत ही ठाढे किये अंग सव,
देपें अव कैसें यह हठ ठहरायगौ ॥३२॥

यह अर्थ सपी की उक्ति मैं लज्जा कौं प्रगट करै है अरु परुपी उक्ति मैं होइ तौ दोप नही ।

1-2-3 अलवर व जोधपुर की दोनों प्रतियों में अश्लील के तीन भेद हैं—लज्जा, अमंगल, ग्लानि । इस प्रकार २५ भेद हो जाते हैं ।

अथ अमंगल अश्लील

॥ दोहा ॥

चलियै सगुन मनाय कैं, पिय परदेस नचिंत ।
उत तैं फिरि इत देषि हौं, तव सुष पैं हौं कंत ॥३३॥

इहां अमंगल प्रगट ही है ।

अथ ग्लानि अश्लील

॥ दोहा ॥

उर पर नष छत रुधिर मनु, है कुंकुम कौ रंग ।
श्रम जल-कन पोंछौ पिया, लिवलिवात है अंग ॥३४॥

इहां ग्लानि प्रगट ही है ।

अब इन दोपनि को समाधान प्रकार कहियत है। जहां कर्ण भरणादिक करणादिक की स्थिति की प्रतीति के अर्थ कहियै तहां पुनरुक्त आदि दोप नही ।

॥ छंद ॥

जीती सबै भूपननि की, । करणावतंसनि सोभ ।
यातैं श्रवण कुंडल निरषि, पिय मन लग्यौ अति लोभ ॥३५॥

इहां "कर्णावतंस श्रवण कुंडल पहरें लसत के लियें" कहै नांतर घरहू मैं धरे गहनेंनि की प्रतीति होइ ॥३६॥

कुलपति

॥ दोहा ॥

कानिनि कुंडल नासिका, वेसरि टीको भाल ।
कर कंकन उर हार पग, जेहरि लसत रसाल ॥३७॥

इहां "कांननि" आदि ए सव पद "पहरें लसत कें लियें" कहे नांतरि घरहू मैं धरें गहनेंनि की प्रतीति होइ या भांति समाधान कीजै जो कहूं आय परें वडे कवि की उक्ति मैं तौ अरु आप जानि कें नही धरिये ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

हिये धरें फूली फिरें, पाय पीय के प्यार ।
फूल-माल की जेव पर, वारति मुक्ता-हार ॥३८॥

जद्दपि "माल" कहे तें फूलनि हीं की अरु "हार" कहे तें मुक्तानि हीं की यह प्रतीति प्रसिद्ध है तथापि अति प्रसिद्ध फूलनि ही की केवल मुक्तानिहीं की यह कहिवे कों "फूल-माल मुक्ता[हा]र" कहे । अथ अति प्रसिद्धार्थ मैं निर्हेतु दोप नांही ।

॥ सवैया ॥

चंद के मध्य जवै छवि होति तवै, अरविंद को मेद घटा[वै] ।
ह्वै अरविंद के मध्य जवै, छवि चंद कों मंद करै औ लजावै ॥
प्यारी के आनन मैं छवि होति तवै, कछु रीति अनौपी दिपावै ।
चंदहू कों अरविंद कों आली, गोविंद की सौंह अनंद वढावै ॥३९॥

चंद्रमा की हीनता दिन मैं कमलनि को संकोंच रात्रि मैं यह अर्थ सकल लोक मैं प्रसिद्ध है, या तें इहां निर्हेतु दोप नही ।

पराई कहनावति के कहिवै मैं श्रुति कटु आदि दोष नही ।

॥ कवित्त ॥

धवल महल के अटा पें घटा देषें दोऊ,
नीकें तान मान लै मलारनि कौं गाय गाय ।
धुमकट धिकटधि लांग धिधिकट धुनि,
मधुर मृदंग वजैं सषी चित चाय चाय ॥
सुनि सुनि आये धौरे घूंघरे घुंघारे भारे,
धूमरे सघन घन श्री गुबिंद छाय छाय ।
केकी नचैं कूकि कूकि त्यौं त्यौं धुकि धुकि धुकि,
धरा पें धरत धार धारा धर धाय धाय ॥४०॥

इहां "धुमकटादि" पद श्रुति कटु हैं परि मृदंग की कहनावति है यातैं दोष नही । असें औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजै । कहूं कविता वक्ता श्रोता अर्थविगि प्रस्ताव की महिमा करि कैं दोषहू गुन है कहूं गुनहूं दोष है । कहूं गुन गुन हीं दोष नही है ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

जहँ कहिवैया गूढ़ कौ, श्रोता तैसौ होइ ।
अधिक श्लेष जुत गुन तहां, दोष कहै नहि कोइ ॥४१॥

रौद्र वीर वीभत्स विगि तैं कहै तहां कष्टार्थ दोष नहीं ।

॥ कवित्त ॥

प्रगट प्रचंड पुहे आंतनि मैं रुंड मुंड,
कंकण कुणित जघ हाडनि धरत है ।
और घने घोर भूपननि के जु घोष की,
घुमंडनि गुविंद की सौं अभ्रमैं भरत है ॥

गिल्लैं औ उगिल्लैं झल्लैं सघन रुधिर पंक,
उरु उच्च कुच्च भार भूपित करत हैं।
भोम भेप रुकै कैं उद्धत गरब्बि गज्जि,
भारत की भूमि मध्य भज्जते फिरत हैं ।।४२।।

"भज्जते भूत फिरत हैं" यह अर्थ कष्ट सौं प्राप्ति होत है। परि इहां दोप नही। नीरस काव्य मैं गुग गुन नहीं दोप दोष नहीं।

।। कवित्त ।।

रोगनि तें फूटि फूटि फोरे फटि फाटि घाव,
रटि रटि रहे राधि रुचिर चुचाय कैं।
हाथ पाद नासिकानि अंगागरि गिरे ऐसे,
नरनि सरीर दिव्य देत सरसाय कैं।।
विघन विनाशन हुलासनि प्रकासन कौं,
द्विज दैं अरघ तिन्हैं लेत हैं सुभाय कैं।
ऐसे मारतंड कौं प्रचंड कर मंडल,
अपंड करौं आनँद गुविंद की सहा[य] कैं ।।४३।।

ऐसी ठौर गुन गुन नहीं, दोप दोप नहीं। श्लेष चित्र जमक मैं अप्रयुक्त अरुन हितार्थ दोष नही। लज्जाश्लील कामशास्त्र मैं दोष नही।

कुलपति

।। दोहा ।।

दंड वडौ मुदरी तनक, वनि वैठैं छवि होइ।
तवहि अमैठि चलाइये, सुप न कहि सकै कोइ ।।४४।।

इहां लज्जा प्रगट ही है। क्रोधी की अरु विरही की उक्ति मैं अमंगल अश्लील दोप नही ।।

कु[लपति]

[दोहा]

इहां न सो जिहि सौं सवै, विरही करै पुकार ।
कछुक मरे मारे कछू, विकल किये इहि मार ।।४५।।

इहां अमंगल प्रगट ही है । ग्लानिश्लील सांति रस मैं दोष नही ।

॥ दोहा ॥

उदर विदीरण भेक कौं, तिय व्रण ताहि समांन ।
ता मैं शठ नर करत रति, तजि गुविंद भगवान ।।४६।।

इहां ग्लानि, गुन है । व्याज स्तुति मैं संदिग्ध गुन है ।

सेनापति

॥ कवित्त ॥

नांही नांही करै थोरो मांगै सव दैन कहैं,
मंगन कैं देपि पट देत वार वार हैं ।
जिनके मिले तें भली प्रापति की घरी होति,
सदा हरि जनम भाये निरधार हैं ।।
भोगी ह्वै रहत विलसत अवनी के मध्य,
कनक[न] जोरैं दान पाठ परवार हैं ।
सैंनापति वचन की रचना बना वनाई,
तामैं दाता औरसूम दोऊ कीने इकसार हैं ।।४७।।

प्रतिपाद्य ज्ञान प्रतिपादक कौं होइ, तहां अप्रतीति दोष नहीं ।

॥ सवया ॥

भीतरि द्रष्टि दै पुत्र विचित्र महा, इक कौतुक तोहि दिपावत ।
मूचिका अग्रद्ध कूपनि पैं पुर, ता पर गंग प्रवाह वहावत ॥
ताके सनान तें ध्यांन तें पान तें, वाहिर के जे विकार नसावत ।
ऐसो है ब्रह्म अनंद गुविंद गिरा, गुरु की सौं सबै कोऊ पावत ॥४८॥

इहां देह मैं एक कुंडलिनी सर्पिनी के आकार है ताकी जोग सास्त्र मैं सूचिका संज्ञा है। ताके अग्रवर्ती छः चक्र है-१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञा। इनकी कूप संज्ञा है। इन पैं ब्रह्मांड है। ताकी पुर संज्ञा है। ता पै तें अमृत चुचात हैं ता की गंगा प्रवाह संज्ञा है। यह प्रतिपाद्य अर्थ कौ ज्ञान प्रतिपादक कौ है या तें दोप नही।

ग्रामी अरु विदूपिकादिक के वाक्य मैं ग्राम्य गुन है।

॥ सवैया ॥

नीकी जुही की लतानि की डारनि की अवली लवली मन मोहै ।
फूलनि गुच्छ लगे अति सुच्छ सु देषि लुभाय नही अस को है ॥
चांवल रांधे पिले से पिले अरु गोविंद की उपमां कवि टोहै ।
उज्जलता पुनि अैसी लसैं पट वांध्यो दही जनु भैंसि को सो है ॥४९॥

॥ दोहा ॥

मांपन को सौं पिंड यह, चंद्र विंव है चारु ।
चहूं ओर किरनैं परति, मनहु दूध की धार ॥५०॥

कहूं वक्ता की हर्ष की अधिकाई की उक्ति मैं नून पद गुन हैं।

[सवैया]

अति गाढ़े अलिंगन तें जु उरोज दवे तन लीनें रुमांच-मई ।
हित की सरसानि तें वास नितंव को न्यारो भयो अस नारि नई ॥

परसे जिन गोविंद यों कहती सु भुजा भरि अंक निसंक लई ।
फिरि लीन भई कि विलीन भई किधौं सोइ गई किधौं षोइ गई ।।५१।।

"किधौ कहां गई" यह पद नून है। अति निहचै की उक्ति मैं अधिक पद गुन है।

॥ सवैया ॥

कितनें दु अर्थ गुविंद की सौं मन मैं कोऊ क्यौहू न आनत हैं ।
इहि भांति के दुःसह अर्थ निधृष्ट ह्वै दुष्ट सपुष्ट वषानत हैं ।।
तिन के उर मैं न गडै कि गडै इतनी निठुराई जे ठांनत हैं।
हम यौं जिय मैं नहि जांनत है पुनि यौं निहचें जिय जांनत हैं ।।५२।।

इहां चौथी तुक मैं अधिक पद प्रसिद्ध ही है।

॥ कुलपति-दोहा ॥

तुम जानत दुरि कैं किये, हम सब चित के चाय ।
नहि नहि जानत जानवे, जानत सवै सुभाय ।।५३।।

इहां "नहि नहि जानत जानिवो" याही मैं सिद्धि भयी फिरि "जानत" कहनों निश्चयार्थ अधिक है।

अथ लाटानुप्रास मैं अर्थात रस क्रमित वाच्य ध्वनि मैं विहितानुवाद वीपसा मैं कथित पद गुन है।

अथ लाटानुप्रास

[दोहा]

उदित समैं दिनकर अरुण, अरुण अस्त ही जानि ।
संपति विपति वडेन की, सदा एक-सी वांनि ।।५४।।

अथ अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि

॥ दोहा ॥

सजन सराहत नांहि तौ, गुन गुन कवहु न मांनि ।
परसत भांन विहान कर, कमल कमल जव जानि ॥५५॥

कुलपति

[दोहा]

विना पियारे प्यार विन, रूप रूप नहि कोइ ।
जव पावै पूनूं निसा, चंद चंद तव होइ ॥५६॥

अथ बिहितानुबाद

[दोहा]

इंद्री जीतें विनय ह्वै, विनय भयें गुन होइ ।
गुन तें सब जग हित करै, हित तें धन जिय जोइ ॥५७॥

अथ वीपसा

॥ लाल कौ कवित्त[1] ॥

कोटि कोटि काम रूप वारि वारि डारौं जा पै,
देषि देषि ग्रैसी छवि मोहि मोहि जात नैंन ।
भांति भांति लोगनि सौं ढ़ांपि ढ़ांपि उठै जीजियत,
कांपि कांपि उठै चित्त चांपि चांपि चूरि चैंन ॥

---

1. ग्रलवर-प्रति में इसे "कृष्ण को कवित्त" कहा गया है ।

टेरि टेरि आरती सौं फेरि फेरि जाचति हौं,
हेरि हेरि मेरे प्रांन घेरि घेरि रह्यौ मैं न ।
एक एक राति जाति लाप लाप राति सम,
आव आव प्यारे पीव भाषि भाषि हारे वैन ॥५८॥

क्रोधी की अरु विरही की उक्ति मैं समाप्त पुनरात्त अरु पतत्प्रकर्ष दोष नही ।

॥ कवित्त ॥

संभु कौं धरा पैं धर्‍यौं धुक्यौ काहू पैं,
न पडे कौ घुमंड्यौ घोष क्रुद्ध भौ घनेरौ है ।
ताकौ हौं पठायौ धायौ आयौ भृगुनंद जुद्ध,
उद्धत कैं करौं विरुद्धीन कैं अँधेरौ है ॥
भारी भुज भीमनि मैं कठिन कुठार धरैं,
धारा अग्र अतिथ गरे कौ आज तेरौ है ।
जातैं षंड परसु कहावत जगत मांझ,
गरबीलौ गोविंद गिरीस गुरु मेरौ है ।

इहां चौथी तुक मैं समाप्त पुनरात्त अरु पतत्प्रकर्ष प्रगट ही है । ऐसैं औरहू ठौर जथा संभव जानि लीजे । चमत्कार कौं बढ़ावै तहां गुन है, न बढ़ावै तहां उदासीन है ।

असमर्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक ए नित्य दोष हैं, यातैं इन के वदले की ठौर नही ॥

अथ साक्षात रस दोष (१२)

विभचारी–भाव कौं, रस कौं स्थायी भाव कौं, ३. शब्द, वाच्यता, ४. अनुभाव विभावनि की कष्ट कल्पना, ५. प्रकृतिकूल विभावादिक ग्रहण करनौं, ६. पुनः पुनः दीप्ति, ७. अकांड विषैं प्रथन, ८. रस षंडन, ९. प्रधान अंग कौ विस्मर्ण, १०. अंगी कौ अनुसंधान, ११. अनंग कौ अभिधान, १२. प्रकृति विपर्जय ।[1]

---

1. जोधपुर-प्रति में क्रम ठीक नहीं है किन्तु अलवर-प्रति में ठीक है और १० तक चलता है । वाच्यता पर संख्या १ होनी चाहिए जो १० तक चलनी चाहिएं ।

अथ बिभचारि भाव कौं शब्द-वाच्यता

॥ सवैया ॥

देषें सिवानन लज्जित है करुणा गज-पाल विलोकति कारी ।
व्याल लषें तृसिता है पियूष श्रवै ससि देषत विस्मित भारी ॥
गंग निहारें असूया कपाल की माल तें त्रीना न जाति उचारी ।
ऐसी सिवा की सुद्रष्टि सब विधि गोविंद कौं अति आनँदकारी ॥१॥

इहां लज्जा करुणा त्रासादि वाच्य कीनें ।

अथ रस कौं शब्द-वाच्यता

॥ दोहा ॥

मोहि विलक्षण रस भयौ, लषि यह नारि नवीन ।
ससि मंडल छवि लपत चित, भौ सिंगार मैं लीन ॥२॥

इहां रस अरु श्रृंगार वाच्य कीनें ।

अथ स्थायी भाव कौं शब्द-वाच्यता

॥ दोहा ॥

जुद्ध मध्य उद्धत चलत, दुहुं दिसि सस्त्र प्रवाह ।
श्रवन सुनत नर नाह कें, उर मैं भयौ उछाह ॥३॥

इहां उतसाह वाच्य कीनौ ।

कुलपति

[दोहा]

सरद निसा प्रीतम प्रिया, विहरत अनुपम भांति ।
ज्यौं ज्यौं राति सिरांति है, त्यौं त्यौं रति सरसाति ॥४॥

इहां रति वाच्य कीनौ। इन तीनों दोषन के दूषन में विजना-वृत्ति अरु सुहृदनि कौ हृदय ही प्रमान है।

अथ विभावनि की प्रतीति कष्ट सौं

कुलपति

॥ दोहा ॥

कैसे कैसे जतन सौं, तन मन सर्वसु लाय।
तव ही हियौ सिरायगौ (जव), लपिये भरि चित्त चाय ॥५॥

इन वचन रूप अनुभावनि तें आलंवन नाइका किधौं नायक यह प्रतीति कष्ट सौं होइ।

अथ अनुभावनि कौं कष्ट-कल्पना

॥ सवैया ॥

प्रीति की रीति विसारति है अरु निंदति वुद्धिहू कौं वहुधाई।
रोवै विलापै चलै पिसलै औ परै पुनि ऊठति हैं अकुलाई ॥
असी दसा दुसहा विषमा यौं करै अंग अंग पराभव माई।
कीजै कहा सपि गोविंद की सौं भई सु भई सु कही नहिं जाई ॥६॥

इहां ए अनुभाव करुणा के किधौं वियोग शृंगार के यह प्रतीति कष्ट सौं होइ।

कुलपति

[दोहा]

वरन वरन घन घुमडि कें, उमडि उठे चहु ओर।
सुधि आये सुप पाछिले, सुनि वन वोलत मोर ॥७॥

ए अनुभाव करुणा के किधौं वियोग शृंगार के यह प्रतीति कष्ट सौं होइ। अरु विभाव अनुभावनि के नाम कहिवे मैं तौ दोष नही।

कुलपति

[कवित्त]

दौरि दौरि द्वार आइ इत उत चाहि फिरि,
सोचि कें सँभारि भौंन भीतरि भगति है।
पौरि मांझ ठाढ़ी मग देषि मुरझाइ विन,
देषें विरुझाइ छाती अति उमगति है॥
कछु न सुहाई विन नीर मीन भाय सषी-
हू सौं अनषाय निसि वासर जगति है।
भूली सुधि मोहिनी विसारि दई दौंहिनी सु,
छवि वनीता की कछु और सी लगति है॥८॥

अथ प्रतिकूल विभावादिक गृहण करणौ

॥ कवित्त ॥

धारि सु प्रसन्नताई रस कौं प्रगट करि,
रिस कौं बिसारि यह दुप दरसाति है।
पीके अंग अंग विरहा तप तें तचत सु,
सींचि सुधा वैंन कहा नैंन सतराति है॥
सुप सुपमानि को सदन तन तेरो ताहि,
प्यारे ढिग राषि कहा एतो इतराति है।
गोविंद से मीत सौं न मान करि मानि कह्यौ,
पानी मांही नाव ऐसें आव चली जाति है॥९॥

इहां शृंगार मैं "पांनी मांही नाव ऐसें ही चली जाति है।" यह सांति के उद्दीपन वचन कहनौं अनुचित। कहूं विभचारि भाव कौं शब्द वाच्यता अदोप है।

॥ सवैया ॥

उतकंठित ह्वै कैं सबेग चली रति नायक सायक सौं डरिकैं ।
सुनि आलिनु की वचनालि लख्यौ वर सामुहैं मोद हियें धरिकैं ॥
तन रोम उठे नव संगम मैं हसि लीनि महेस भुजा भरिकैं ।
उह दक्ष-सुता कवि गोविंद कैं नितही हु सहाय कृपा करिकैं ॥१०॥

इहां उत्कंठा आवेग कौं जतावै असौ पद और नही, यातैं शब्द-वाच्यता अदोष । कहूं विरुद्ध संचार्यादिकनि की बाधित्व उक्त गुन है ।

॥ कवित्त ॥

कहां हौ नरेंद्र चंद्र-वंसी कहां एतौ दुष,
पुनि कबहूंक उह मुषहि दिषाय है ।
मैं तौ गुरु लोगनि की सीष सुनी सांति हेत,
वा की तौ रुपाई हू निकाई सरसाय है ॥
गोविंद विवेकी कहा कहि हैं सुनत मोहि
सुपनैं हू दुर्ल्लभ तू सुल्लभ क्यौं पाय है ।
रे मन समझि अब और न उपाय वाहि,
हौं न जानौं कौंन कंठ लाय सुष पाय है ॥११॥

इहां राजा पुरुरवा की उक्ति है । गर्व, दीनता, उत्कंठा, बोध, समृति, लल्जा, मति, विषाद, तर्क इन भावनि की सबलता है, यातैं बाधित्व उक्ति गुन है । असैं और हू ठौर जथा संभव जानि लीजै ।

आश्रय के एकत्व विषैं विरुद्धी जो रस ताहि न्यारो आश्रय करि कैं अरु वर्णन कीजै तौ दोष नही । उदाहरन देस काल के भेद कौ करि आये हैं ।

[सवैया]

एक धरैं कमलासनि पैं कर, एक सुदर्शन चक्र धरै हैं।
एक त्रिपातुर संभु के सीस, समुद्र मथान मैं एक अरैं हैं।[1]
वेद पुरान वषानत है जिहि नाम, लिये मन काम सरै हैं।
श्रैसे गुविंद चतुर्भुज राय सहाय, सदा सब ही की करैं हैं।।१२।।

जो रस निरंतर निरुपण करिवे मैं विरुद्ध होइ ताहि और रस कौं अंतर डारि कैं अरु वनिए तौ दोष नही।

।। कवित्त ।।

सुर तरु फूलनि के उर पैं सुढ़ार हार,
नवल परीनि अंस धरी भुज भाय कैं।
व्यारि हात प्यारीनि के सौंवे रंगे चीरनि सौं,
राजै पुष्प जान मैं कुतूह सरसाय कैं।।
अैसे वीर देषैं मैं न कानि के दिषायैं दूजे,
आपुने सरीर हैं श्रोनित चुचाय कैं।
परे धूरि लपटाय स्यालिनी पलौंटे पाय,
पंपनि सौं करैं वाय गिद्ध आय आय कैं।।१३।।

जद्दपि श्रृंगार कौ अरु वीभत्स कौं विरोध है, परि इहां वीर रस कौ अंतर डारि कैं कहै है, यातैं दोप नही।

विरुद्धी हू रस स्मर्ण किये तैं तुल्यता करि कैं कहियै तौ दोष नही। उदाहरण अंगांगी कौं करि आये हैं।

।। सवैया ।।

जा करि कैं छवि पावत ही रसना सु यहै कर है सुपदानी।[2]
जंघ नितंव उरु कटि नाभि उरोजनि कौं परसै हो गुमानी।।

---

1. अलवर वाली प्रति में इन दोनों पंक्तियों के बाद "इत्यादि" लिख दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अलवर वाली प्रति में लिपिकार कुछ संक्षिप्त होना चाहता है।
2. अलवर वाली प्रति में सवैया की केवल एक ही पंक्ति है।

मोचत ही नित नीवी के बंद, गुविंद कई कहि कैं यौं कहानी ।
भारत भूरीश्रवा भयौ भंग, कट्यौ कर जोवति रोवति रानी ।।१४।।

अरु एक रस अंगी मैं विरुद्धी हू द्वै रस जौ अंग होइ तौ दोष नहीं ।

॥ कवित्त ॥

कुरप अन्यारे पत कृत मृदु अंगुरीनि,
श्रोनित चुचात मानौं जावक धरति हैं ।
असे पाय पाय कुस भूतल पै धाय धाय,
अश्रुपात तातें मुप धोइवौ करति हैं ।।
निज पिय साथ गहैं हाथनि सौं हाथ वन,
इत उत जात दावानल तें डरति हैं ।
पारथ गुविंद कहैं पुनि पुनि मेरे जानि,
रावरी जे शत्रु वधू भांवरी भरति हैं ।।१५।।

इहां राज विषयिनी रति के करुणा अरु शृंगार दोऊ अंग हैं, असैं होइ तौ दोष नही ।

अथ पुनः पुनः दीप्ति

'कुमार काव्य' मैं जैसें रति प्रलाप ।।१६।।

अथ अकांड मैं प्रथन

'विजय मुक्तावली' मैं जैसें भानमती कौ शृंगार जुद्ध के समय वर्नन करिवौ ।।१७।।

अथ रस पंडन असमै के दिषैं

'वीर चरित नाटक' मैं परस राम चंद्रजू कौ समानता मैं जैसें कंकन पुलाइवौ ।।१८।।

अथ प्रधान अंग को विस्मरण

यह 'ग्रीव वंध नाटक' में हयग्रीव को जैसें वर्नन ।।१६।।

अथ अंगी को नही जानिवौ

'रत्नावली' के चौथे अंक में सागरिका को जैसें विस्मर्ण ।।२०।।

अथ अनंग को अभिधान

'करपूर मंजरी' के विषें अपनौं वर्णन छाडि कैं जैसें वंदी वर्नन को प्रसंसा ।।२१।।

ए छहूं दूषन नाटक के काम के हैं ।

अथ प्रकृति विपर्जय

दिव्य अदिव्य दिव्यादिव्य ए तीन प्रकृति । दिव्य रामचंद्रादय । अदिव्य माधवादय । दिव्यादिव्य श्री कृष्णादय ।

रसनि के अनुसार चारि प्रकृति

धीर उद्दात । धीर मृदु । धीरोद्धत । धीर सांत । इनकों वीर, शृंगार, रौद्र, सांति ए रस प्रकृति हैं श्री राम, श्री कृष्ण, भीष्म, युधिष्टिर । इन्हें आदि दै ओरहू जानियैं ।

गुननि के अनुसार तीनि प्रकृति हैं

उत्तम, मध्यम, अधम । उत्तम प्रकृति देवतानि की ।

कुलपति

॥ दोहा ॥

सागर लंघन नभ गमन, सफल मया अरु कोह ।
उत्तम दिव्य सुभाव ए, जहां होय नहि मोह ॥२२॥

ए नर मैं नहि वर्नियै, कहियै नरनि प्रमान ।
अचिरज हांसी सो करति, नर सुभाव ए जानि ॥२३॥

दोऊ दिव्य अदिव्य मैं, उचित हिये मैं जांनि ।
कछूक उत्तम नरनि मैं, देव प्रकृति हू आनि ॥२४॥

देवनि हूं मैं नर प्रकृति, उचित हौंइ ते मांनि ।
ऐसें देवा नर प्रकृति, दोऊ भेद बषानि ॥२५॥[1]

उत्तम नरनि को प्रकृति देवतानि हूं मैं वर्नियै कछूक देवतानि की प्रकृति उत्तम नरनि हूं मैं वर्नियै जो ऊचित होइ ।

कुलपति

[दोहा]

ऐसें ही रस गुन प्रकृति, लषि उलटी जहँ होइ ।
प्रकृति विपर्जय दोष तहां, कहत सकल कवि लोइ ॥२६॥

---

1. अलवर प्रति में केवल दो दोहे हैं, यह तीसरा दोहा नहीं है ।

अथ देस विरोध

सोमनाथ

॥ दोहा ॥

सहित मयूर कदंब जहँ, सघन रसाल करीर।
गावत गुन गोपाल के, धनि सुंदर कसमीर ॥२७॥

यह व्रज कौ सौ वर्नन कसमीर मैं करनौं अनुचित।

अथ समय विरोध

केस[व]

[दोहा]

प्रफुलित नव नीरज रजनि, वासर कुमुद रसाल।
कोकिल सरद मयूर मधु, वरषा मुदित मराल ॥२८॥

इहां समय विरोध प्रसिद्ध ही है।

अथ लोक विरोध

न्याय विरोध।

केसव

[दोहा]

स्थायी वीर सिंगार कैं, करुणा घृणा प्रमान।
नारा अरु मंदोदरी, कहिये सतिनु समान ॥२९॥

इहां वीर में करुणा अरु शृंगार में घृणा ए लोक विरोध हैं। तारा, मंदोदरी ए सती सो न्याय विरोध है। ऐसें और ठौर हू जथा संभव जानि लीजै।

काम कौ नाम

॥ कान्ह कौ कवित्त ॥

आपही तौ नैंननि सौं नैंननि मिलाइ पुनि,[1]
सैंननि वताय हरि लीनौं चित चाय चाय।
अब जो कहत मोहि संक गुरु लोगनि की,
मारत निसंक काम कासौं कहौं जाय जाय॥
एरे निरदई कान्ह कहत सुजान तोसौं,
तेरे विन देखें आंखें रहैं झर लाय लाय।
दूरि जो वसाय तौ परेपौहू न आय अव,
निकट वसाय मीत मिलत न हाय हाय॥३०॥

इहां काम को सताइवौ विगि राख्यौ चहियै।

कुलपति

[कवित्त]

जव तें निहारी प्यारी रूप उजियारी देखें,
चप चक चौंधें देह दामिनी दमक है।
घरी द्वैक भेट भई तव ही तें उर मांझ,
वाही भांति कांम के नगारे की घमक है॥
सांच है कि भ्रमं सोही तूही सुधि देहि वाहि,
पूछि भेद लई जानें नेह की गमक है।
ऊपा को हरन सुप सूपा थोरे मेहनि कौ,
जुगनू की जोति सम मन में चमक है॥३१॥

1. अलवर प्रति में यह प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—
पहलें तो नैंनि सौं नैंननि लगाय................

इहां काम को सताइवौ। विगि राष्यौ चाहियें समय प्रबंधक की तुक।[1]

॥ दंडक छंद ॥

विवस भ्रम भूलि प्रतिबिंब निज बिंबका लषि अनषि मानिनी मांन कीनौं।
काम भय भीत घनस्याम स्यामा विना विकल विलपत्त अतसै अधीनौं ॥३२॥

इहां काम को सताइवौ विगिराष्यौ चहियै।

कुलपति

॥ दोहा ॥

अनुचित तें नहि उचित है, रसहि विगारन हेत।
उचित प्रसिद्ध बनाइयौ, यहै रसनि कौ षेत ॥३३॥

जहां विरसता कों कहैं, तहां होइ ए दोष।
बांधे जहां विरुद्ध कौं, तहां करैं रस पोष ॥३४॥

जस तिय संपति रूप गुन, इनतें भलो न कोइ।
सबै होंइ सुष साज ए, जौ थिर जोवन होइ ॥३५॥

सांतिरस विरुद्ध है तथापि इहां शृंगार कौं पोषै है। असें ही और ठौर उचितता देषि लीजै।

इति श्रीमद्वृंदावन चंद्रबर चरणाविंद मकरंद-पानानंदित अलि रसिक गुविंद कविराज विरचितं श्री रसिक गोविंदानंदघने दूषन उल्लास निरूपणं नाम तृतीय प्रबंधः ॥३॥[2]

---

1. 'समय प्रवन्ध की तुक' से............'कुलपति' तक की सामग्री अलवर-प्रति में नहीं मिलती।
2. अलवर-प्रति में केवल—"इति दूखन तृतीय" लिखा है।

अथ गुणालंकार निरूपणं[2]

वार्त्ता

रस के उत्कर्ष होंइ ते गुणालंकार। इन मैं भेद—रस के गुण तौ संवाय संबंध करि कें रहत हैं जैसें आतमा विषें सूरत्वादि गुन हैं। अलंकार संजोग संबंध करि कें रहत हैं। जैसें सरीर विषें हारादिक हैं।

गुन तीन—माधुर्ज, ओज, प्रसाद।

अथ माधुर्ज लक्षणं

चित्त मैं द्रवीभाव कौं उत्तपत्ति करत जो आह्लादकारी होइ सो माधुर्ज। शृंगार विषें छवि करै है, करुणा, विप्रलंभ, सांति इन मैं उत्तरोत्तर अधिक जानियै।

अथ ओज लक्षण

चित्त की दीप्ति विस्तारित करै सो ओज। वीर, वीभत्स, रौद्र इन मैं उत्तरोत्तर अधिक जानियैं।

अथ प्रसाद लक्षणं

अर्थ कौं सींघ प्रकास करि कैं अरु चित्त कौं प्रसन्न करै सो प्रसाद। इन गुननि के ए[1] वर्ण विजक हैं।

अथ माधुर्ज के वर्ण

ट ठ ड ढ रहित अरु कादि मांन जहां तहां सदीर्घ विंदु हृस्व जिन के वीच मैं ऐसे रेफ अरु नकार। स्वल्प समास कहूं समास भाव।

---

2. अलवर-प्रति में "अथ गुन लिकार" लिखा है।

1. अलवर-प्रति में 'ए' सर्वत्र ही 'ये' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

॥ सवैया ॥

करि कुंज लतानि की गुंजिन मंजु अलीनि के पुंज नचावतु है ।
अंग अंग अलिंगि उतंग अनंग गुविंद की सौं सरसावतु है ।
विकसे नव कंजनि सौं मिलि कैं रज रंजित ह्वै चलि आवतु है ।
यह मंद समीर चहूं दिसि वृंद सुगंधनि के वरसावतु है ॥१॥

विहारी

॥ दोहा ॥

रस सिंगार मंजन कियें, कंजनि भंजन दैंन ।
रंजन अंजन हूं विनां, पंजन गंजन नैंन ॥२॥

अथ ओज के वर्ण

वर्ग के आदि के अक्षरनि कौं तृतीयनि करि कैं दुतिय अरु चतुर्थ इन की समान की जो संवंध, ट वर्ग जुक्त, दीर्घ समास, जहां तहां दुत्त अक्षर ।

॥ कवित्त ॥

भेष भयंकर जंभ जिह्व छुरी धार कढ्यौ,
पंभ तें गुविंद यौं नृसिंह किलकारि कैं ।
दंत कट कटत विकट्ट अट्टहास दाढ़,
दिठ्ठि विज्ज छटा देति दुष्ट गर्व्व गारि कैं ॥
हक्क पक्क इंद्र कैं फनिंद्र हू कैं सक्क पक्क,
धराहू धसक्की दीह धक्क पक्क धारि कैं ।
जुद्ध करि क्रुद्ध ह्वै विरुद्धी दुरवुद्धी कौं,
प्रसिद्ध नप उद्धत सौं डार्‌यौ पेट फारि कैं ॥३॥

अथ प्रसाद के वर्ण

श्रवण मात्र तें वोध होइ संपूर्ण वर्णनि को कारणत्व ।

॥ सवैया ॥

कुच पीन नितंवनि के परसैं मलिनीं दुहुं घां दरसावति हैं ।
तन कौ मधि भाग न बीच लग्यो सु, हरि हा गुविंद सुहावति हैं ॥
भुज डांरी दुहूं सिथलाय जहां विथुरी की रचना सरसावति है ।
सयनी नलिनी दल की तिय की हिय की विरहागि जतावति है ॥४॥

॥ लाल कौ कवित्त ॥

रेसम रसमि समसि सम सिरोरुह,
सुंदरी कैं सघन घटा तैं स्यामताई सरसाति है ।
ता पैं दुहूं ओरनि तें परम सँवारी पाटी,
पिय मन मारिवे की घाटी अहटाति है ॥
गूंथति गुननि कल मोतिनु वनाई मांग,
ता की उपमा कौं मेरी मति ललचाति है ।
तमकि चमकि तम पुंज की चमू कौं चीरि,
मांनौं चारु चंद्रमा की चौकी चली जाति है ॥५॥

इन गुननि की उपकारिनी ए वृत्ति हैं । उपनागरिका, परुषा, कोमला । माधुर्ज के विजक वर्ण जा विषैं, सो उपनागरिका । ओज के विजक वर्ण जा विषैं, सो परुषा । संपूर्ण वर्णनि करि कैं अरु अर्थ कौं शीघ्र प्रकास करैं, सो कोमला । कोऊ इनहीं सौं गौडी, वैदर्भी, पांचाली कहत हैं ।

अथ उपनागरिका

॥ कवित्त ॥

घुघरारी अलक सँवारी अनियारी भौंहैं,
कजरारी आंपैं कजरारी मतवारी मैं ।
धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी,
मालती गुही है वेंनी कारी सटकारी मैं ॥

वारी वैस रूप उजियारी श्री गुविंद कहैं,
वारी सुर नारी नर नारी नाग नारी मैं ।
मिलन विहारी सौं दुलारी सुकुमारी प्यारी,
वैठी चित्रकारी की तिवारी सुपकारी मैं ।।६।।

कविनाथ

[कवित्त]

मदन तुका-सी पुनि राजै कुंदका-सी मानौं,
कंज कलिका-सी कुच जोरी हू विकासी है ।
गांसी भरी हांसी मुष फांसी मोह फासी मद,
जोवन उजासी नेह दिये की सिषा-सी है ।।
जाकी रति दासी रस रासी है रमासी को,
कह तिलोत्तमा-सी रूप-सारनि प्रकासी है ।
काम की कला-सी चपला-सी कविनाथ किधौं,
चंपलतिका-सी चारु चंद्र चंद्रिका-सी है ।।७।।

भाषा भूषन

[दोहा]

नभ कारी भारी घटा, प्यारी वारी वैस ।
पिय परदेस अँदेस यह, आवत नहि संदेस ।।८।।

अथ परुषा

[दोहा]

कोकिल चातक भृंग कुल, केकी कठिन चकोर ।
सोर सुनैं धरक्यो हियो, काम कटत अति जोर ।।९।।

अथ कोमला

केसव

॥ कवित्त ॥

दुरि है क्यौं भूषन वसन दुति जोवन की,
देह ही की जोति होति द्यौस अैसी राति है ।
नाह की सुवास लगें ह्वै है कैसी केसव,
सुभाव ही की वास भौंर भीरि फारें पाति है ॥
देषि तेरी मूरति की सूरति विसूरति हौं,
लालन की द्रष्टि देषिवे कौं ललचाति हैं ।
चलि है क्यौं चंदमुषी कुचनि कौ भार भयें,
कुचनि के भार तें लचकि कटि जाति है ॥१०॥

कोमल विमल मन विमला-सी सषी साथ, कमला ज्यौं लीनें हाथ कमल सनाल के । इत्यादि ॥११॥

भाषा भूषण

[दोहा]

घन वरषत दांमिनी चलत, दिसि दिसि नीर तरंग ।
दंपति हियें हुलास सौं, अति सरसात अनंग ॥१२॥

इति गुन निरूपणं ।

अथ अलंकार निरूपणं

केसव

॥ दोहा ॥

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरण सरस सुवृत्त ।
भूषण विनु न विराज हीं, कविता वनिता मित्त ॥१॥

अथ अलंकार लक्षणं

रस तें विगि तें भिन्न अरु शव्दार्थ कौ भूषित करै, सो अलंकार। सो दु-विधि — सव्दालंकार, अर्थालंकार।

शव्दालंकार (५)

१. वक्रोक्ति, २. अनुप्रास, ३. जमक, ४. श्लेष, ५. चित्र। अलंकार उक्ति भेद तै होत हैं, उक्तनि मैं वक्रोक्ति प्रधान हैं यातै प्रथम वक्रोक्ति कहत हैं।

अथ वक्रोक्ति लक्षणं

और भांति कह्यौ जो वाक्य ताकौं और भांति समुझिये, सो वक्रोक्ति। सो दु-विधि-श्लेष वक्रोक्ति, काक वक्रोक्ति।

अथ श्लेष वक्रोक्ति दु-विधि-सभंग, अभंग।

अथ सभंग श्लेप वक्रोक्ति

।। लाल कौ कवित्त ।।

वातनि विलोकौ कत पवन विलोकियत,
पीतम निहारौ तुम पीवौ अंधकार कौं।
आये नंदलाल हम गाहक वजाजी के न,
देषौ वनमाली तौ लै आवौ गुहि हार कौं।।
वोलै वलवीर तौ विदारौ कंस के सी जाइ,
अैंठी कित जाति कियें ठीक किहि वार कौं।
अैसें वहु भांति वतराय सतराय ठगी,
दूतिका न पावैं जाकी वातनि के पार कौं।।८।।

अथ अभंग श्लेष वक्रोक्ति

घनस्याम

॥ कवित्त ॥

पोलौ जू किवार तुम को हौ इहि वार हरि,
नाम है हमारो वसौ काननि पहार मैं ।
माधव हौं भाभिनी तौ को किला के माथें भाग,
भोगी हौं छवीली जाय पैठौ जू पतार मैं ।
नायक हौं नागरी तौ लादौ किन दाडीं जाय,
हौं तौ घनस्यांम जाइ वरसौ जू हार मैं ।
हौ तौ वनवारी जाइ सींचौ किन वाग वारी,
मोहन हौं प्यारी फुरौ मंत्र के विचार मैं ॥३॥

अलंकार माला

॥ सोरठा ॥

मही दीजियै दांन, सु तौ मही दै हैं नृपति ।
वंन सुनौ अब कांन, जाइ वजावहु रास मैं ॥४॥

अथ काक वक्रोक्ति

॥ लाल कौ सवैया ॥

ऊग्यौ जु भान तौ ऊगन दै, अरविंदनि मैं अलिहू सचुपै हैं ।
कुंज गुलावनि के चटकें, चकई चकवा मन मोदन मै हैं ॥
नेहु भलें मुप वासर के, रजनी सुप तें सजनी अधिकै हैं ।
ए व्रजचंद सवै व्रज के हित, आजु गये फिरि काल्हि न ऐहैं ॥५॥

विहारी

[दोहा]

कितौ न गोकुल कुलवधू, काहि न किहि सिष दीन्ह ।
कौंनें तजी न कुल गली, ह्वै मुरली मुरलीन ।।६।।

तुलसीदास जू

[दोहा]

काहि न पावक जारि सक, कान समुद्र समाहि ।
कान करै अवला प्रवल, किहि जग काल न षाइ ।।७।।

अथ अनुप्रास

वर्ननि की समता, सौं अनुप्रास । सो दु-विधि—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास ।

अथ छेकानुप्रास

अनेक वर्णं की समता असंनिधि जामैं, सो छेकानुप्रास । सो दु-विधि—सुर की समता अरु स्वर की विषमता ।

अथ स्वर की समता

।। कृष्ण कौ कवित्त ।।

गौनें आई दुलहनि लौंनें तनवारी या तें,
जगर मगर होत भवन की भाग है ।
विधि नें सुधारि धरी चातुरी की ओप रूप,
आगें रूप रति की रती कहू न लाग है ।।

मेरे जानि मुह दिपरावनी कौ नेग जानि,
आपु ही तें सौंपि दीनौं कीनौं अनुराग है ।
सास हू सदन दीन्ह प्यारेलाल मन दीन्ह,
औरै प्रीति-पन दीन्ह सौतिन सुहाग है ।।८।।

कुलपति

[कवित्त]

मोंहिनी-सी गोहन फिरति रति-सी है कौंन,
मौंन गहि रही मुष बातंनि कछूक है ।
जलज-से नैंन वैंन कैसी छवि गोरी भोरी,
किधौं ह्वै है अंसो मानौं अमृत के ऊक[ओक]है ।।
बरनी न जाइ रूप-रासि प्रेम की सी फांसि,
जाके गुन गनिवे कौं गिरा भई मूक है ।
अकल विकल तन वेगि दरसाय मोहि,
प्रान परसायन तौ तेरी वडी चूक है ।।९।।

अथ सुर की विषमता

।। कवित्त ।।

नूतन लसनि वनी अंगनि की नीकी वाकी,
छकी वंक भौंहैं दिना द्वै कही तें दरसी ।
सरनि समान चितवनि लोंनी ललनां के,
नैंननि की अनी आनि काननि लौं परसी ।।
उठनि उरोजनि नितंवनि मैं पीनताई,
सहज सुगंध वृंद गंधित अतर-सी ।
अरविंद इंदिरा तें चंद्रिका तें चंद्रहू तें,
श्री गुविंद सुंदरी की सुंदरता सरसी ।।१०।।

अथ वृत्यानुप्रास

एक वर्ण की अथवा अनेक वर्ण की संमती संनिधि होइ जामैं, सो वृत्यानुप्रास ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

चंद-सो आनन चाह सौं चूमैं, चलै चष चारुनि चौंप चपाई ।
हार हिये बघना कठुला पहुची, पहरी सु महा छवि छाई ॥
तोरि तिलूका दिठौंना बनाय कैं, प्यार सौं वारति लौन रु राई ।
गोद सौं गोद हसैं भरि मोद विनोद सौं देषि री लाल कन्हाई ॥११॥

॥ काहू कौ कवित्त[1] ॥

चेतन मैं वसि कें निकेतनि जरावै वाय,
के तन की रीति मीन के तनकहात की ।
सून केसरनि सौं असून असरन करैं,
पून वितरन कौं अनाथ अवलात की ॥
रितु अनुकूली के वियोग जर धूली ह्वै है,
भूली सुधि शूली के विजैत्री नैंन पात की ।
को करै प्रतीति वात और की अनंग पीर,
तात की न जानी रे वधू के वध पात की ॥१२॥

देव

[कवित्त]

ष्याल ही की पोल मैं अपिल ष्याल पेलि पेलि,
गाफिल ह्वै भूल्यौ दुष दोष की पुस्याली तैं ।
लाप लाप भांति अभिलाप लषे पोटे अरु,
अलप लष्यौ न लपी लालनि की लाली तैं ॥
पुलकि पुलकि देव प्रभु सौं न पाली प्रीति,
दै दै कर ताली न रिझायौ वनमाली तैं ।

1. अलवर-प्रति में नहीं मिलता ।

झूठी भलमल की भलक ही मैं झूल्यौ जल,
मल की पपाल पल पाली षाल पाली तैं ॥१३॥

बिहारी[1]

रस सिंगार मंजन कियें कंजनि भंजन दैंन । इत्यादि ।

[दोहा]

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आये वन-मालीन ॥१४॥

जम करि मुह तरि परचौ, यह धरि हरि चित लाइ ।
विषै तृपा परि हरि अजौं, नरहरि के गुन गाइ ॥१५॥

॥ सवैया ॥

कोमल है कल है कमला ज्यौं, कियैं कर कंज मैं कंज कली कौं ।
भाषै को भायनि भूरि भरी कौं सु, भूषन भेद कौं भांति भली कौं ॥
छाक छकी छवि सौं छलकैं छलै, छैल छवीले गुविंद छली कौं ।
आवति है अलवेली अली लै, अलीनि कौं और चली अवली कौं ॥१६॥

॥ कवित्त ॥

अतर अन्हाय अंग अंग आछे आभूषन,
अंवर अमल आभा है अनेक इंदु-सी ।
आस पास अली अलि अवली है श्री गुविंद,
अंगना अनंग की तें अधिक अमंद-सी ॥१७॥[2]
इत्यादि

---

1. अलवर वाली प्रति में 'रस सिंगार मंजन कियें' के बाद ही इत्यादि लिखा है और आगे के दोनों दोहे भी नहीं हैं—
नभ लाली""""तथा जमकरि""""।
वहां तो रससिंगार के उपरान्त अगला सवैया ही लिखा मिलता है ।
2. अलवर-प्रति में इस कवित्त का केवल एक ही चरण है।

अरु तीन वृत्ति अनुप्रास ही तें होति हैं सो गुन-निरूपण में कहि आये ।

अथ लाटानुप्रास

भाव भेद तें शब्दार्थ फिरि आवै, सो लाटानुप्रास ।

कुलपति

॥ कवित्त ॥

वोलत मधुर होन सुजस मधुर यह,
नीको जानि नीको मन मोद ही सौं भरियै ।
करियै तो डरियै न करियै तो डरियै जू,
सब ही भलाई जो भलाई उर ढरियै ॥
जैसें सीत भान भान प्रभा प्रभा प्रभाकर,
त्यों ही जांन जांन पन्यों फल यहै जिय धरियै ।
कीजै नित नेह नंद नंदनि के पायनि सौं,
पायनि सौं तीरथ के पंथ अनुसरियैं ॥१८॥

मुकंद

॥ दोहा ॥

जिन सौं मित मिले नही, तिन्है वजार उजारि ।
जिन सौं मित मिले नही, तिन्हैं वजार उजारि ॥१९॥

सोमनाथ

[दोहा]

रन मैं जे हारत नही, पैंने जिनके वांन ।
रन मैं जे हारत नही, पैंने जिन के वांन ॥२०॥

माषा भूषण

[दोहा]

पिया निकट जाकें नही, घाम चांदिनी ताहि ।
पिया निकट जाकें नही, घांम चांदिनी ताहि ।।२१।।

अथ जमक

शब्द को फिरि श्रवण अरु अर्थ दूसरी होइ, सो जमक ।

मा०

सीतल चंदन चंदनहि वडवानल ही जोइ ।।२२।।

।। कवित्त ।।

संष सपी तेरैं वादरी मैं वादरी मैं काल्हि,
कोही पिक बनी वैंनी कारी ही ।
मुष चंद्रमानिनी को चंद्रमाननी को अैसो,
कहत गुविंद चंद्रमानि तें उज्यारी ही ।।
कोटि उरवसी वारौं और उरवसी नाहि,
उही उरवसी उरवसी उरधारी ही ।
विन कजरारी कजरारी आंषें वेसरि ही,
वेसरि सँवारी ही सुवेसरि सवारि ही ।।२३।।

भूषण

[कवित्त]

जेते मन नानि कहैं तेते मन मानि कहैं,
धरा मैं धरायें धरा धूरि ही मिलाइवी ।

देह देह देह फेरि पाइ है न ग्रैसी देह,
कौंन जानै कौंन देह कौंनि जौं न जायवी ॥
भूप एक रापि भूष रापै जिन भूपन की,
भूषन की भूषन तें भूषन विलाइवी ।
गगन के जम गन गनन न देहैं यातैं,
नगन चलैंगे साथ नगन चलाइवी ॥२४॥

केसव

[कवित्त]

हरित हरित हार हेरत हियौ हरत,
हारी हौं हरिन नैंनी हरिन कहूं लहौं ।
वनमाली ब्रज पर वरषत वनमाली,
दूरि दुष केसव कैसें सहौं ॥(?)
ग्राप घन घनें स्याम घन ही से होत घन,
सामन के द्यौस घनस्याम बिन क्यौं रहौं ।
हृदे मैं कमल नैंन देषि कैं कमल नैंन,
हौंहुगी कमल नैंन ग्रौरहूं कहा कहौं ॥२५॥

[दोहा]

श्री कंठ उर वासुकि लसत, सर्व मंगलामार ।
श्री कंठ उर वासुकी लसत, सर्व मंगलामार ॥२६॥[1]

॥ सवैया ॥

दूपन दूपन के जस भूपन भूषन अंगनि केसव सोहैं ।
ज्ञान सँपूरन पूरन के परिपूरन भावनि पूरन जोहैं ॥
श्री परमानंद की परमा परमानंद कीं परमा कहि कोहै ।
पातुर-सी तुरसी जिन कैं अव दातुर-सी तुरसी पति मोहै ॥२७॥

1. ग्रलवर-प्रति में यह दोहा इस स्थान पर नहीं है—'सवैया' के वाद है ।

विहारी

[दोहा]

केसरि केसरि करि सकैं, चंपक कितिक अनूप ।
गात रूप लषि जात दुरि, जात रूप कौ रूप ।।२८।।

आज सरवरी सरवरी, सरव सरव सरचंद ।
मांनि अधमरे अधमरे, मतिरं मतिर मतिमंद ।।२९।।

।। लाल कौ कवित्त ।।

मेह बरसानें तेरे नेह बरषानें देषि,
एह बरसानें वर मुरली बजावेंगे ।[1]
साजि लाल सारी लाल करै लाल सारी देषिवे,
कीं लाल सारी लाल देषैं सुष पावेंगे ।।
तूही उरवसी उरवसी नहि आन तिय,
कोटि उरवसी तजि तो सौं चित्त लावेंगे ।
सेज वनवारी वनवारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी वनवारी आज आवेंगे ।।३०।।

अथ श्लेष

एक शब्द मैं अनेक अर्थ होंइ, सो शब्द श्लेष ।

मुकंद

स्यांमा सेवत मधु सहित, ताकी ताप नसाइ ।[2]

1. अलवर प्रति में 'इत्यादि' ही लिख दिया गया है ।
2. अलवर-प्रति में 'ताकी ताप नसाइ' के स्थान पर 'ताके नसैं विकार' लिखा गया है ।

॥ सवैया ॥

वतियां मन मोहनी मोहै गुविंद भली विधि नेह नवीन सनी ।
अवनी की सवै अँगना मै यहै उजियारी जगामग जोति घनी ॥
वर अंवर मैं सु प्रकासित है सुषमा कवि कौंन पैं जाति भनी ।
कमनी नव वाल वनी सजनी किधौं दीप की माल रसाल वनी ॥३१॥

केसव

[सवैया]

नोग लगे सगरे अपमारग वात भली बुरी जानि न जाई ।
चंचल हस्तिनि कौं सुपदा अचला चित पद्मनि कौं दुषदाई ॥
हंस कला निधि सूर प्रभा हरपंड सिषंडिनु की अधिकाई ।
केसव पावस मास किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई ॥३२॥

॥ कवित्त ॥

केसीदास है उदास कर कमला कर सौं,
सोपक प्रदोप ताप तमोगुन तारिये ।
अमृत असेप के विसेप भाव वरसत,
कोकनद मोद चंड षंड न विचारिये ॥
परम पुरुप पद विमुप पुरुप परुप,
सुमुप सुपद विदुप न उर धारियै ।
हरि हैरि हिय मैं न हरन हरिन नैंनी,
चंद्र-मुपी चंद्रमा न नारद निहारियै ॥३३॥

विहारी

[दोहा]

नांक वास वेसरि लह्यौ, वसि मुकतनि के संग ।
अजौं तरौ नांहीं रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग ॥३४॥

अथ चित्र

पद्मादिक आकार करि कैं अरु वर्णनि कौं लिषियै, सो चित्र ।

केसव

॥ दोहा ॥

केसव चित्र समुद्र मैं, बूडत परम विचित्र ।
ताके बूंदक केक नहि, वरनत हौं सुनि मित्र ॥३५॥

अध ऊरध विन बिंदु जुत, तजि रस हीन अपार ।
वधिर अंध गन अगन के, गनियत अगन विचार ॥३६॥

केसव चित्र कवित्त मैं, इतने दोष न देषि ।
अक्षर मोटे पातरे, ववजय एकहि लेषि ॥३७॥

अति रति मति गति एक करि, वहु विवेक जुत चित्त ।
ज्यौं न होइ क्रम-हीन त्यौं, वनहु चित्र कवित्त ॥

उदाहरन

॥ दोहा ॥

अंग अंग अंग राग जुग, जगमग जगमग जाग ।
रंग रंग रंग राग संग, पग पग द्रग द्रग लाग ॥३८॥

तन तन मन मन प्रान पन, घन घन घन सनमान ।
छिन छिन गुन गन गान वन, वन वन वन तन आन ॥३९॥

ए दोऊ दोहा कमलवंध, कपाटवंध, हारवंध, अश्वगति, सर्प गति, गोमूत्रिका त्रिपदी आदि औरहू अनेक प्रकार लिपियत हैं ।[1]

---

1. अलवर प्रति में 'अथ सवैया लिखकर 'मधि नाना छंद' दिया गया है और श्री राधा-कृष्णायनमः लिखकर वह सवैया लिखा गया है जो जोधपुर-प्रति में पत्र सं ३८७ का प्रथम छंद है ।

केसव

।। दोहा ।।

रामदेव नरदेव गति, परसु धरन मद धारि ।
वामदेव गुरुदेव गति, परकु धरन हद धारि ।।४०।।

यह दोहा कपाट बंध, अश्वगति, सर्पगति, त्रिविधि त्रिपदी लिपियै है ।*

।। धनुसबंध-दोहा ।।

परम धरम हरि हेरि ही, केसव सुनौं पुरान ।
मन मन जानै नारदै, जिय जस सुनें न आंन ।।१।।

केसव

।। कल्पवृक्ष-सवैया ।।

मुप रांम रपैं मन काम सरैं, अति हानि हियैं सब आन कहैं ।
सुप काम अरैं तन लाज मरैं, मति जानि लियैं तब प्रांन दहैं ।।
दुप वाम बरैं गन साज करैं, रति बानि किये जब सान गहैं ।
रुप धाम धरैं धन राज हरैं, गति मानि बियै कब मान रहै ।।१।।

केसव

।। चक्रबंध दोहा ।।

मुरलीधर मुप दरसि मुप, संमुप मुप श्री राम ।
सुनि सारस नैंनि सिपै, जी सुप पूजै काम ।।१।।

---

* सम्बन्धित चित्र यहां नहीं दिये गये हैं । सम्भव हुवा तो परिशिष्ट में दिये जा सकेंगे ।

केसव

।। सर्वतोभद्र ।।

रामदेव चित्त चाहि । धाम सेव नित ताहि ।
कामदेव मित्त दाहि । काम भेव वित्त पाहि ।।१।।

।। डमरू वंध तथा चौकी वंध ।।

नर सरव श्री सदा तन मन सरस सुरवस करन ।
नरक सव रस सकल सुष दुष ही न जीवन मरन ।।
नर मन वजी नही निरदय सदय मति मन हरन ।
नरहत मति मय जगत किसवदास श्रीवर सरन ।।१।।

चरण गुप्त

।। दोहा ।।

राजत अंग रस विरस अति, सरस सरस रति भेव ।
पग पग प्रति दुति वढ़ति गति, वयन नयन मति देव ।।१।।
सुवरन वरन सु सुवरननि, रचित रुचिर रुचि लीन ।
तन मन प्रगट नवीन गति, नव रंग राय प्रवीन ।।२।।

इति केसवोक्ति ।

कामधेनु

सीता सी न न सीता सी, ता रमा र रमा रता ।
सीमा कली लीक मासी, नर लीन नर्ला रन ।।

इति केसव ।

।। गतागत ।।

राका राज जरा का रा मा समास समास ।
राधा मीत तमी धारा सी लसी सु सुसील सी ।।१।।

।। पर्वत बंध सवैया ।।

या मय रागे सुतौ हितु चोर टी काम मनोहर है अभया ।
मीत अमीतिनो कौं डुप देत दयाल कहावत हीं न दया ।।
सत्य कहौ कहा झूठ मैं पावत देषौ वेई जिनि रेपी कया ।
या मयगे तुम मीत सवै सु सुवेस तमी मतु गेय मया ।।१।।

केसव

।। अथ गतागत सवैया ।।

मास मासोह सजैं वन वीन, नवीन बजै सह सोम समा ।
मार लतानि बनावति सार, रसाति वनावनि ताल रमा ।।
मान वही रहि मोरद मोद, दमोदर मोहि रही वनमा ।
माल वनी वलि केसवदास, सदा वस केलि वनी वलमा ।।

[सवैया]

वीन वजावति रास मैं वाल रसाल है शुद्ध सुधामृत वानी ।
गावति तान तरंग विलास पुस्याल हैं प्रेम पगी सुप सानी ।।
भौंह नचाय नचाय कैं मान अनूप है गोविंद के मद मानी ।
अंग उमंग सुवंग सुजान सुरूप है तो सी तुही ठकुरानी ।।

न.टि. अलवर-प्रति में क्रम कुछ अलग है और ये पृष्ठ अलग दिए जा सकते हैं, परन्तु वस्तुत: सामग्री समान है, क्रम में अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

अलप तरंग

।। अथ मात्रा रहित कवित्त ।।

कलन परत पल जलज तलप पर,
मलय पवन वस उठत अनल झल ।
कदन करत सर सरस मदन वर,
हृदय हलत भय सम चल दल दल ।।
प्रवल तपन तन मन हर हर रट,
जपत रहत इक रस न लगत पल ।
ललन वदन दरसन रत उमडत,
अलप तरंग सर भरत नयन जल ।।५३।।

केसव

[कवित्त]

जग जगमगत भगत जन रस वस,
भव भय हर कर करत अचर चर ।
कनक वसन तन असन अनल वल,
वट दल वसन असन जल थल कर ।।
अजर अमर अज वरद चरन धर,
परम धरम गज चरन सरन पर ।
अमल कमल वर वदन सदन जस,
हरन मदन मद मदन कदन हर ।।५४।।

।। एकाक्षर दोहा ।।

केकी कूका कोक कीं, का कीं कूकै कोक ।
कोक कूकी कोकी कुकी, कूकें केकी कोक ।।५५।।

॥ निरोष्ट कवित्त ॥

लोक लोक लोक लाज लीलत से नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं ।
सौंहनि कौं सोच न संकोच काहू लोक हू कौं,
देत सुष सषी ताहि दूनौं दुष देत हैं ॥
केसोराय कान्हर कनेर हीं की कौर कसे,
अंग रंगे राते रंग अंत अति सेत हैं ।
देषि देषि हरि की हरनता हरिन नैंनी,
देषौं नांहीं देषत ही हियौ हरि लेत हैं ॥५६॥

अथ पुनरुक्त वेदाभास

मुकंदजू

[दोहा]

भासै पद पुनरुक्त परि, नहि पुनरुक्त विचार ।
मदन काम मन मथ सषी, करत पंच सर मार ॥५७॥

इति शब्दालंकार ।

अथ अर्थालंकार

उपमान अरु उपमेय ए अलंकार के प्रांन हैं, यातें प्रथम इनहीं कौं कहत हैं ।

अलवर वाली प्रति का लेखन प्रकार—

समाज आज है।भली।मृदंग बीन।बाज ही।अमंद। शुद्ध चंद ।चारु।चांदिनी।छई।छई।
नवीन साज है।अनी।महा प्रवीन।साज ही।प्रबंध। बाजुबंद ।हारु।किंकनी।ठई।ठई ॥
सुधंगना सभैं। कई ।सुतान मांन। पेषियै ।गुमान।मान छंद।अंग ।माधुरी।मई। मई।
विलास रास मैं। सही ।प्रकासमान। देषियै ।सुजान।श्री गुविंद।संग ।सुंदरी ।नई। नई।।

अथ उपमा

उपमेय कौं जहां साधारण धर्म करिकैं अरु उपमान की साद्रस्य कीजै, सो उपमा। जाकी साद्रस्यता दीजै, सो उपमान। जाकौं साद्रस्यता दीजै सो, उपमेय। दोऊ और की साद्रस्यता दिषावै, सो वाचक। दोऊन की लक्षमी की जो समानता, सो साधारन धरम। ये चार्यौं जहां हौंइ सो पूर्णोपमा। इनमैं तें एक विना द्वै विना तीन विना होइ, सो लुप्तोपमा।

अथ पूर्णोपमा

भाषाभूषण

[दोहा]

इहि विधि सब समता मिलै, उपमा सोही जानि।
ससि सौं उज्जल तिय वदन, पल्लव से मृदु पानि ॥५८॥

अलंकारमाला

[दोहा]

उपमाँ जहँ इक-सी प्रभा, द्व पदारथ की होइ।
प्रभु तव कीरति गंग-सी, विहरति त्रिपुरनि सोइ ॥५९॥

सोमनाथ

[दोहा]

चाहत सुष संपति सदा, तौ नित प्रति चित लाइ।
ललित नवल नीरज सद्रस, रघुवर चरन मनाइ ॥६०॥

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

मुष ससि सी उज्जल चपल, षंजन-से हैं नैंन ।
सुवरण सी तिय तन लसै, मधुर सुधा से बैंन ॥६१।

॥ कवित्त ॥

मद गजराज कै सी चाल चलै मंद मंद,
पद अरविंद से सुछंद सुक(कु)मार हैं ।
केहरि की कटि अैसी पीन कटि पीन कुच,
हेम कुंभ से हैं कंठ कंबु सौ सुढ़ार हैं ॥
धनुष-सी बांकी भौंह बनी हैं षुविंद द्रग,
मृग कैसे चल मुष चंद अैसो चारु है ।
चतुर विहारी एक प्यारी मैं निहारी जाकैं,
अंगनि की सुषमां की उपमा अपार है ॥६२॥

अथ लुप्तोपमा । धर्म लुप्ता ।

सोमनाथ

॥ दोहा ॥

विहरैं षगी उछाह मैं, निज पंछीनिकी छांह ।
धरैं सषी की ग्रीव मैं, हेमलता-सी बांह ॥६३॥

कुलपति

॥ सवैया ॥

ध्यान धरौं मन ही मन मैं रुचि सौं, मृदु मूरति कौं अवरेष्यौ ।
व्याकुल ह्वै चहु ओर तकौ उझको, विझको यह कौन सी लेषौ ॥

मौंहन जू बिन देपैं तिहारैं उतैं, उर आनैं वे प्रेम परेषौ ।
ताप तचावत बादि हियौ चलि क्यौं न, पिया ससि सौं मुष देषौ ।।६४।।

अलंकार करणाभरण

॥ दोहा ॥

पिक बानी-सी लसति है, तो मुष की बतरानि ।
तो गति गजगति-सी अहे, पिय मन कौं सुषदानि ।।६५।।

अथ वाचक लुप्ता

सोमनाथ

॥ दोहा ॥

चंद्र बदन की जौंन्ह सौं, छवि की उठति तरंग ।
निरषत ही हरि बस भये, विद्रुम अधर सुरंग ।।६६।।

अलंकार करणाभरण

॥ दोहा ॥

मुष ससि निर्मल लाल कौं, मेरे नैन चकोर ।
भरे परे री चाह सौं, लगे रहैं उहि ओर ।।६७।।

अथ उपमान लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

रची विरंचि विचारि कैं, सुनिये श्री घनस्याम ।
राधा-सी सुंदर सुघर, और न ब्रज मैं बाम ।।६८।।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

कोइल-सी वांनी मधुर, तो मुष सौं सुनि वाल ।
होइ रहे मो हित अहे, अलि नंद नंद रसाल ।।६९।।

अथ उपमेय लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

फंलि रही रति कुंज मैं, चहु दिसि कला तरंग ।
फिरति चंचला-सी चपल, मन मौंहन के संग ।।७०।।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

रति सम सुंदर जाति है, चली डुलावति वांह ।
तन जोवन दुति जगमगै, निरषति छिन छिन छांह ।।७१।।[1]

अथ वाचक धर्म लुप्ता

सोमनाथ

[दोहा]

अतन ताप तन क्यौं तचति, अजहूं सिप उर आंनि ।
चलि व्रजचंद सुजान की, निरपि जौंह्न मुसकानि ।।७२।।

---

1. मनवग-प्रति में अलंकार करणाभरण से पहले तथा सोमनाथ से वाद में उदाहरण दिए गये हैं। जोधपुर-प्रति में यह क्रम उलटा है—पहले सोमनाथ से उदाहरण तदुपरान्त अलंकार करणाभरण से ।

अलंकार करणाभरण

[दोहा]

कमल वदन नंदलाल कौ, अलि अलि मेरे नैंन ।
अनुरागे लागे रहैं, सदा रूप रस लैंन ।।७३।।

अथ वाचक उपमान लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

पट दावें पाटी गहैं, सोवति तिय पिय संग ।
मृग विसाल नैंननि लषै, रहै समेटै अंग ।।७४।।

अथ धर्म उपमान लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

चौंचहाट चटकनि कियौ, चौंकि चले हरि जागि ।
मृग से द्रगनि निहारि कैं, वाल रही गल लागि ।।७५।।

।। सोरठा ।।

कहियौ ऊधौ निडर ह्वै, करुणा हियैं समोइ ।
ब्रज वनितनि के सांवरे, तुम सम और न कोइ ।।७६।।

अथ धर्म उपमेय लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

मुरली सुंदर स्यांम की, वजी सरस रस भोइ ।
ताकी धुनि श्रवननि सुनत, रही मृगी-सी होइ ।।७७।।

॥ सोरठा ॥

घूंघट को पट टारि कें, चितई नेह निवाहि ।
मगन भयो मन मुदित उह, सरद चंद सम चाहि ॥७८॥

अथ उपमान उपमेय लुप्ता (अ.क.)

[दोहा]

आये झूमत झुकत से, चित्रित वनें विसाल ।
मतवारे से रहन कौं, चहियत ठौर रसाल ॥७९॥

अथ बाचक धर्म उपमान लुप्ता (अ. क.)

[दोहा]

रही मौंन ह्वै कें कहा, वैठी भौह चढाइ ।
श्रवननि कौं सुप दै प्रिया, कोइल बचन सुनाइ ॥८०॥

सोम०[नाथ]

[दोहा]

विलसति साथ सपीनि के, पिक-वैंनी हि निहारि ।
निपट चकित चित्त ह्वै रहे, मौंहन सुमति विसारि ॥८१॥

कुलपति

॥ कवित्त ॥

तेरी सुनि वानी मौंन गहति भवानी देषें,
नैंननि कौ पानी रति रानीं वारि नापियें ।

भौंहनि विलास मंद हास अंग के सुवास,
रूप के उजास मुष नीको देव साषियै ।।
प्राननि के आंन अवली जै न निदान प्यारी,
नैंक मुसकाय प्रेम पागे वेंन भाषियै ।
सोभा सुष दैंनी पाय धारि गज गैंनी इत,
देषि मृग-नैंनी मोत लाय उर राषिये ।।८२।।

सर्व लुप्तोपमा

।। कवित्त ।।

चंद सौ वदन हास चंद्रिका प्रकास है,
सुछंद अरविंद-सी सुगंध अभिरामिनी ।
कल कमला-सी कोक काव्यनि की कारिका-सी,
हेम तनतासी कोऊ काम की न कामनी ।।
रसिक गुविंद स्यांम सुंदर सुजान कान्ह,
देषियै तिहारी आन देह धरैं दामिनी ।
मनहरि-लैंनी सुष-दैंनी रस-वरसैंनी,
प्यारी पिक-वैंनी मृग-नैंनी गज-गामिनी ।।८३।।[1]

अथ मालोपमा

कुलपति

[दोहा]

कहै एक उपमेय कौ, वहुत भांति उपमान ।
सो द्वै-विधि मालोपमा, धरम भेदि तैं जानि ।।

---

1. गनवर प्रति में सर्वलुप्तोपमा का उदाहरण यह कवित्त नहीं मिलता ।

॥ सवैया ॥

सोच तें रूप कुमंत्र तें भूपति साह विताय गयें घर दाम ज्यौं ।
नेह घटें जिमि जोति दिया ससि की दुति देषत ही रवि धाम ज्यौं ॥
लोभ तें धर्म वडाई अनीति तें जैसें सनेह विदेस विराम ज्यौं ।
नेंक वियोग ही तें मुष प्यारो कौ छीन ह्वै जात है सांझ के घाम ज्यौं ॥८४॥

'इहां छीन ह्वै जात है' यह साधारन धरम कहि कह्यौ ।

अथ द्वितीय भेद

कुलपति

॥ कवित्त ॥

सरद की जौंन्ह सम सीतल करति नैंन,
वांसुरी की धुनि सम चित्त कौं हरति है ।
कमला ज्यौं पूरति मनोरथनि नीकें रितु,
पावस ज्यौं वसुधा कौं रसीली करति है ॥
दामिनी-सी घनस्यांम तन मैं लसति सुधा,
मूरति ज्यौं नष सिष माधुरी धरति है ।
फूलि रितुराज कै सी वेली अभिराम वांम,
देषौ जाय स्यांम देषिवे की जौ पै रति है ॥८५॥

इहां न्यारे न्यारे साधारन धरम कहे ।

अथ रसनोपमा

उत्तरोत्तर उपमेय कौं उपमांन अरु उपमान कौं उपमेय कीजे, सो रसनोपमा ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

मोहन के अभिलाष-सी वैस औ वैस समान सुरूप गन्यौं हैं ।
रूप समान लुनाई विराजै लुनाई समान सुजान पन्यौं हैं ॥
जैसी सुजानता तैसौ विचारि कैं कान्ह कुमार सौं नेह सन्यौ हैं ।
नेह समान लहे सुष साज सु राधे कौ जीवन धन्य गन्यौं हैं ॥८६॥

इहां उत्तरोत्तर उपमेय कौं उपमान कियौ ।[1]

अथ एक देस वर्त्तिनी उपमा

मुख्य उपमांन अरु अंग ए कछु सब्द तें कछु अर्थ तें जहां पाइयें, सो एक देस वर्त्तिनी उपमा ।

कुलपति

॥ सवैया ॥

भट सेवत भूप भयंकर रूप वनैं तिन ग्राह समान चहै ।
कवि कुंज तहां रतनावलि-सी निसि वासर पास लगे ही रहैं ॥

---

1. अलवर-प्रति में इस स्पष्टीकरण के उपरान्त 'काहू को कवित्त' और है—

कैसोरी सुधासर में फूल्यो है कमल नील,
तैसो पंक वदन मयंक ही को हेरो है ।
कैसो पंक वदन मयंक ही को हेरो आली,
जैसो अलि कवल में गहत बसेरो है ॥
कैसो नलि- कमल में गहत वसेरो आली,
जैसो मैंन मुकर में मोर छाक रेरो है ।
कैसो मैंन मुकुर में मोर छाक रेरो आली,
जैसो री कपोल पै अमोल तिल तेरो है ।
इहां उत्तरोत्तर उपमान कौं उपमेय किये ।

विष के हथियार लपैं अरि भार गहैं कर वार न भाज तहैं ।
कवितामृत को जस चंदहू को जग कारन राम नरेंद्र कहैं ॥८८॥

इहां राजा सौं अरु समुद्र सौं उपमान अर्थ तें पाइयत है अरु अंगनि की उपमा सब्द तें पाइयत है तातें एक देस मैं विसेष कहत हैं, यातें एक देस वर्त्तिनि कहावै ।

पुनः

॥ कवित्त ॥

भामिनीनि की है दुति दामिनी ज्यौं श्री गुविंद,
घन जैसें घनस्यांम सुंदर सुजान की ।
चारु पिचकारिनु की धारनि के धारा धर,
धुरवा की धूकनि धुकार डफ मांन की ॥
अविर गुलालनि की सघन घटा री भारी,
चोआ की चहलगारी कूक मुरवांनि की ।
पेलैं मन मोंहन सौं होरी रंग वोरी आज,
गोरी भोरी नवल किसोरी वृषभांन की ॥८९॥

इहां होरी के पेल सौं अरु वर्षा रितु सौं उपमान अर्थ तें पाइयत है अरु अंगनि की उपमा सब्द तें पाइयत है ।

अथ अनन्वय

उपमेय ही उपमांन जहां होइ, सो अनन्वय ।

मुकंद

रूप जुवन गुन रस भरी, तोसी तुही न आंन ॥९०॥

ना०

तेरे मुष की जोर कौं, तेरो ही मुष आहि ॥९१॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नप-सिप लौं निरपि सबै, ब्रज तिय भलैं सिंगारि ।
पै तो-सी सुंदरि तुही, श्री वृषभान कुमारि ॥६२॥

अ०क०

[दोहा]

यह जोरी-सी है यही, जोरि परम रसाल ।
अैसी सुंदरि है यही, तुम से तुम ही लाल ॥६३॥

केसव

॥ कवि०[त्त] ॥

एक कहै अमल कमल मुष राधे जू कौ,
एक कहै चंद महा आनद कौ कंदरी ।
होइ जौ कमल तौ पैं रैंनि मैं सकुचि रहै,
चंद दुति वासर मैं होति अति मंदरी ।
रैंनि मैं कमल अरु चंद दुति वासर हू,
रैंनि अरु वासर विराजै जग-वंदरी ।
देष्यौ मुष भावत न भावत कमल चंद,
यातैं मुप मुष ही है कमल न चंदरी ॥६४॥

अथ उपमानोपमेय

परसपर उपमा लागै, सो उपमानोपमेय ।

मुकंद

तिय तव मुप ससि सौ लसै, ससि तव मुप सौं मानि ॥६५॥

ना०

पंजन हैं तव नैंन से, तव द्रग पंजन सेय ।।९६।।

सो०[मनाय]

[दोहा]

रहित डह डही रैंनि दिन, फूल फलनि कौं झेलि ।
तिय तुव चंपक-वेलि-सी, तो-सी चंपक वेलि ।।९७।।

अ०क०

तू रंभा-सी रूप मैं, तो-सी रंभा नारि ।।९८।।

॥ कवित्त ॥

सोभित पदम जैसे पद पदमिनि तेरे,
पद तैंसैं पदम प्रसिद्ध पहिचानियें ।
सरद कौ चंद सो प्रकासमांन मुष अरु,
मुष के समान चारु चंद अनुमांनियें ।।
धनुप-सी भौंह वांकी भौंह से धनुष मांहि,
रूप की निकाई श्री गुविंद सुप दानियैं ।
मैंन कैंसैं पैंने सर नैंन न वनैं आली,
तेरे नैंन अैंसे पैंने सर मैंन के वपानियें ।।९९।।

अथ पंच प्रतीप

उपमेय कौं उपमांन कीजै सो प्रथम । उपमांन तें उपमेय कौ आदर जहां नही होइ सो दुतिय । उपमान जव उपमेय तें अनादर पावै सो तृतीय । उपमेय की समता लायक उपमांन जव नही होइ सो चतुर्थ । उपमेय के आगैं उपमान जव व्यर्थ होइ सो पंचम ।

अथ प्रथम प्रतीप(ला०)

लोयन से अंबुज वर्नें, मुष सौं चंद वषांनि ॥१००॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

देति मुकति सुंदर हरपि, सुनि रघुवीर उदार ।
है तेरी तरवारि-सी, कालिंदी की धार ॥१०१॥

अ०क०

[दोहा]

मोहि देत आनंद हौ, वा मुष सौं यह चंद ।
लीनौं आनि छिपाय कैं, बैरी बादर बृंद ॥१०२॥

[सवैया]

कंजनि मैं तव नेंननि की दुति सो जल पुंजनि दीनें बुडाई ।
तो मुष की छवि चंद मैं ताहि गुबिंद की सौं घन लीनौं छिपाई ॥
तो गति-सी गति हंसनि की सु गये गिरि कंदिर मैं अकुलाई ।
तेरे सद्रस्य विनोद हौ सीत सु देषि सक्यौ न दई दुषदाई ॥१०३॥[1]

अथ दुती[य] प्रतीप(ला०)

गरव करति मुष कौ कहा, चंदहिं नीकैं जोइ ॥१०३॥

1. अलवर-प्रति में यह सवैया नहीं मिलता ।

प्र०क०

[दोहा]

गरब करति गति की चलति, गज-गति नीकैं देषि ।
कहा करै तन दुति गरब, सुबरण दुति अवरेषि ॥१०४॥

सोमना०[थ]

[दोहा]

वचन मधुर धुनि को कहा, रही गरूर वढ़ाय ।
नै सुकि निज अंगुरीनि तें, सुनिये वीन वजाय ॥१०५॥

अथ तृतीय प्रतीप(भा०)

तीछन नैंन कटाछि तें, मंद कान के वांन ॥१०६॥

प्र०क०

[दोहा]

कोइल अपनें वचन को, काहे करति गुमान ।
मधुर वचन वनितान के, तो तें अधिके जानि ॥१०७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा[

क्यों साजति है नवल तिय, मनि आभरन अमंद ।
तेरे तन की दमक तें, दामिन दीपति मंद ॥१०८॥

॥ कवित्त ॥

करि कैं सिंगार रति मंदिर पधारति हो,
अँगनि तें महकै सुगंध गति न्यारी कौ ।
लहकारे वारनि के भार लचकति लंक,
कुच उचकति चकाचक वैसबारी कौ ॥
पंजन तें सरस छबीले द्रग सोमनाथ,
रंचक निहारि मन हरयौ गिरधारी कौ ।
मंद मंद गवन गयंदहि गरद करें,
रद करै चंदहि अमंद मुष प्यारी कौ ॥१०६॥

मुकंद

[दोहा]

गरब बडाई कौ कहा, हालाहल कहु टेरि ।
तो तें दुरजन वचन अति, मारत लगत न वेर ॥११०॥

सुधा मधुरता कौ कहा, रह्यौ गरूर वढ़ाय ।
मधुर वचन कविजननि के, तोहू तें अधिकाय ॥१११॥

अथ चतुर्थ प्रतीप[भा०]

अति उत्तम द्रग मीन से, कहे कौंन विधि जांहि ॥११२॥

अ०क०

[दोहा]

हरि मुष सुंदर अति अमल, ससि सम कह्यौ न जाय ।
डर चचाव लपत न बनत, कहा कीजियै हाय ॥११३॥

सोमनाथ

[दोहा]

जे जग मैं पंडित सुकवि, क्यों कहि सकै विचारि ।
अति उदार श्रीराम सौं, सुरतरु की उनहारि ॥११४॥

तुलसीदासजू

[दोहा]

कोक सोक प्रद वंधु विप, दिन मलीन सकलंक ।
सिय सुप समता पाव किम, चंद वापुरो रंक ॥११५॥

[कवित्त]

सुभग सिंगार अंग अंग सुकुमार चारु,
सरस उमंग सौं तरंग लेति तान की ।
अैसी छवि सिवा की न सची की न सारदा की,
रंभा रमा रति की न आंन उपमान की ॥
वृंदावन रानी सुपदानी जग जानि जिय,
जीवनि गुविंद स्यांम सुंदर सुजान की ।
थोरी वै अनूप रंग रस वोरी अैसी गोरी,
भोरी नवल किसोरी वृपभान की ॥११६॥

कविनाथ

[कवित्त]

तेरो मुप रचि कै निकाई को निकेत राखे,
चारु मुप चंदन रच्यो है और तेरो सौं ।

छविन कौ घेरौ सौ सुहाग कौ उजेरौ सब,
सौतिनि की आंषिन मैं पारत अँधेरौ सौ ।।
कान्ह की सौं कविनाथ के तौ पचि रह्यौ जाकी,
उपमान बनी हेरि हारचौ मन मेरौ सौ ।
जाकी सम काहि री बताऊं कहि का कौं जाकौ,
चाकर सौ चंद अरबिंद लागै चेरौ सौ ।।११७।।

सोभ

[कवित्त]

ऊभी-सी रहित अरविंदनि की आभा मह-
-बूबी मृग छौंननि की छाम करियति है ।
बूडी जल जोरनि मैं मीन बराज़ोरी सोभ,
भौंर मगरूवी बदनाम करियति है ।।
दूबी बन वीथिनु चकोर चारुताई मन-
-सूबी तुरगनि की तमाम करियति है ।
देषि देषि तेरी अषियानि की अजूबी प्यारी,
षूबी षंजरीटनि की षाम करियति है ।।११८।।

अथ पंच प्रतीप(भा०)

द्रग आगैं मृग कछु न ये, पंच प्रतीप प्रकार ।।११९।।

सोमनाथ

[दोहा]

तिय तो मुष ही सौं सदा, रहै उजास अमंद ।
कहियै कहा विरंचि सौं, वृथा रच्यौ है चंद ।।१२०।।

प्र०क०

[दोहा]

प्यारी देषें तो द्रगनि, मृग के द्रग कछु नांहि ।
त्यौं ही षंजन मीन हूं, कमल कछू न लषांहि ॥१२१॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

हरिन निहारि जकि रहे मन मारि वारि,
चर वारिज की बानिक बिकाती हैं ।
हांति जानि छाती छिन छिन मुरझाती परी,
धीर मन रंजन जे षंजन जमाती हैं ॥
दीवें कौं द्रगनि की समान उपमान आंन,
एते पें कविनु की उकति अधिकाती हैं ।
प्यारी के अनौपे अनियारे इछिन छ्वै छ्वै,
तीछन कटाछिनि सौं कटि कटि जाती हैं ॥१२२॥

[कवित्त]

सहज सुवास अलि आस पास भ्रू विलास,
मंदता सु जासु देषि पूजी मन साधिका ।
ऐसी छवि सिवा मैं न सची मैं न सारदा मैं,
रंभा रमा रति मैं रती कहू न आधिका ॥
जाकैं नित नेति नेति निगम अगम गावैं,
ध्यावै तई पावें सुभ संपति अगाधिका ।
नील-पट धारिनि सुजस विसतारिनि,
गुंविंद सुष कारिनि विहारिनि श्रीराधिका ॥१२३॥

अथ रूपक

उपमान को अरु उपमेय को एक रूप करि दिषावै, सो रूपक । सो दु-विधि—तद्रूप, अभेद । दोऊन के तीन तीन भेद हैं—१. अधिक, २. नून, ३. सम ।

अथ अधिक तद्रूप रूपक (भा०)

मुप ससि वा ससि तें अधिक, उदित जोति दिन राति ।।१२४।।

अ०क०

[दोहा]

अधिक कम[ल] तै मुप कमल, अमल सुवास निवास ।
रहत सदा प्रफुलित करत, हरि द्रग अलिन हुलास ।।१२५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

विपधर नागिनि तें सरस, तिय-लट नागनि स्याम ।
निरपत ही आवत लहरि, विसरि जात धन धाम ।।१२६।।

राजा छत्रसिंघ

।। सवैया ।।

वाकौ प्रकास रहै रजनी यह तौ दिन राति प्रकासहि वाहै ।
वामैं कला पट औ दस या मधि चौसठि है नित राजत भाहै ।।
वाही कलंकी कहैं सिगरे यह देपत कोटि कलंकनि दाहै ।
वा सम मूढ़ न और कोऊ तजि कें व्रजचंद जो चंदहि चाहै ।।१२७।।

अथ नून तद्रूप रूपक

सागर तैं उपजी न यह, कमला अपर सुहाति ।।१२८।।

अथ कर

[दोहा]

कैसे आवत हैं चलें, लपि आली घनस्यांम ।
कुसुम सरासन पैं न कर, अपर काम अभिराम ॥१२९॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मौंहन यह सब विधि लसैं, पैं न गृहनि कौ ईस ।
सीसफूल दिन करन यौं, लष्यौ तरुनि के सीस ॥१३०॥

अथ सम तद्रूप रूपक (भा०)

नैंन कमल यह अैंन हैं, और कमल किहि काम ॥१३१॥

अ०क०

[दोहा]

गये दूरि दुप अति लह्यौ, चित चकोर आनंद ।
नैंन कुमुद प्रफुलित भये, निरपत तो मुषचंद ॥१३२॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मन भाये फल देत नित, सुनि मौंहन रस दानि ।
सांचे भुज तव काम तरु, सुर तरु और कथानि ॥१३३॥

श्री भट्ट देवजू

दूसरी कोकिला मधुर सुर बोलै ।।१३४।।

देव

॥ कवित्त[1] ॥

बरुनी बघंबर हैं गूदरी पालक दोऊ,
को ये रति बस नभ गोहैं भेष षरियां ।
बूडैं जल ही मैं दिन जामिनि हूं जागैं भौंहैं,
धूम सिर छाये बिरहानल बिलषियां ।।
असुआ फटिक माल लाल लाल डोरे से ली,
सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सषियां ।
दीजिये दरस देव कीजिये सजोगिन यौं,
जोगिन ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अषियां ।।१३४।।

अथ अधिक अभेद रूपक(भा०)

गवन करति नीकी लगति, कनक लता यह वांम ।।१३५।।

अ०क०

[दोहा]

अरुण बरण तेरे अधर, विद्रुम ही दरसाइ ।
अधिक मधुर रस पाय कैं, प्रीतम रह्यौ लुभाई ।।१३६।।

1. अलवर-प्रति में देव का कवित्त नहीं है, किन्तु इसके स्थान पर जो आगे चल कर जोधपुर-प्रति में क्रमांक १४६ पर दिया गया का० कवित्त' है ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

व्रज में विहरै छहूं रितु, पुजवत सब के काम ।
नेह-धार बरषत सदा, मन मोंहन घनस्यांम ॥१३७॥

केसव

॥ कवित्त ॥

सोभा सरवर मांझ फूल्योई रहत सदा,
राजै राजहंस कें समीप सुग दानियै ।
केसौदास आस पास सौरभ के लोभ घनें,
आननि के देव भौंर भ्रमत वषानिये ॥
होति जोति दिन दूनी निसि मैं सहस गुनी,
सुरज सुपद चारु चंद सम मानियें ।
प्रीति को सदन छुइ सकै न मदन ऐसो,
कमल वदन जग जानकी को जानियै ॥१३८॥

अथ नून अभेद रूपक(भा०)

अति सोभित विद्रुम अधर, नहि समुद्र उतपन्न ॥१३९॥

अ०क०

[दोहा]

तेरो आनन चंद्रमा, अमल सुधा को ऐन ।
चैंन चकोरनि देत नहि, कुमुद फुलावत हैन ॥१४०॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जगमगात मंदिर सवै, कान्ह निरषिये रंग ।
है सांची तिय दामिनी, पैं न चपलता अंग ॥१४१॥

अथ सम अभेद रूपक (भा०)

तुव मुष पंकज विमल अति, सरस सुवास प्रसन्न ॥१४२॥

सोम०[नाथ]

[दोहा]

निरषत हीं रंग रीझि कैं, लई रँगीले लाल ।
छिनहूं छुटति न कंठ तें, यह तिय चंपक-माल ॥१४३॥

अ०क०

[दोहा]

तेरे अलक फंदानि मैं, परे क्यौं न उरझाय ।
कर सायल मन लाल कौ, कैसें कें वचि जाय ॥१४४।

॥ लाल कौ कवित्त ॥

वंठ्यो वन वीथिनु वनाय दरवार नव-
-पल्लव की गिलम गुलाबनि की गद्दी है ।

भौर कीर कोकिल नवीन नव सिधा किये,
और पतझार दफतर कुल रद्दी है ॥
विरह पुरा पं यह अमल लिपाय लायो,
हरें हरें चातुरी सों चापत चौहद्दी है ।
कीनें सरसंत सव संत औ असंत पर,
काम छिति कंत को वसंत मुतसद्दी है ॥१४५॥

॥ काहू को कवित्त ॥

फूल्यो मन सुमन अविद्या पतझार भयो,
सुमति कमलनि की छवि उफनंत हैं ।
कोकिला समान बुद्धि वोलत मधुर वानी,
आनद सरोवर की सोभा सरसंत है ।
सवद अनाद के वाजत अनेक वाजे,
सीतल सुगंध मंद पवन वहंत है ।
सुरति सहेली साथ ज्ञान रँग रँगे गात,
चेतन अपंड आज पेलत वसंत है ॥१४६॥

अथ परिणाम

वर्णनीय उपमान ह्वै के अनीत्रिया करै, सो परिणाम ।

मा०

लोचन कंज विसाल तें, देपत देपहु वाम ॥१४७॥

अ०क०

[दोहा]

भुज लतानि सों लाल कों, गहि व्रज वाल रसाल ।
मुदित होइ कर पंकजनि, मुप सौं लाइ गुलाल ॥१४८॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

नये नेह तें द्रगनि सौं, कछुक लाज सरसाति ।
लपि अलि तिय मुष चंद सौं, प्रीतम सौं वतराति ।।१४६।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

तरनि तनूजा तीर वीर बलभद्रजू के,
नीर के निकट ठाढ़े गायनि के गन मैं ।
चपला से सोहैं पट कोटि काम से प्रगट,
निपट कपट जान्यौं गोपिनु नें मन मैं ।।
मोहिनी के मंत्र केऊ कामरूके जंत्र नैंन,
तंत्र मै दिपावति हैं एक एक छिन मैं ।
चली है पदंवुज सौं देषें हैं द्रगंवुज सौं,
गहे हैं हृदंवुज सौं अंवुज के वन मैं ।।१५०।।

अथ उल्लेष दु-विधि

एक को वहुत जन वहुत रति करि कें समुझें, सो प्रथम । एक कौं वहुत गुननि सहित वहुत विधि करि कें वर्नियें, सो दुतिय ।

अथ प्रथम उल्लेष [भा०]

अर्थिनु सुर तरु तिय मदन, अरि कौं काल प्रतीति ।।१५१।।

म० क०

[दोहा]

पिय हिय तिय सरसावनीं, तुव मुष सुपमाकंद ।
अमल कमल जान्यौ अलिनु, लष्यौ चकोरनि चंद ।।१५२।।

मतिराम

[दोहा]

जानति सौति अनीति है, जानति सखी सुनीति ।
गुरजन जानें लाज है, प्रीतम जानें प्रीति ।।१५३।।

[कवित्त]

मल्ल[1] व्रज जानें अरुन नर जानें नरवर,
नारि जानै यही मार मूरति रसाल है ।
गोप जानें सुजन सु जादौं-कुल देव जानें,
असत नृपति जानें सासता कराल है ।।
अज्ञानी विराट जानें जोगी परतत्व जानें,
रंग भूमि राम कृष्ण गये असे हाल है ।
नंद जानें बालक गुविंद प्रतिपाल जानें,
साल सत्रु वंस जानें कंस जानें काल है ।१५४।।

गंग

[कवित्त]

पारथ प्रसिद्ध भूप भारत में तेरे डर,
भाजे देसपती धुनि सुनि कें निसान की ।

1. अलवर-प्रति में 'मल्ला जानें वज्र'

गंग कहै ताकी रानी अति सुकुमारि सु तौ,
फिरै बिललानी सुधि भूली पान-पांन की ॥
वन वन गिरि गुहा हाथिनु हरिनु बाघ,
वानर तें रछया भई तिन के यौं प्रान की ।
सची जानी गजनि कलानिधि मृगनि जानी,
देवी जानी सिंघनि कपिनु जानी जानकी ॥१५५॥

देव

चामी कर चोर जानी चंपलता भौंर जानी,
चांदिनी चकोर जानी मोर जानी दामिनी ॥१५६॥

अथ द्वितिय उल्लेख(भा०)

तू रण अर्जुन तेज रवि, सुर गुरु वचन विसेपि ।

अ०क०

[दोहा]

सीता सील सुरूप मैं, तू रति की उनहारि ।
वानी है वर वचन मैं, सब विधि पूरी नारि ॥१५८॥

मुकंद[1]

[दोहा]

सौतिनु कौं है सुरा-सी, सपियनि कौं है ऊप ।
गुरु लोगनि सु मयूप-सी, प्यारे पियहि पियूप ॥१५९॥

---

1. अलवर-प्रति में मुकंद का यह दोहा नहीं मिलता ।

अथ स्मरण

उपमांन कौं देषि कैं उपमेय की सुधि आवै, सो स्मर्ण।

सुधि आवति वा वदन की, देषैं सुधा निवास ॥१६०॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जव तें अलि सँग हौं गई, पिले कोक नद लैंन ।
तव तें छिन विछुरैं नही, ललित लाल के नैंन ॥१६२॥

अ८क०

[दोहा]

उमडि घुमडि आये सघन, सरसावैं उर कांम ।
सुधि आवत घनस्यांम की, देषत ए घनस्यांम ॥१६३॥

अथ भ्रम

उपमेय विषैं उपमान को भ्रम होइ, सो भ्रम।

भा०

वदन सुधा निधि जानि कैं, तुव संग फिरै चकोर ॥१६४॥

अथ क.[रणाभरण]

[दोहा]

वृंदावन विहरत फिरत, राधा नंदकिसोर ।
घन दामिन जिय जानि संग, डोलत वोलत मोर ॥१६५॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

वर्नि सकै को लाल अव, वा तरुनी के अंग ।
नैंन तामरस जानि अलि, भ्रम सौं तजैं न संग ।।१६६।।

कासीराम

।। कवित्त ।।

मंदहू चपत इंदु वधू के बरन होत,
प्यारी के चरण नवनीत हू तें नरमैं ।
सहज ललाई वरनी न जाई कासीराम,
चूई-सी परति अति वाकी मति भरमैं ।।
एडी ठकुराइन की नाइन गहति जब,
ईंगुर सौं रंग दौरि आवै दरवर मैं ।
दीनौं है कि दैनौं है निहारै सोचै वार वार,
वावरी-सी ह्वै रही महावरी लै कर मैं ।।१६७।।

अथ संदेह

उपमांन को जहां निश्चै नही, सो संदेह ।

भा०

वदन कीधौं यह सीत कर, किधौं कमल भयें भोर ।।१६८।।

।। कवित्त ।।

काजर की कोठरी मैं कचनि की रेप किधौं,
सघन घटा मैं दमकति दुति दामिनी ।
कुहू की निसा मैं नव दीपनि की माल किधौं,
दिपति रसाल श्री गुविंद अभिरामिनी ।।

सिंगार की साला मैं मुदित मन मोहिनी कै,
नील कंज की कुटी मैं कमला है कामिनी ।
कैधौं कारी सारी मैं किशोरी गोरी भोरी आज,
भाय भरी आजै भली भांतिन सौं भामिनी ।।१६९।।

कालीदास

[कवित्त]

परी पंड तीसरैं रँगीली रंग रावटी मैं,
तकि ताके ओर छकि रह्यो नंद नंद है ।
कालिदास बीचिनु दरीचिनु ह्वै झलकति,
छवि की मरीचिनु की झलक अमंद है ।।
लोग देपि भरमैं कहाधौं इहि घर मैं,
सुरगमग्यो जगमग्यो जोतिनु को कंद है ।
लालनि की माल है कि ज्वालनिकी झाल है कि,
चामी कर चपला कि रवी है कि चंद है ।।१७०।।

अथ शुद्ध अपह्नुति

आरोप तें धरम दूरै, सो अपह्नुति ।

भा०

उर पर नांहि उरोज ए, कनक-लता फल मांनि ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चंदन की वेंदी नही, क्यों अलि करत विचार ।
परगट भयो सुहाग यह, तिय के ललित लिलार ।।१७१।।

किसोर

।। कवित्त ।।

गाजत न घन ए सघन तन तूर वाजें,
मोर कीन कूक ए निवाजनि के हेले हैं ।
वक की न पांति ए लसति माल कौडनि की,
जल की न धुंधि ए विभूतिनि के रेले हैं ।।
फूली नहि सांझ लाल चद्दरी किशोर कहैं,
दौरत न वादर चपल गति चेले हैं ।
सुनि री सलोंनी नारि काहे कौं करति संक,
पावस न भेले ए मंगलनि के मेले हैं ।।१७२।।

अथ हेतु अपह्नुति

वस्तु कौं जुक्ति सो दुराइये सो, हेतु अपह्नुति ।

ना०

तीव्र न चंदन रैंनि रवि, वडवानल ही जोइ ।।१७३।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

नर मैं इतो न वल अमर, छिति पैं धरै न पाय ।
गिरि धरिवे कै हेतु यह, सेस अवतरयो आय ।।१७४।।

प्र०क०

[दोहा]

लपि सरवर के सलिल मैं, नीको सोभित होइ ।
कमल न चंचल ससि नही, विन कलंक मुप जोइ ।।१७५।।

॥ काहू कौ कवित्त ॥

अंक जो ससांक मैं हैं ताही कौं कलंक कहैं,
कोऊक तौ पंक जल-निधि कौं प्रमानैं हैं ।
कोऊ छाया धरिनी की कोऊ सुत हरिनी कौ,
कोऊ गुरु घरिनी कौ दाग पहचानैं हैं ।
कोऊ कहै मंदिर की टक्कर लगी है यह,
भोरे भारे लोग जे अयनि ते यौं मानैं हैं ।
हम तौ सलौनौ रूप देपि याकी जनिनी नैं,
काजर कौ मुप पैं दिठौंना दीनौं जानैं हैं ॥१७६॥

अथ पर्यस्थापह्नुति

और के गुन और विषैं आरोपण कीजैं, सो पर्यस्थापह्नुति ।[1]

ना०

होय सुधाधर नाहि यह, वदन सुधाधर आप ॥१७७॥

अ०क०

[दोहा]

नहीं सुधा मैं मधुरई, मधुराई अधरानि ।
मो अधरानि मिलाइ दै, जीव दानि सुपदानि ॥१७८॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

हिये लाल के चुभत ही, बेसुधि किये निदान ।
तौपै मनमथ सरन ही, तिय द्रग तीछन वान ॥१७९॥

1. अलवर-प्रति में + 'और के गुन और विषैं' ।

अथ भ्रांतापह्नुति

वचन तें जव परायौ भ्रम जाइ सो भ्रांतापह्नुति ।

मा०

ताप करति है ज्वर कहा, नां सषि मदन सताय ॥१८०॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

लाल अरुनई द्रगनि क्यौं, कहौ आरसी ताकि ।
होरी आगम जानि कैं, पियौ रामरस छाकि ॥१८१॥

अ०क०

[दोहा]

हियौ सिरायौ अति कहा, चंदन लियौ लगाइ ।
वहुत दिननि मैं भांवतौ, मोहि मिल्यौ अलि आइ ॥१८२॥

विहारी

[दोहा]

लाल कहां लाली लई, लोइन कोइनि मांह ।
वाल तिहारे द्रगनि की, परी द्रगनि पर छांह ॥१८३॥

अथ छेकापह्नुति

जुक्ति करि कैं अरु और सौं वात दुराइयै, सो छेकापह्नुति ।

ना०

करत अधर छत पिय सपी, नही सीत रितु वाय ॥१८४॥

प्र०क०

[दोहा]

आयें अति सीतल भई, दीनौं ताप निवारि ।
क्यों सपि प्रीतम के लपें, नां सपि ससिहि निवारि ॥१८५॥

सो०[मनाय]

॥ अरिल्ल ॥

निरपत नैंननि चैंन अधिक उपजावई ।
कर परसे ते अंग मनोज जगावई ॥
तिय यह चरचा करति सुमीत गुविंद की ।
नां सपि सुंदर वरन सरस अरविंद की ॥१८६॥

अथ कैतवापह्नुति

एक कौ मिसु करि कैं अरु अन को वर्नन कीजै, सो कैतवापह्नुति ।

ना०

तीछन तिया कटाछ मिसु, वरपत मनमथ वान ॥१८७॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

रापि रही समुझाय पैं, बिसरि गई कुल-कांनि ।
हरि मुरली की टेर मिस, नित विप वरपत आनि ॥१८८॥

अ०क०

[दोहा]

निकसि तमालनि तें झमकि, चंचल गति दरसाइ ।
कामिनि के मिस मो निकट, दामिनि ह्वै ह्वै जाइ ॥१८९॥

अथ उत्प्रेक्षा

मुष्य वस्तु मैं आन की संभावना कीजै, सो उत्प्रेक्षा । सो त्रि-विधि-वस्तु, हेतु, फल ।

अथ वस्तु उत्प्रेक्षा

भा०

नैंन मनौं अर विलास विसेष ॥१९०॥

अ०क०

[दोहा]

सोभित सुंदर स्यांम सिर, मुकट मनोहर जोर ।
मनहु नील मनि सैल पर, नांचत राजत मोर ॥१९१॥

होरी पेलत है ससी, दिसिजुवतिनि सौं जोर ।
मांनहु वीर अवीर यह, फैंलि रह्यौ चहुं ओर ॥१९२॥

विहारी

[दोहा]

सोभित ओढ़ें पीत पट, स्यांम सलौंनें गात ।
मनहु नील मनि सैल पर, आतप पर्यौ प्रभात ॥१९३॥

अलंकार माला[1]

तम देषें संका यहै, भई जु मो मन आइ ।
चकई की बिरहागि कौं, रह्यौ धूम मनु छाइ ।।१९४।।

लीपत सो तम अँगनि कौं, बरपत अँजन अकास ।।

॥ सिरोमनि कौ सवैया ॥

आयो असाढ़ परी अति गाढ़ पहार-सी रैंनि भई सषि ठाढ़ैं ।
प्रात ही तैं करैं कोकिला कूक सिरोमनि लेति करेजौइ काढ़ैं ।।
कौंन सुनैं अब कासौं कहौं चहु ओर तैं मारति दामिनी काढ़ैं ।
कामिनि के हनिवे कौं मनो झमकी चमकी जमकी जम दाढ़ैं ।।१९४।।

पुषी

॥ कवित्त ॥

सिंघ मरवर की सुधारि सरवर पारि,
फूले तरवर सब विपिनि सँवारयौ है ।
ठाढ़ो तहां प्यारी संग विहरि विहारी पुषी,
रैंनि उजियारी इत वदन उज्यारयौ है ।।
कांन तैं तरौंना टूटि परसि पयोधर कौं,
धरनी पर तक नीझरि झनकारयौ है ।
रोस भरि पूरि जिय जानि कैं कलंकी कूर,
मनौं चंद्र चूर चंद्र चूर करि डारयौ है ।।१९५।।

---

1. अलवर-प्रति में इसे अ०क०(अलंकार करणाभरण) से उद्धृत बताया है ।

कालिदास[1]

[कवित्त]

अंधकार धूमधार सम सिर छूटे वार,
विथुरे विराजें रति सेज अंत-पर मैं ।
कालिदास काम रूप स्यांम संग सोई वाम,
काम कामिनी यौं मनौं काम-केलि घर मैं ।।
नवला की नाभि कुहनि दै कान्ह गहै कुच,
सोये जोये ललित अंगूठी सोहै कर मैं ।
मेरे जानि वांवी तें निकसि कारे नाग फन,
राख्यौ मनि मंडित सुमेर के सिषर मैं ।।१९६।।

अथ हेतु उत्प्रेक्षा

अ०का०

[दोहा]

छैल छबीले रावरे, अधिक रसीले नैंन ।
मानौं मद-माते भये, यातें राते अैंन ।।१९७।।

अ०मा०

भूमि चपत तव पद कमल, भये अरुन इहि लेप ।।१९८।।

।। सवैया ।।

एक वधू वहु भांति वकै भटकै घर ही घर दूसरी नारी ।
तीसरें मार कुमार भयौ कहि गोविंद सो उनमत्त महा री ।।

---

1. प्रलवर-प्रति मे नहीं है ।

सिधु बसै अहि की सयनी पुनि वांहन भोगिनु ही कौ अहारी ।
आपुनें भौंन के देपि चरित्रनि सूपत दार भयो यौं मुरारी ।।१९९।।

॥ पुषी कौ कवित्त ॥

चौंथि ते चकोर चहु ओर मुप चंद जानि,
रहे डर बसनि दसन दुति संपा के ।
लीलि जाते बर ही विलोकि वेंनि व्याल गुन,
गुही पैं न होती जौ कुसुम सर पंपा के ।।
कहै कवि पुषी ढ़िग भौंह न धनुष होती,
कीर कैसें छाडिते अधर बिंब झंपा के ।
दाप के से झौंरा झलकति जोति जोवन की,
चाटि जाते भौंरा जौ न होति रंग चंपा के ।।२००।।

अथ फल उत्प्रेक्षा(अ०मा०)

कुच धरिवे कौं वलिनु कटि, वांधी कंचन दाम ।।२०१।।

अ०क०

[दोहा]

तेरे तन के बरन कौ, सुवरन हौंन समान ।
मानहु परि पावक जरै, बरन्यौं सकल जिहान ।।२०२।।

तेरे सूछम लंक कौ, लहन एकता काज ।
करत मनौं वनवास है, मृग-नैंनी मृगराज ।।२०३।।

मा०

तुव पद समता कौं कमल, जल सेवत इक पाइ ।।२०४।।

केसव

॥ कवित्त ॥

गृहनि में कीनों गेह सुरनि दै राष्यौ देह,
सिव सों कियौ सनेह जाग्यौ जग चारयौ है ।
जलधि में जप्यौ जप तपनि में तप्यौ तप,
केसौदास सब पुमास प्रति गारयौ है ॥
उडगन ईस द्विज ईस ओषधीस भयौ,
जद्दपि जगत ईस सुधा सौं सुधारयौ है ।
सुनि नंद नंद प्यारी तेरे मुष चंद सम,
चंद पै न भयौ कोटि छंद करि हारयौ है ॥२०५॥

अथ गम्य उत्प्रेक्षा

॥ सवैया ॥

उमई नव नाभिही तें निकसी इक स्यामल व्यालि रुमालि सही ।
चित चाय सौं उच्च चढ़ी जुग पंजन नैंननि के भष कों उमही ॥
मग में लषि नासा पगेस विसेस डरी उर और ही रीति गही ।
कुच ह्वै द्रढ़ सैल को संधि कैं मध्य गुविंद उहै दुरि जाति रही ॥२०६॥

[सवैया]

विप्र मनोज कौउ कृत है यह दंत अकास वराह को भ्राजै ।
सींप उडग्गन मुक्तनि की गजराज अँध्यार कों अंकुस छाजै ॥
कूंची सिंगार के आगर की है कर्तनिय मान के छेदन काजै ।
चार वधू रजनी को नषच्छत चंद्रकला यों गुविंद विराजै ॥२०७॥

---

1. अलवर-प्रति में 'तीनू' कहा गया है। तीनू =तीनों, किन्तु वहां पहला सवैया है, दूसरा नहीं है।

अथ रूपकातिसयोक्ति

उपमान जहां केवल ही होइ, सो रूपकातिसयोक्ति ।

॥ सवैया ॥

चपलता लगे श्रीफल द्वै नि पैं इक कंवुक सो है सलौंना ।
ता पैं गुविंद खिले इक कंज पैं पेलत षंजन के जुग छौंना ॥
ता पैं सरासन द्वै सर हैं तहां हेम-पटी कौ विछ्यौ है विछौंना ।
ता पैं घटा वग पंगति साज लिष्यौ इक अद्भुत आज षिलौंना ॥२०८॥

[सवैया]

स्यांम घटा मधि है ससि मंडल तामैं कछू चमकैं चपलारी ।
एक नछत्र सुदर्पन द्वै इक नील सरोज लसैं सुषकारी ॥
द्वै सर दोइ सरासन द्वै रवि द्वै अवलि अलि की अतिकारी ।
त्यौं वनी एक त्रिवेंनी गुविंद यहै छवि आज अनोपी निहारी[1] ॥२०८॥

भा०

कनक-लता पर चंद्रमा धरैं, धनुप द्वै वान ॥२०९॥

अथ अपह्नुतिसयोक्ति(भा०)

और के गुन और पैं ठहराइये, सो अपह्नुतिसयोक्ति ।

भा०

सुधा भरचौ यह वदन तुव, चंद कहै वौराय ।

1. अलवर-प्रति में 'निहारी' अन्तिम शब्द लिखने से रह गया है ।

अ०क०

[दोहा]

और फलनि मैं मधुर रस, कहैं चतुर सोहैंन ।
तो नथ के लटकन तरैं, विव भरे रस अैंन ॥२१०॥

सौ०[मनाथ]

[दोहा]

निस दिन सुष सरस्यो रहै, राजत गुनी हजूरि ।
विबुध पाल श्रीराम तुम, इंद्रहि कहैं सु कूर ॥२११॥

केसव

॥ सवैया ॥

है गति मंद मनोहर केसव आनँद कंद हियें उलहे हैं ।
कोमल हासनि नैंन विलासनि अंग सुवासनि गाढ़े गहे हैं ॥
वंक विलोकनि कौं अवलोकि सु मार ह्वै नंदकुमार रहे हैं ।
एही तो काम के वान कहावत फूलनि के विधि भूलि कहे हैं ॥२१२॥

अथ भेदकातिसयोक्ति

और और ए पद जा मैं होइ, सो भेदकातिसयोक्ति ।

मा०

औरें हसिवो देपिवो औरै या की वात ॥२१३॥

प्र०क०[1]

[दोहा]

ग्रौरै चित वनि चपनि की, ग्रौरैं हीं मुसकानि ।
ग्रौरैं ही तेरी चलनि, ग्रौरैं ही वतरानि ।।२१४।।

।। काहू कौ सवैया ।।[2]

जद्दपि है ग्रति ही ग्रति सुंदरि कोटि मनमथ के मन लोभा ।
जो कोउ जान सुजानैं सपी घनस्यांम सनेही के चित्त की चोभा ।।
ज्यौं पुट सौं पट रंग पुलै यौं झिलै ग्रंग ग्रंग ग्रनंद की गोभा ।
लाडिले गोविंदलालजू के ढ़िग ग्रायें लडेंती की ग्रौर ही सोभा ।।२१५।।

स्वामी हरिदासजू[3]

यह कौंन वात जू ग्रव हीं ग्रौर ग्रवहीं ग्रवहीं ग्रौर इत्यादि ।

ग्रथ संवंधातिसयोक्ति

ग्रजोग्र कौं जोग्र कहिये, सो संवंधातिसयोक्ति ।

भा०

या पुर के मंदिर कहैं, ससि लौं ऊंचे लोग ।।२१६।।

---

1. ग्रलवर-प्रति ग्र०क० से पूर्व ग्र०मा० (ग्रलंकार माला) का उदाहरण ग्रौर है—
ग्रौरैं चलति चितौंनि सखि ग्रौरैं ग्रौरैं वानि । (केवल एक ही पंक्ति है)

2. सवैया से पूर्व यह सो० का दोहा ग्रलवर-प्रति में ग्रौर है—
ग्रौरैं गति विथुरी ग्रलक, ग्रौरैं रंग के नैंन ।
तिय हमसौं ग्रजहू कहत, ग्रौरैं विधि के वैंन ।।

3. ग्रलवर-प्रति में नहीं है ।

अ०मा०

परसति या नृप की धुजा, रविहय के पद चाहि ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दसरथ राजकुमार सुनि, जैता जालिम जंग ।
ऊंचे लगत सुमेर से, तेरे समद मतंग ।।२१७।।

नंददासजू

धवल नवल ऊंचे अटा, करत घटा सौं वात ।।२१८।।

अथ असंवंधातिसयोक्ति

जोग कौं अजोग कहिये, सो असंवंधातिसयोक्ति।

मा०

तो कर आगें कलपतरु, क्यौं पावै सनमान ।।२१९।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दसरथ राजकुमार सुनि, जालिम तुव तरवारि ।
ता पें दुवनि विदारिवौ, तडिता पड़ति विचारि ।।२२०।।

अ०क०

[दोहा]

पूरत प्रीतम काम जो, उपजत मो मन मांहि ।
ता की सरिवर कलपतरु, कह्यौ जात है नांहि ॥२२१॥

अथ अक्रमातिसयोक्ति

क्रम विना कारण अरु कारज, एऊ एक संग ही होइ, सो अक्रमातिसयोक्ति ।

मा०

तो सर लागत साथ ही, धनुपहि अरु अरि अंग ॥२२३॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नप सिप लौं तिय थरहरी, उर मैं सरस्यौ नेह ।
पिय के चाले साथ ही, भई दूबरी देह ॥२२४॥

अथ चपलातिसयोक्ति

कारण के नाम ही तैं कारज होइ, सो चपलातिसयोक्ति ।

मा०

कंकन ही गइ मूंदरी, पिया गमन सुनि आज ।

सो०[मनाथ]

नाम सुनत ही नेह को, भये चीकने वार ।।२२६।।

अ०क०

[दोहा]

मांगी विदा विदेस कौं, पिय साहस उर लोय ।
सुनत बाल की हाल ही, चुरीं चढ़ी भुज जाय ।।२२७।।

मुकंदजू

।। सवैया ।।

देपत फूल भयो मन लैंन भई त्यों हथेरिनु मांझ ललाई ।
जावक दैंन की बात सुनी तरवानि मैं त्यों उमगी तरुणाई ।।
चंदन लेपि की यादि कियें तन मैं श्रम सीकर देत दिषाई ।
ऐपैं मुकंद सुगंध को भार सहै लट मैं सु यहै अधिकाई ।।२२८।।

अथ अंत्ततातिसयोक्ति[1]

अगिलो पिछलो क्रम जामैं नही, सो अंत्ततातिसयोक्ति ।

भा०

बान न पहुंचै अंग लौं, अरि पहलैं गिरि जांइ ।।२२९।।

सो[मनाथ]

पीछें पीयो 'राम रस', चढ़्यो पहल ही आइ ।।२३०।।

---

1. अलवर-प्रति में स्पष्टतः 'अत्यंतातिसयोक्ति' लिखा है ।

अथ तुल्य योग्यता त्रि-विधि

हित अरु अहित ए दोऊ एक ही शब्द मैं कहिये, सो प्रथम । बहुतनि मैं एक ही बांनि होइ, सो दुतिय । बहुतनि मैं समता गुननि करिकैं जहां होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम तुल्य योग्यता[1]

भा०

गुन निधि नीकैं देत तू, तिय कौं अरि कौं हार ॥२३१॥

अ०मा०

किय तुव सुयस कृपान करि, मित्र सत्रु मतिवान ॥२३२॥

सो० [गनाय]

[दोहा]

वपत वली श्रीराम को, है यह सहज सुभाव ।
मित्र अमित्रनि कौं सदा, निरपि देत सिर-पाव ॥२३३॥

---

1. तुल्य योगिता अलंकार को जोधपुर-प्रति में अच्छी तरह समझाया है । पहले तो तीनों को इस प्रकार बताया है—

हित अरु अहित ए दोऊ एक ही शब्द मैं कहियै, सो प्रथम । बहुतनि में एक ही बांनि होइ, सो दुतिय । बहुतनि में समता गुननि करि कैं जहां होइ, सो तृतीय ।

फिर अथ प्रथम तुल्य योग्यता कहकर 'भा.' 'अ.मा.', 'अ.क.' आदि कृतियों से उदाहरण दिए गये हैं जैसा यहां स्वीकार किया गया है । अलवर-प्रति में यह सब विस्तार नहीं है ।

अ०का०

[दोहा]

तो चतुराई निरषि हो, रीझि है मति अैंन ।
भरी लुनाई पिय द्रगनि, अरु सौतिन के नैंन ।।२३४।।

।। काहू को कवित्त ।।

राजनि के राजा महाराजा रघुवीर वीर,
धीरज जिहाज तेरे गुन अवदात हैं ।
तू तो गुनवंत गुन जानतु है गुनीनि के,
निगुनी गुनी कौं देत बार न सुहात हैं ।।
कीनी बसुधा तें सुभ गुन तें सुधा के सम,
तेरे संग लगैं कौंन भूपनिकी ज्ञाति हैं ।
तेरे घर हय हाथी रथ सुष पाल भरे,
यातें तो तें सत्रु मित्र पाय चले जात हैं ।।२३५।।

अथ दुतिय तुल्य योग्यता(भा०)

नवल वधू की वदन दुति, अरु सकुचत अरविंद ।।२३६।।

[दोहा]

नेंकु न चंचलता लहै, कियें हजारक छंद ।
दिनकर नंदन की चलनि, अरु मूरष मतिमंद ।।२३६।।

अ०मा०

सकुचनि विरहनि मुष कमल, एकै गति यह जोइ ।।२३७।।

॥ सवैया ॥

वृक्ष विहंग तजैं फल हीन तजैं मृग जोवन दग्ध दिषाई ।
गंध विना अलि फूल तजैं सर सूपे कौं सारस हू तजि जाई ॥
सेवक भूपति भृष्ट तजैं विन द्रव्य तजैं नर कौं निकाई ।
या जग मांझ गुविंद कहैं विन स्वारथ कौन की कासौं मिताई ॥२३८॥

अथ तृतीय तुल्य योग्यता(भा०)

तुही सिद्धि तुही धरम निधि, तुही चंद अरविंद ॥२३९॥

अ०क०

[दोहा]

रमा सची रति उरवसी, रंभा गिरिजा-नारि ।
तू ही है अति सुंदरी, श्री वृपभान-कुमार(रि) ॥२४०॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

निसि वासर नंदलाल सौं, नैंकु न बिछुरति वाल ।
तुही मौंहनी मनि तुही, मुरली, तू वनमाल ॥२४१॥

व्यासजू

तू जीवन भूपन धन मेरें, यह व्रत मन प्रतिपारो ॥२४२॥

देव[1]

॥ कवित्त ॥

आदि ब्रह्म विद्या वेद प्रकृति कहत जा सौं,
जोई जोग माया जानि जोगिनु समाधी है ।

1. अलवर-प्रति मे नहीं है ।

भैरवी भवानी भवनेस्वरी मतंगी मात,
काली अंनपूरणा कपाली अंग आधी है ।।
एक तें अनेक जानी जल थल मैं समानी,
अगिनत वानी सिद्ध साधकनि साधी है ।
साधारण देवी सो असाधारण रूप धरें,
बाधा हरिवें को देव राधा ही अराधी है ।।२४३।।

अथ दीपक

अपनें अपनें गुननि सहित वर्ण्य अवर्ण्य कौ एक ही भाव जहां होइ, सो दीपक ।

भा०

गज मद सौं नृप तेज सौं, सोभा लहत वनाय ।।२४४।।

अ०भा०

घन कर दामिनि लसति है, नीलांवर करि वाम ।।२४५।।

अथ क०| रणाभरण]

[दोहा]

सरनि सरोजनि सौं तरुनि, फल फूलनि अधिकाय ।
काजर सौं कामिनि द्रगनि, अति सोभा सरसाय ।।२४६।।

सो०[मनाय]

सरसौं सिंधु तरंग तें, चंचल ता तें नैंन ।।२४७।।

।। कवित्त ।।

मद सौं दुरद अरविंद सौं सरोवर,
सरवरी अमंद चंद सुंदर कौ छाय कें ।

सुंदरी सुसील तें तुरंगन तरलता तें,
मंदिर गुविंद नित्य उत्सव कों पाय कें ॥
बानी व्याकरन तें मिथुन तें मराल सभा,
पंडित तें कुल सतपुत्र उपजाय कें ।
नीति तें रजाई राजा तुम तें अवनि त्यों हीं,
विष्णु तें तिलोकी छवि लहति बनाय कें ॥२४७॥

अथ दीपकावृत्ति त्रि-बिधि

पद की आवृत्ति जा में होइ, सो प्रथम । अर्थ की आवृत्ति होइ, सो दुतिय । पद अरु अर्थ दुहूनि की मिलि कें आवृत्ति होइ, सो तृतिय ।

अथ प्रथम दीपकावृत्ति (भा०)

घन बरसैं हैं री सपी, निसि बरसैं हैं देपि ॥२४८॥

म०क०

[दोहा]

सरस कियो कानन सकल, आवत मनमथ मित्त ।
कुसम सरासन अरु सरस, कियो कामिनिनु चित्त ॥२४९॥

सो० [मनाथ]

विरह सताइ देह पिय, अजहूं दरसन देह ॥२५५॥

॥ काहू को कवित्त ॥

तेज को निवास पुनि तम को विनास जहां,
कौंन देषिवे कों कर दिया पकरत हैं ।
ऐसो स्वर्गवास अपछरा ससि पास सब,
सुप के समाज करि दिया पकरत हैं ॥

वैठक विमान सुनें किंनर कौ गान जाहि,
मैंनका समान तन भूषत है ।
सुंदर वसन जहां सुधा कौं असन हरें,
मन कौ जातें पीरा भूषन करत है ॥२५६॥

अथ द्वितिय दीपकावृत्ति

फूले वृक्ष कदंद के, केतुक विकसे आइ ।[२५७]

अ०क०

[दोहा]

आवत ही परदेस तें, पिय प्यारी सुप दैंन ।
लपि हरषे चष सषिनु के, मुदित भये तिय नैंन ॥२५८॥

॥ काहू को कवित्त ॥

जनक के वाग परी राजति सुहाग भरी,
देषति कुसुम पुंज सवै द्रुम फूले हैं ।
विकसे गुलाव सोन केतुकी औ चंपा षिले,
रायवेलि मलिका सुमन-गन फूले हैं ॥
छोटी वडी लता सो तौं फूल सौं सुपेद भई,
नीर भयौ सेत विव नलिन के झूले हैं ।
जहां तहां सुक पिक सारिका के वोल सूवे,
श्रुतिन कौं लागें तैसे पौन अनुकूले हैं ॥२५९॥

अथ तृतीय दीपकावृत्ति(ना०)

मत्त भये हैं मोर अरु चातक मत्त सराहि ॥२६०॥

म०क०

[दोहा]

दमकन लागी दामिनी, करन लगे घन घोर ।
बोलति माती कोइलें, बोलत मांते मोर ॥२६१॥

॥ काहू कौ सवैया ॥

श्री मनमोहन राधिका कों अपरा मथुरा चलिवे के सुनाये ।
बात कहैं मुप सूपि गयौ पुनि अंग सबै बिरहानल छाये ॥
चाहै कह्यौ न कछू कहि आवत घूंघट ओट दै नैंन दुराये ।
जी भरि आयौ हियौ भरि आयौ गरौ भरि आयौ द्रगें भरि आये ॥२६२॥

॥ कवित्त ॥

नेह भरी डोलनि सनेह भरी सारी अंग,
आनद उछाह भरी बालम समेति हैं ।
गहकि गहकि गावैं बहकि बहकि गीत,
डहकि डहकि बीरी पिय मुप देति हैं ।
हमकों तो होरी विधि होरी मैं दियौ है दुप,
प्रीतम बिदेस कहूं दुप कों न छेत हैं ।
और सब लालन कों अंक भरि लेत हम,
हियौ भरि गरौ भरि आंपें भरि लेत हैं ॥२६३॥

श्रीपति

[कवित्त]

स्यामा स्यामा जानत हौं स्याम स्याम मानत हौं,
स्यामा स्यांम पूजत जपत स्यामा स्याम हौं ।
स्यामा स्याम ही सौं काम स्यामा स्यांम कौं प्रनाम,
स्यामा स्याम ही कौं नाम रटौं आठौं जाम हौं ॥

श्रीपति सुजान स्यामा स्याम मेरे जीव प्रान,
स्यामा स्याम ही कौ ध्यान धरौं अभिराम हौं ।
स्यामा स्याम मेरे मन काम के कलपतरु,
स्यामा स्याम की सौं स्यामा स्याम कौं गुलाम हौं ॥२६४॥

अथ प्रतिवस्तुपमा

वर्ण्य अवर्ण्य ए दोऊ वाक्य समान कहिये, सो प्रतिवस्तुपमा ।

भा०

सोभा सूर प्रताप वर, सोभा सूरहि वान ॥२६५॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सुप विलसौ नँदलाल सौं, तजौ अटपटे नेह ।
लसति नारि मुनि माल सौं, लसति नारि पिय नेह ॥२६६॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

साधू कसिवे कौं काल दाता कसियै दुकाल,
मोती कसिवे कौं थाल नट कौं नटौटी है ।
हीरा कसिवे कौं घन सूरा कसिवे कौं रन,
पंडित के कसिवे कौं पत्र औ पटौटी है ॥
तान कसिये कवान घोरा कसिये चौगान,
कारीगर कसिवें कौं हाथ की हथौटी है ।
मित्र कसियै कुदाव नाव कसियै वहाव,
मानस के कसिवे कौं मामला कसौटी है ॥२६७॥

अथ दृष्टांत

बिंव अरु प्रतिबिंव कौ एक ही भाव होइ, सो दृष्टांत ।

ना०

कांतिमान ससि ही वन्यौं, तू ही कीरतिवांन ॥२६८॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

कंत विनि कामिन(नि)वसंत विनि कोकिल ज्यौं,
दंत विनि दिग्गज कमल विन सर है ।
नीत विन राज ज्यौं महीप मजलस विन,
दांन विन मांन जैसें मुंड विन धर है ॥
पांनी विन मोती जैसें वानी विन कंठ जैसें,
जोति विन आंपं जैसें पंछी विन पर है ।
विन रीझि देबौ यौं कवित्त रस चित्त विन,
गति विन हंस जैसें मति विन नर है ॥२६९॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

परवत पक्ष विदारनौं, सुरपुर मैं अमरेस ।
पर गढ़ गंजन जगत मैं, श्री रघुवीर नरेस ॥२७०॥

प्र०क०

[दोहा]

प्रीति रावरी सांवरे, रही सकल जग छाइ ।
फैली ससि की चांदिनी, ज्यौं दिसानि मैं जाइ ॥२७१॥

का०

[दोहा]

नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचो ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होइ ॥२७२॥

[दोहा]

चलें फिरें धन होत है, बैठें देगी कौंन ।
उद्दम के सिर लछमी ज्यौं, पंषे सिर पौंन ।।२७३।।

।। सवैया ।।[1]

जे गुन हीन महाधन संजुत ते न लहैं सुषमां जग मांही ।
जो गुनवंत विना धन है तौ तिन्हैं कवि लोग गुविंद सरांहीं ।।
ज्यौं द्रग लोल बिसाल फटे पट ताहि लषैं जन रीझि बिकांहीं ।
नैंन विहीन तिया मन कंचन भूषण तें कछु भूषित नांहीं ।।२७४।।

अथ त्रि-बिधि निदर्शना

दोऊ वाच्यार्थ समान कहियैं, सो प्रथम । और वस्तु मैं और गुन अरु क्रिया एक ही होइ, सो दुतिय । कछु कारज देषि कें अरु भले बुरे कौ भेद बताइये, सो तृतीय ।

अथ प्रथम निदर्शना

दाता सौम्य सु अंक विन, पूरन चंद वन वसो ।।२७५।।

*

[दोहा]

फैलि रह्यो मनि सदन मैं, आनन अमल प्रकास ।
अलकनि चंचलता अली, नागनि गमन बिलास ।।२७६।।]

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।
* अलवर-प्रति में सो०(सोमनाथ) दिया गया है ।

प्र०क०

[दोहा]

अन हठ पिय हिय नवल तिय, लगै चाह सौं धाय ।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिलत, अनायास ह्वै जाय ॥२७७॥

अथ द्वितिय निदर्शना(मा०)

देपी सहज ही धरत ये, पंजन लीला नैंन ॥२७८॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

श्रीरघुवीर महावली, तेरी सुजस गंभीर ।
लहि विहार कलहंस को, लसत मान-सर तीर ॥२७९॥

प्र०क०

[दोहा]

धारत लीला मीन की, लोचन तेरे वाल ।
होइ रहे मोहित अहे, अलि नंद नंद रसाल ॥२८०॥

अथ तृतीय निदर्शना(मा०)

तेजस्वी सौं निवल वल, महादेव अरु मैंन ॥२८१॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

सर्व ठौर समता भली, दूजी बिधि न सवाद ।
श्रवन सुषद कहि कौंन कौं, सठ पंडित कौ वाद ॥२८२॥

का०

जलधर की एकौ घरी, अरहँट बारह मास ॥२८३॥

का०

॥ कवित्त ॥

कवित करत तुक दौरैं मन दौरैं जहां,
जहां जहां औरै औरै औरै सुठि सांकरैं ।
सौंनैं की सी सांकर ए मिसरी के कांकर से,
आंक-रस आकरैं सु हां करैं निसां करैं ॥
सौंठैं कै सी गांठैं तुक गांठे तेऊ गांठि की न,
सांठैं सौं ले आनी अैसे आंकनि के रांकरैं ।
दोऊ ते समान यौं जिहांन को जमानौं जानि,
भौं भौंर भयें जीत्यौ षट पद भद(पद)माकरैं ॥२८४॥

॥ सवैया ॥

सज्जन नांहि करें तृस्कार करें तो गुविंद महा सुपदानी ।
नीच करें अति आदर कौं जिय जद्दपि है दुष ही की निसानी ॥
ठोकर देय तुरंग ललाट मैं तद्दपि कीरति ही सरसानी ।
जौ पर पीठि पें लेई चढ़ाइ तऊ जग मैं अपहास कहानी ॥२८५॥

अथ व्यतरेक

उपमान तें उपमेय अधिको देपियै, सो व्यतरेक ।

भा०

मुप है अंवुज सो सपी, मीठी वात विसेप ॥२८६॥

मुकंद

गिरि से ऊंचे रसिक मन, कोमल प्रकृति विसेप ॥२८७॥

भ०भा०

श्रीफल से सुंदर उरज, कठिन भेद यह एक ॥२८८॥

भ०क०

राधे तव मुप चंद सो, विन कलंक सरसाय ॥२८९॥

[सवैया]

नैंन वनें अरविंद से सुंदर ऐपें कटाछिन की सरसाई ।
इंदु अमंद सो आनन ऐपें अनोंपी ये वातन की मधुराई ॥
कंचन सो तन तेरी तिया पें सुगंध के वृंदनि की छवि छाई ।
आनदकंद गुविंद की सौं सव ही विधि तो मधि है अधिकाई ॥२९०॥

सेनापति[1]

॥ कवित्त ॥

तेरो मुप देपें चंद देप्यो न सुहाय अरु,
चंद के अछत मेरो मन तरसतु है ।

2. मनवर-प्रति में नहीं है ।

ग्रैसें तेरे मुष सौं कहत सव कवि ग्रैसें,
देषौं मुषचंद के समान दरसतु है ।।
वेतौ समुझै न कछू सेनापति मेरे जानि,
चंद तें मुषारविंद तेरौ सरसतु है ।
हसि हसि मीठी मीठी वातें कहि कहि ग्रैसे,
तिरछे कटाछ कवं चंद वरसतु है ।।२९१।।

ग्रथ सहोक्ति

एक संग ही रस कौं सरसाय कैं वरनियें, सो सहोक्ति ।

मा०

कीरति ग्ररि कुल संग ही, जल निधि पहुची जाय ।।२९२।।

ग्र०मा०

झटक उपारयौ गिरि हरी, मघवा गर्व समेत ।।२९३।।

ग्र०क०

[दोहा]

मांन मनावत ग्रापुही, ग्राये स्यांम सुजान ।
मान मानिनि संग ही, छूस्यौ सौति गुमान ।।२९४।।

सो०[मनाय]

[दोहा]

हरि दूरि निरषौ हिये मैं, जोवन कियौ विहार ।
वढे द्रगनि के संग ही, नव तरुनी के वार ।।२९५।।

केसव

॥ कवित्त ॥

सिसुता समेत भई मंद गति लोचननि,
गुननि सों वलित ललित गति पाई है ।
भौंहनि की होडां-होडी ह्वै गई कुटिल अति,
तेरी वानी मेरी रानी लागति सुहाई है ।
केसोदास मुख हास साथ छीन कटि तट,
छिन छिन सूछम छवीली छवि छाई है ॥
वीर बुद्धि वारनि के साथ ही वढ़ी है अरु,
कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है ॥२९६॥

बिहारी

[दोहा]

गर तैं टर तन वर परे, दई मरक मनु मैंन ।
होडां-होडी बढ़ि चले, नित चतुराई नैंन ।

अथ द्वि-विधि बिनोक्ति

कछु बिना छीन प्रस्तुत होइ, सो प्रथम । प्रस्तुत कछु हीनता तें, अधिकी सोभा पावै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम विनोक्ति(सा०)

दृग खंजन से कंज से, अंजन बिन सोभैं न ॥२९८॥

अ०क०

[दोहा]

वसन आभरन मिलि भई, सोभा सरस अतोल ।
सबै सिंगार अमोल पें, फीकौ विनां तमोल ।।२९९।।

मुकंद

सब गुन सहित प्रवीन तू, विना नमृता हीन ।।३००।।

अ०भा०

सब विधिनी की दुर्ग अति, पें सदोष विन कूप ।।३०१।।

।। कवित्त ।।

सीषे रस रीति सिष प्रीति के प्रकार सब,
सीषे केसौराय मन नन सौं मिलाइबौ ।
सीषे सौंहैं पान मुसकान नटि जान सीषे,
सीषे सैंन वैननि मैं हसिबौ हसायबौ ।।
सीषे चाह चाह सौं जु चाह उपजायबे की,
जैसी कोऊ चाहै चाह तैसी चाह चाहिबौ ।
जहां तहां सीष ऐसी बातैं घातैं तातैं तुम,
तहां क्यौं न सीषे एक नेह कौ निवाहिबौ ।।३०२।।[1]

अथ द्वितिय विनोक्ति(भा०)

वलि सब गुन सरसाति, तू रंच रुपाई है न ।।३०३।।

---

1. अलवर-प्रति में सोमनाथ से यह उद्धरण और है—
नीकौ आनन मरु नई, भृकुटी की विधि वंक ।
अनवेली विन छीनता, लसति न तेरी लंक ।।

अ०मा०

विना दुष्ट राजति सु अति, नृप तव सभा सुढंग ॥३०४॥

अ०क०

[दोहा]

उह मोंहन सब गुन निपुन, जानत अति रस रीति ।
है प्रतीति जाकी निपट, विना कपट की प्रीति ॥३०५॥

मुकंद

विन कायरता नृपति तुव, सब गुन अति छवि (छवि) देत ॥३०६॥

अथ समासोक्ति

प्रस्तुत वर्नन में अप्रस्तुत फुरै, सो समासोक्ति ।

मा०

कुमुदिनि हू प्रफुलित भई, देषि कला-निधि सांझ ॥३०७॥

अरुण जु यह मुष वारुणी, चुंवत चंद सुजान ॥३०८॥

अ०क०

[दोहा]

सहित सुमन रस लैन में, अलि यह महा प्रवीन ।
पावत जहीं सुवास होत, तहां[तहां] ही लीन ॥३०९॥[1]

---

2. अलवर-प्रति में अ.मा. का उदाहरण और है—
अरुन जु यह मुष वारुनी, चुंवत चंद सुजान ।

सो० [मनाथ]

मधुपहु भये सचेत तिय, लषि फूल्यौ रितुराज ।।३१०।।

अथ परिकर

आसय लियें विसेषण होइ, सो परिकर ।।३११।।

भा०

ससि बदनी यह नाइका, ता पर रति है जोइ ।।३१२।।

सो० [मनाथ]

पैनें तिय के नैंन ए, वेधत हियो निदान ।।३१३।।

अ०क०

[दोहा]

सुधा वचन आनद करन, हिये दया सरसाय ।
विकल परी उह बाल है, चलि बलि लेहु जिवाइ ।।३१४।।

अ०मा०

चलि मिलि पिय हिय ताप हरि, अंगनि चंदन चारि ।।३१५।।

अथ परिकरांकुर

अभिप्राय सहित विसेष्य जब होइ, सो परिकरांकुर ।।३१६।।

भा०

सूये हूं पिय के कहैं, नैंकु न मानति बाम ।।३१७।।

अ०मा०

चारि पदारथ देत हैं, सदा चतुर्भुज देव ॥३१८॥

अ०क०

[दोहा]

तन की रही सँभार नहि, गई प्रेम सर भोइ ।
मोंहन लपि तेरी दसा, क्यों न भट्ट अस होइ ॥३१६॥

आली या दुपहर समय, यह उपाय अभिराम ।
सब गरमी मिटि जाय जो, अत्र आवै घनस्यांम ॥६२०॥

अथ अप्रस्तुत प्रसंसा दु-विधि

प्रस्तुत विना वर्नन कीजै, सो प्रथम । प्रस्तुत के अंस को वर्नन कीजै सो दुतिय ।[६२१]

अथ प्रथम अप्रस्तुत प्रसंसा(३२२)

धनि यह चरचा ज्ञान की, सकल सर्म सुप देत ॥३२३॥

अ०मा०

धन्नि विहंगनि मैं सुतजि, इंद्र न जाचति अन्य ॥३२४॥

मुकंद

धनि वेई जे एक सों, करैं नेह निरवांह ॥३२५॥

सो०[मनाथ]

।। कवित्त ।।

दिसि-विदिसानि तें उमडि मढ़ि लीनौं नभ,
छोरि दिये धुरवाजवा से जूथ जरिगे ।
डह डहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
कुहू कुहू मुरवा पुकारि मोद भरिगे ।।
रह गये चातक जहां के तहां देपत ही,
सोमनाथ कहैं बूंदा बूंदी हू न करिगे ।
सोर भयौ घोर चहूं ओर मही मंडल मैं,
आये घन आये घन आय कैं उघरिगे ।।३२६।।

अथ द्वितिय अप्रस्तुत प्रसंसा

विष राषतु है कंठ सिव, आप धरयौ इहि हेतु ।।३२७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राज हंस मन दै सुनौं, यहै अनौंपौ गाउ ।
वांनि भुलायें आपुनी, लोग धरैंगौ नांउ ।।३२८।।[1]

।। राजा नागरीदास कौ कवित्त ।।

गहिवौ अकास पुनि लहिवौ अथाह थाह,
अति विकराल व्याल कालहि पिलाइवौ ।
सेल समर धार सहिवौ प्रहार वान,
गज मृगराज द्वै हयेरिनु लराइवौ ।

1. सोमनाथ के उदाहरण के बाद 'राजा नागरीदास' तथा 'काहू कौ कवित्त' अलवर-प्रति में नहीं दिए गये हैं ।

गिरि सौं गिरन ज्वाल माल मैं जरन,
कासी मैं करौत देह हेम मैं गलाइबौ ।
पीबौ विष विषम कबूल कवि नागर पैं,
कठिन कराल एक नेह कौ निवाहिबौ ॥३२९॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

नप विन कटा देपे सीसधारी जटा देपे,
जोगी कनफटा देपे छार लायें तन मैं ।
मौंनी अनबोल देपे सेवरारौं छोल देपे,
करत कलोल देपे वन पंडी बन मैं ॥
कायर औ सूर देपे गुनी अरु कूर देपे,
माया के अपूर देपे पूरि रहे धन मैं ।
जनम के दुषी देपे आदि अंत सुपी देपे,
अैसे नही देपे जाके लोभ नही मन मैं ॥३३०॥

अथ अर्थ श्लेष

एक अर्थ अनेक पक्ष लगै, सो अर्थ श्लेष ।

देवीदास

॥ कवित्त ॥

सरद की चांदिनी से ऊजरे अमोल सुभ,
सुंदर सुहात न दुरायें दुरिवे के हैं ।
बड़े गुनवंत देवीदास मन मोहि लेत,
पानिप सौं पूरण सुढार ढरिवे के हैं ॥
काहू एक कूर की कुराई करि फूटि गये,
फिरि मूढ़ मोरयो चाहैं बैन मुरिवे के हैं ।
मीतनि को मन मोती फूटि टूटि द्वै भये सो,
लाप देकैं जोरो कहा फेरि जुरिवे के हैं ॥३३१॥

कुलपति

॥ सवैया ॥

न वचै दुरि दुज्जन सागरहू पग लागत ते गल गाजत हैं ।
वर तेज कौ पुंज लसै सुधि आयें जिन्हैं हिय के तम भाजत हैं ॥
सति मूल धरा अनुकूल सदा सुष साजनि साजन साजत हैं ।
जस सील के धाम हैं पूरन काम तिहूं पुर राम विराजत हैं ॥[३३२]

वृंद[1]

॥ छप्पै ॥

वन वन व्याकुल फिरत कुंज कुंजनि प्रति चंपत,
गिरि गिरि चढ़ि गिरि परत कूप वापी सर झंपत,
दावानल मैं परत विरह आतप तन तावत,
जिहिं जिहि परसत जाइ ताप तिहि तिहि उपजावत,
कहि वृंद रंग सरसाव तजि मलिन अंग निसि दिन गवन ।
सज्जन वसंत विछुरत भयो विरही जन ग्रीषम पवन ॥३३३॥

अथ प्रस्तुतांकुर

प्रस्तुत अर्थ मैं प्रस्ताव्य वंनिये सो प्रस्तुतांकुर ।

भा०

कहां गयो अलि केतु की, छाडि सुकोमल जाय ॥३३३॥

1. वृंद का छप्पै अलवर-प्रति में नहीं मिलता ।

विहारी

[दोहा]

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल ।
अली कली ही सौं बिंध्यौ, आगें कौंन हवाल ॥३३४॥

जिन दिन देषे उह कुसुम, गई सुबीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ॥३३५॥[1]

गिरधर

[दोहा]

भौंरा ए दिन कठिन हैं, सहि आपुनें सरीर ।
जौ लौं फूलै केतुकी, तौ लौं बिरमि करीर ॥३३६॥ इत्यादि

का०

कैसें आज सेवन सुगंध तजि सेवती को,
कौन बन बेलिनु भमर आनि भूलि हौ ॥३३७॥

केसव

॥ सवैया ॥

जानु नहीं कदली की गलीनि भली विधि लै बदरी मुह लावै ।
चाहैं न चंप-कली की थली मलिनी नलिनी की दसा न सिधावैं ॥
जों कोऊ केसव नागर बंग लता लवली अवली लै चरावै ।
पारिख दाख चबाइ मरी किन ऊंटहि ऊंट कटेरोई भावै ॥३३७॥

1. प्रस्तार-प्रति में बिहारी का दूसरा दोहा नहीं दिया गया है ।

अथ अन्योक्ति[1]

और पें डारि कें और कों समुझाइये, सो अन्योक्ति।

गिरिधर

भौंरा भ्रम दे छाडि कें, भ्रमत काहि इहि ठौर।
यहै चित्र कौ कमल है, तू समुझै सो और ॥३३८॥

धोखें दारचौ के सुवा, गर्यौ नारियर धांन।
पम पाई पाई सजा, तब लाग्यौ पछितान ॥
तब लाग्यौ पछितान बुद्धि अपनी कौं रोयौ ॥इत्यादि

[दोहा]

चल्यौ जाहु इहा को करै, हाथिनु कौ व्यौपार।
या नगरी तींनू बसै, धोबी ओड कुम्हार ॥३३८॥

वृंद

[दोहा]

समै पाइ समुझत नहीं, ते पीछें पछितात।
समै फूल फल होत है, समैं पात झरि जात ॥३३९॥

---

1. जोधपुर प्रति में 'अन्योक्ति अलंकार' दिया गया है, परन्तु अलवर-प्रति में 'अन्योक्ति' न देकर 'प्रस्तुतांकुर' के बाद 'दुविधि पर्यायोक्ति' का ही विवरण है। साथ में यह स्पष्ट कर दिया है कि कुछ लोग 'प्रस्तुतांकुर' को ही 'अन्योक्ति' कहते हैं। शायद इसीलिए अलवर-प्रति में 'अन्योक्ति' को अलग देने की आवश्यकता नहीं समझी। इन बातों से ऐसा लगता है कि 'अलवर-प्रति' जोधपुर-प्रति की संशोधित प्रति है। जो बातें जोधपुर-प्रति में अनावश्यक समझी गई वे अलवर प्रति में नहीं है।

॥ सवैया ॥

वारिद वारि भरयो गरजै कहा छोरि दै वारि अरे अभिमानी ।
केतिक द्यौस को प्यासो पपीहरा पीवहि पीव रटै मृदुबानी ॥
ऐसो समैं न मिलै कबहूं सुनि लै कवि गोविंद की यों कहानी ।
पौंन प्रचंड चलै छिन मैं तो कहां तू कहां पपीहा कहां पानी ॥३४०॥

[सवैया]

पटानि तें दान चुचात भली विधि जान्यों जबै जिय मत्त गयंद ।
महा मुद ह्वै मधु गंध लुभाइ कैं आयो तहां इक भौंर गुविंद ॥
विराजि विभूषित कीनों सुबारण डारण बूरि लग्यो मति मंद ।
करी सिर धूरि परी पर सिद्धि अलिंद गयो अरविंद के वृंद ॥३४१॥

कोऊ प्रस्तुतांकुर ही सौं अन्योक्ति कहत हैं ।

अथ पर्यायोक्ति दु-विधि

कछु रचना सहित बात कहियै, सो प्रथम । मन भांवती कारज कछु मिस करि कें साधि लीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पर्यायोक्ति(ना०)

चतुर उहै जिहि तुव गरैं, विन गुन डारी माल ॥३४१॥

प्र०का०

[दोहा]

जिहि पद नग गंगा प्रगट, भई अवनि मैं आइ ।
तो तन लषि जिहि करज, छत मो अघ गये विलाइ ॥३४२॥

अ०मा०

जिहि उर धरि भव तरि सु, जिहि सुर तरु जुत महि कीन ॥३४३॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

रीझि रही तुम कौं निरषि, अति प्रवीन सो वाल ।
आज सांवरे तैं किये, जिहि वहुरंगी लाल ॥३४४॥

चिंतामनि

॥ कवित्त ॥

सौंने कौन रूपे कौन जान्यौं जात पन्ननि कौ,
हीरे कौन मोती कौन काहे को वनायौ है ।
देव कौ चढयौ है कि दिवारी कौ चढयौ है काहू,
गुनी को गढ़यौ है विन गुन गर आयौ है ॥
चिंतामनि प्रान प्यारे उर सौं उतारि लीजै,
नैंक मेरे हाथ दीजै मोहू मन भायौ है ।
छल को छला सौ इंद्रजाल की कला सौं,
यह सांची कहौ हा हा हरि हार कहां पायौ है ॥३४५॥

॥ का०—सवैया ॥

क्यौं घनस्यांम इति द्रुचीतौ तुम मो तन द्रष्टि करौ सुषदाई ।
कंज गुलावनि की अरुणाई तें लाल गुलाल हू तें सरसाई ॥
नैंननि पैं अति घेरु घनौं धनि है रंगरेजनि की चतुराई ।
सांचो कहौ इनि आंषिनि कौ तुम दीनी कहा नँदलाल रँगाई ॥३४६॥[1]

. प्र०+ अ०क० जिन पद नख गंगा प्रगट, भई अवनि मैं आई ।
तो तन लखि जिहि रज-छतो, अघ गए विलाई ॥
अ०क० जिहि उर धरि भवतीर सु जिहि सुरतर जुत महि कीन ।
सो० रीझि रही तुमकौं निरखि, अति प्रवीन को वाल ।
आज सांवरे तैं किये, जिहि वहूरंगी लाल ॥

अथ दुतिय पर्यायोक्ति(भा०)

तुम दोऊ बैठो इहां, जाति अन्हावन ताल ।।३४७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

लखि मोहन तिय को वदन, मृदु मुसकाय अमोल ।
लट सुरझैबे के मिसें, छिगुनी छियो कपोल ।।३४८।।

अ०भा०

तुम दोऊ बैठो इहां, आवति कुंज निहारि ।।३४९।।

अ०क०

[दोहा]

बैठो नीकी छांह मैं, तुम दोऊ वट मूल ।।
हौं लैं आंऊं कुंज तैं, हरहि चढ़ावन फ़ूल ।।३५०।।

केसव

।। कवित्त ।।

वेग कें कुमारिका कीं व्रज की कुमारिकानि,
मांझ सांझ केसोदास त्रास पग पेलिकें ।
काम की लता-सी चल प्रेम फासी-सी अमल,
बुद्धि बल राधिका के कंठ भुज मेलिकें ।।

दौरि दौरि दूरि दूरि पूरि पूरि अभिलाष,
लाष लाष भांति की अनूप रूप केलिकें ।
जनी के अजिर आज रनी मैं सजनी री,
सांची कीनी स्याम चोर-मिहीचनी षेलिकें ।।३५६।।

।। संभु कौ कवित्त ।।

कान्ह कौं चेली बनाइ कें संभु गई वृषभान के भौंन गुसाइनि ।
देषन कौं जुरि आंई सबै तिय डारी सहेलिनु राधिका पाइनि ।।
अंक लगाइ विभूति दंई पुनि यौं कहि कें चित चौगुने चाइनि ।
याहि इकंत लै मंत्र जपै तौ पैं होइ सबै ब्रज की ठकुराइनि ।।३५७।।

अथ व्याज स्तुति दु-विधि

निंदा मिस स्तुति होइ, सो प्रथम । स्तुति मैं और की स्तुति होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम व्याज स्तुति(भा०)

पतित चढ़ाये स्वर्ग लै, गंग कहा कहौं तोहि ।

अ०क०

[दोहा]

कहा सिपाई कुटिलता, लाल द्रगनि दुप दैंन ।
जा तन ताकत नैंक हौ, ता के लगत न नैंन ।।३६०।।[1]

---

1. 'अ०क०' के वाद अलवर-प्रति में सोमनाथ का यह दोहा और है—

घर मैं एक विसाति है, यह कराल किरवान ।
पर धन यों हरि लेत हो, निरपे भले सुजान ।।

।। काहू कौ सवैया ।।

कानिनि लौं अंषियां है तिहारी हथेरी हमारी कहां लगि फैलि है ।
मूंदि है तौ तुम देपति हौ हम कोरें तिहारी कहां धौंस केलि हैं ।।
कान्हर हू कौ सुभाव यहै उन्है तौ हम हाथनि ही पर हेलि हैं ।
राधे जू मानौं भलो कि बुरौ अंषि-मीचनौ संग तिहारें न षेलि हैं ।।३६१।।

अथ द्वितिय व्याज स्तुति

आप तरै तारैं सबनि धनि धनि हरि के दास ।।३६२।।

मुकंद

[दोहा]

धनि विभीषण राम मिलि, अजहुं करत है राज ।
धनि पांडव हरि कृपा तैं, लहे सकल सुष साज ।।३६३।।

अ०मा०

[दोहा]

तूहीं धनि तमाल है, करत रहत है केलि ।
प्यारी भुज-सी पल्लवित, तो सौं लपटी वेलि ।।३६४।।

अथ व्याज निंदा दु-विधि

स्तुति मिस निंदा होइ, सो प्रथ[म] । निंदा मिस और की निंदा होइ, सो द्वितिय ।

अथ प्रथम व्याज निंदा(अ०मा०)

धनि धनि सषि मोहित भई, नष रद छत जुत अंग ।।३६५।।

ध्र०क०

[दोहा]

मोहँ ही मन लेति हैं, छवि रावरी रसाल ।
आये ही मेरे लियें, छके छवीले लाल ।।३६६।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कहा कहौं तो सौं सषी, भली करी है आज ।
दुसह दंद नप वेदना, सवही आय मो काज ।।३६७।।

कु०[लपति]

।। सवैया ।।

देह धरी पर काज ही कौं जग मांझ है तो सी तुही सव लायक ।
दौरें थकें तन स्वेद भयौ समझी सषी ह्वां न मिले सुषदायक ।।
मोही सौं प्यार जनायौ भली विधि जानी जू जानी हितून की नायक ।
सील की मूरति सांच की सूरति मंद किये जिहि काम के सायक ।।३६८।।

।। का० कवित्त ।।

वूझति हौं कान्ह कहौ आपु ही अनौपे भये,
परम चतुर चतुराई सौं गडतु हौ ।
सामुहँ न होत केतौ साहस करत तुम,
नीचे ही चहत हित वीच ही पगतु हौ ।।
मेरी दीठि परें दीठि नेंकु न जुरति ऐसी,
स्यानि सौं लगे हौ आछी भांति सौं पगतु है ।

मेरे जानि लाल कबू तजिये न लाज आज,
लाज भरे लोचन सों नीके ही लगतु हो ॥३६९॥[1]

अथ दुतिय व्याज निंदा(ना०)

सदा छीन कीनीं न तू, चंद मंद है सोइ ॥३७०॥

अ०फ०

[दोहा]

समुझावत ऊधो कहा, झूठी बात बनाइ ।
उह तो कपटी कान्ह हैं, दासी लिये लुभाइ ॥३७१॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

बँसुरी सठ सोई निपट, ऐसी रची बनाइ ।
कीनी नहीं दुसाल तू, अति छाती चहकाइ ॥३७२॥

अ०मा०

कौंन सोति उह अधम है, जिहि मारयो तुव मांन ॥३७३॥

---

1. अलवर-प्रति में सोमनाथ का यह दोहा और है—

सदा कहौं तो सौं सखी, भली करी है आज ।
दुसह दुंद तन वेदना, सब ही आय सो काज ॥

।। सेनापति कौ कवित्त ।।

विनहीं जिरह हथयार विन वाके अव,
भूलि जिन जाहु सेनापति समुझाये हौ ।
करि डारी छाती पौरि घायनि सौं राती तुम,
मोहि धौं बतावौ कौंन भांति छुटि आये हौ ।
आवौ आप सेज करौं औषधि की रेज प्यारे,
मैं तौ तुम्हैं पूरवले पुन्यनि तैं पाये हौ ।
कीनें कौंन हाल उह वाघिनि-सी वाल वाहि,
कोसति हौं लाल जानैं फारि फारि पाये हौं ।।३७४।।

अथ त्रि-विधि आक्षेप

निषेध कौ आभास जहां होइ, सो प्रथम । पहिलैं कछु कहियै फिरि ताही कौं फेरियै, सो दुतिय । वचन की विधि तैं निषेध दुरै, सो तृतीय ।

अथ प्रथमाक्षेप(भा०)

हौ नहि दूती अगनि तैं, तिय तन ताप विसेष ।।३७५।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हठ करि वरजति हौं नहीं, चलियै लाल विदेस ।
पैं विरहनि कौं देइगौ, सांवन मांस कलेस ।।३७६।।

अ०क०

[दोहा]

तुम सौं सरस सनेह पिय, छिन छिन मैं सरसात ।
हौं न कहति मुप तैं कढ़ति, चित के हित की वात ।।३७७।।

केसव

॥ कवित्त ॥

नीकें कें किवार दै हौं द्वार द्वार दरवान,
केसौदास आस पास सूर जौं न छावैगो ।
छिन में छवाइ लै हौं छप्पर अटानि आज,
आंगन पटाइ लै हौं जैसो मोहि भावैगो ॥
न्यारे न्यारे नारदानि मूंदि हौं झरोषा जांन,
पाइ है न पांनी पौंन आवन न पावैगो ।
प्रीतम तिहारे चलैं मो पह मरन मूढ़,
आवन कहत सुतो कौंन मग आवैगो ॥३७८॥

अथ द्वितियाक्षेप(ला०)

मीन करन दै दरस तू, अथवा तिय मुष आहि ॥३७९॥

अ०प०

[दोहा]

हित करि चित चुराइयै, कहि सषि पिय सौं जाइ ।
तू जिन जाहीं ही सवै, कहि लैहौं समुझाइ ॥३८०॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

अन्यचेतो तिय कौं इहां, ल्यावति सिषै सयान ।
कै मनि मंदिर मैं उहां, चलियै क्यौं न सुजान ॥३८१॥

अथ तृतीयाक्षेप(भा०)

जाइ दई मो जनम दै, चले देस तुम जाहि ।।३८२।।

ग्र०क०

[दोहा]

कीजै गवन विदेस जौ, तुमहि सुहायौ लाल ।
फूल्यौ सरस सुहावनौं, निरषौ नैंक रसाल ।।३८३।।

अ०भा०

गवन हु जो ह्वै है पिया, जनम मोर उहि देस ।।३८४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

दंपति अंक भरन समै, ढ़िग आवति अलि हेरि ।
मधुर वोलि बीरी नवल, विहसि मगाई फेरि ।।३८५।।

केसव

।। कवित्त ।।

चलत चलत दिन वहुत वितीत भये,
सकुचत कित चित चलत चलायें हीं ।
जात हैं ते कहौं कहा नांहि नें मिलत आनि,
जानि यह छाडो मोह वाढ़त वढ़ायें हीं ।
मेरी सौं तुमहि हरि रहियौ सुषहि सुष,
मोहू है तिहारी सौं रहौंगी सुप पायें हीं ।
चलें ही वनत तौ पें चलियै चतुर पिय,
सोवति ही छाडि यौं जगौंगी तुम्हें आये हीं ।।३८६।।

अथ विरोधाभास

पद मैं विरोध अरु अर्थं जाकौ अविरोध, सो विरोधाभास ।

।। काहू कौ दोहा ।।

हस्त बंध जे नृपति हैं, जोगी लिप्त विभूति ।
हरि सुमरत जे भगत हैं, तीनूं गये बिगूति ।।३८७।।

केसव

।। कवित्त ।।[1]

परम पुरुष कुपुरुष संग सोभिजत,
दिन दान मति अरु दान सौं न रति है ।
सूरज कुल कलस एहु के रहत सुप,
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति है ।
अकर कहावत धनुप धरैं देपियत·······इत्यादि ।।३८८।।

अथ बिभावना छ-विधि

बिना ही कारण कारज उतपंन्न होइ, सो प्रथम । अपूर्ण कारण तैं पूरण कारज होइ, सो दुतिय । प्रतिबंधक के होतें हूं पूरण कारज होइ, सो तृतीय । अकारण वस्तु तैं कारण उत्पन्न होइ, सो चतुर्थ । काहू कारण तैं विरुद्ध कारज होइ, सो पंचम । कारज तैं कारण उत्पन्न होइ, सो छठो ।

अथ प्रथम बिभावना(भा०)

बिन जावक दीनें चरण, अरुण लपे हैं आज ।।३८९।।

---

१. [illegible]-प्रति में केसव को यह कवित्त नहीं है ।

अ०क०

[दोहा]

अलबेली रुचि सौं रमैं, उहीं कदम की छांह ।
विन हीं पिय निरखैं हरषि, विहसि पसारैं वांह ॥३६१॥

मुकंद

[दोहा]

विन तमोल तेरे अधर, सोभित लाल रसाल ।
अरु काजर विन नैंन ए, कजरारे नव वाल ॥३६२॥

का०तु०

काहे कौं गुलाल लाल वाल भरिवे कौ श्रम करो ।
विन ही गुलाल लाल लाल भये जात हैं ॥३६३॥

कल्यान

काजर विन कारी री तेरी आंपैं फुलेल विनु ।
चिकुर चीकने अधर आरक्त विन पांन·······इत्यादि । [३६४]

अथ दुतिय विभावना(भा०)

कुसुम वान कर गहि मदन, सब जग जीत्यौ जोइ ॥३६५॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मो पैं नहि वरनत वनैं, तेरे तरुन विचार ।
नैंक विहसि चेरे किये, हरि त्रिभुवन करतार ॥३६६॥

मुकंदजू

नेंक मंद मुसकाइ कें, चित लै गयो चुराइ ॥३९७॥

केसव

॥ कवित्त ॥

चंचल न हूजै नाथ अंचल न ऐंचौ हाथ,
सोवे नेंक सारिका हू सुक तौ सुवायो जू ।
मंद करी दीप दुति चंद-मुष देपियत,
दौरि कें दुराइ आंऊं द्वार त्यौं दिपायो जू ॥
मृगज मराल बाल बाहिरें बिडारि देंऊ,
भावें तुम्हे केसव सु मोहू मन भायो जू ।
छल के निवास ऐसे बचन बिलास सुनि,
सोगुनों सुरत हू तें स्याम सुप पायो जू ॥३९८॥

॥ सवैया ॥

पाय परें मनुहारि करें पलिका पर पाय धरयो भय भीनें ।
सोइ गई कहि केसव कैसें हूं कोरही कोरिक सौंह न कीनें ॥
साहस कें मुप सौं मुप छ्वै छिन मैं हरि मानि सबै सुप लीनें ।
नेंक उसासहि के उस सें सिगरेई सुगंध बिदा करि दीनें ॥३९९॥

का०

[सवैया]

परदेस तें कोऊ न आयो भटू उठि रोज मनोरथ कीजत है ।
निस नींद न आवति सेज बिषें करि कोटि उपायनि छीजित है ॥
बढ्यो प्रेम बियोग बिहाल हियें असुवानि सौं यौं तन भीजत है ।
निज प्रीतम की उनहारि सपी ननदी मुप देपी कें जीजित है ॥४००॥

अथ तृतीय विभावना

निसि दिन अति संगति तऊ, नैंन राग की पांनि ।।४०१।।

अ०मा०

तरवनि रवि विधु मुष निकट, बढ़त जु कच तम स्यांम ।।४०२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सदा सास बरजै घरी, उघरन देइ न अंग ।
तऊ जाय तिया कुंज मैं, विहरै हरि के संग ।।४०३।।

अ०क०

गुरुजन दाढ़ दढ़े न ए, परे परे बस मैं न ।
नागर नट की सैंन सौं, वर वट अटके नैंन ।।४०४।।

गदाधरजू

कचनि रचना राहू ढ़िग ही, उदित बदन मयंक ।। इत्यादि ।।

मुकंद

।। सवैया ।।

सास पिजै बरजै ननदी तरजै पति भांति अनेक रिसैवौ ।
और अनेक हसैं गुरु लोग नहि परवाह कितो समुझैवौ ।।
आनन चंद मुकंदजू को लषि नैंन चकोरनि को सुष दैवौ ।
नेह लग्यौ नंदलाल सौं वाल लयौ नित मंजु निकुंज कौ जैवौ ।।४०५।।

अथ चतुर्थ विभावना(ना०)

कोकिल की बांनी अवै, बोलत सुन्यौं कपोत ।।४०६।।

मुकंद

[दोहा]

आज अनोपी मैं सुन्यों, जामें सरस सवाद ।
संपनि तें निकसै मधुर, मृदु मृदंग को नाद ॥४०७॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

कहा कहौं ता घरी तें, उठत हिये में साल ।
जब तें लख्यो मयूर वन, चलत हंस की चाल ॥४०८॥

अ०क०

कियो सुधारस पांन सखि, अधर विद्रुम तें आज ॥४०९॥

अ०गा०

पिक स्वर सुनें कपोत तें, सखि बड अचिरज आहि ॥४१०॥

अथ पंचमी विभावना(भा०)

करत मोहि संताप यह, ससी सीतकर सुद्ध ॥४११॥

मुकंद

तव मुख मृदु अरविंद तें, करकस वचन न भाखि ॥४१२॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

प्यारी तू क्यों करि रहि, अरुनत नैंने नैंन ।
कढ़त मधुर अधरानि तें, जहर लपेटे बैंन ॥४१३॥

अ०क०

अधिक सलौंनो रूप तउ, मधुर लगत अषियानि ॥४१४॥

विहारी

किती मिठास दयी दई, इते सलौंने रूप ॥४१५॥

केसव

मांपन-सी जीभ मुष कंज ऐसी कोमल पें,
काठ-सी कठेठी बातें कैसें निकरति हैं ॥४१६॥

अथ छठौ विभावना (भा०)

नैंन मीन तें देषि यह, सरिता वहति अनूप ॥४१७॥

सो०[मनाथ]

तिय तन चंपक-माल तें, प्रगटत जल-कन पुंज ।[४१८]

अ०क०

निकसत मुप ससि सौं वचन, रस सागर सुष दैंन ॥४१९॥

बिहारी

[दोहा]

वेधक अनियारे नयन, बेधत करन निषेध ।
बरबट बेधत मोहि यों, तो नासा को बेध ॥४२०॥

रही जु छवि तन वसन मिलि, बर्नि सकै सुन वैन ।
अंग ओप अंगी दुरै, आंगी आंग दुरैन ॥४२१॥

अथ विसेषोक्ति

कारन तें कारज उतपन्न होइ, सो विसेषोक्ति ।

ना०

नेह घटत नहि हिये तउ, काम दीप चित मांहि ॥४२२॥

प्र०ना०

कटु वचन परद छत कियें, पिय हिय हित नहि जाइ ॥४२३॥

मुकंद

सापराध पिय निरपि कैं, तऊ न कीनों मान ॥४२४॥

प्र०श०

[दोहा]

आली या ब्रज छैल के, अंग अंग रस पानि ।
निरपत मैं नहि होत है, इन अंषियानि अघानि ॥४२५॥

।। कवित्त ।।

आज ब्रज-सुंदरीनि साजे अंग अंग आछें,
मोहिनी कें मोहन के मोहन के दाव हैं ।
आभूपन अंवर अतर तर करि चारु,
चौप सौं चतुर अति गरव बढ़ाव हैं ।।
तदपि किसोरी गोरी भोरी की सहज सोभा,
गोविंद कें चढ़ी चित चौगुने ही चाव हैं ।
लौंनी लाडिली के ब्रगनि के ठग पीके ही के,
फीके लगें तोके सब ही के हाव भाव हैं ।।४२६।।

।। देव कौ सवैया ।।

प्यारे तिहारे के मोहिवे कौं सव सौति सिंगार करैं वहु तेरौ ।
पैं अपुनौ पन हारि करैं मनुहारि निहारि(निहारि)सषी मुष तेरौ ।।
तेरे सुहाग के ऊपर वारियें औरनि कौ रंग राग घनेरौ ।
देव निसाकर जोति जगैं न लगै जुगनूंन कौ पुंज उजेरौ ।।४२७।।

अथ असंभव

संभवै नही अैसौ कारज वर्नियॆ, सो असंभव ।

भा०

गिरिवर धरि है गोप सुत, यह को जानत आज ।।४२८।।

अ०क०

[दोहा]

को जानत हौं इंद्र कौं, जीति कलपतरु ल्याइ ।
सति भामा के सदन मैं, हरि लगाइ हैं आइ ।।

अ०मा०

किन देख्यौ यह भुवन पर, कहत जु ध्रुव थिर आहि ॥४२६॥

सो० [मनाय]

[दोहा]

नींद भूप रुचि टरि गई, बिछुरत ही बलवीर ।
को जानत हो द्रुपद यह, ह्वै है त्रि-विधि समीर ॥४३०॥

मुकंद

को जानत हो सिंधु कों, कपि उलंघि है आज ॥४३१॥

अथ त्रि-विधि असंगति

कारज अर कारण न्यारी न्यारी ठौर होंइ, सो प्रथम । और ठौर के काम और ठौर कीजै, सो दुतिय । और काज आरंभियै और ही कीजै, सौ तृतीय ।

अथ प्रथम असंगति(भा०)

कोइल मदमांती भई, झूमत अंबा मोर ॥४३२॥

सो० [मनाय]

रचत गह-गहो मोहि यों, पांन रावरे पात ॥४३३॥

विहारी

[दोहा]

द्रग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गांठि दुरजन हियें, दई नई यह रीति ॥४३४॥

वाढत तो तन उरज अति, भर तरुनई विकास ।
वोझनि सौतिन के हियें, आवति रूंधि उसास ॥४३५॥

मुकंद

तुम निसि जागे मो द्रगनि, भई अरुनई आई ॥४३६॥

केसव

कान्ह लगावत चंदनें, मेरे नैंन सिरात ॥४३७॥

नंददासजू

जागे रैंनि तुम सब, नैंना अरुन हमारे ।
तुम कीनों प्रेमपन घूमत हमारो मन, कारन कौंन प्रान प्यारे ॥इत्यादि।
[४३८]

अथ दुतिय असंगति(सो०)

तेरे अरि की अंगना, तिलक लगायो पाय ॥४३९॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

तिय सिगार आरंभ ही, आवत निरपे लाल ।
ईंगुर लायौ चरन मैं, रच्यौ महावर भाल ॥४४०॥

अ० क०

[दोहा]

बंसी धुनि सुनि ब्रज बधू, चली बिसारि विचार ।
भुज भूषण पहरे पगनि, भुजनि लपेटे हार ।।४४१।।

अथ तृतीय असंगति(भा०)

मोह मिटायो नाहि प्रभु, मोह बढ़ायो आइ ।।४४२।।

सो० [मनाय]

[दोहा]

राजी गूजरी एक कर, त्यों हीं लपे सुजान ।
आदर करि तिय नें तबै, बिहसि पवाये पान ।।४४३।।

अ० क०

[दोहा]

दरसन दै अब ही चले, बातें मधुर बनाइ ।
विरह मिटायो नाहि पिय, विरह बढ़ायो आइ ।।४४४।।

बिहारी

आई जा मन लेन जिय, नेह हि चली जमाइ ।।४४५।।

अथ त्रि-विधि विषम

अन मिलते को संग होइ, सो प्रथम । कारण को रंग और अरु कारज को और रंग होइ, सो दुतिय । भलो उद्दम किये तें बुरे फल की प्राप्ति होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम विषम(भा०)

अति कोमल तन तीय की, कहां बिरह की लाय ॥४४६॥

अ०मा०

हरि उहि मुकति पठै दई, वकी तकी ही और ॥४४७॥

मुकंद

रसिक स्याम सुंदर सुघर, कहां कूवरी जोग ॥[४४८]

सो[मनाथ]

कहां उदर मृदु कान्ह को, कहां कठोर यह दाम ॥४४९॥

॥ सवैया ॥

सागर को जल पार कियौ अरु कंटक पेड गुलाव कौ कीनौं ।
मित्रनि मांझ वियोग रच्यौ पय पान विषद्धर कौं पुनि दीनौं ॥
पंडित लोग दरिद्रित गोविंद मूढ़नि कौं धन धाम नवीनौं ।
अंकित शुद्ध शुधा वरपै विधु या विधि सौं विधि है बुधि हीनौं ॥४५०॥

॥ काहू को कवित्त ॥

सीता पायौ दुख अरु पारवती बंझा तन,
नृग नें नरक पायौ गनिका गति पाई है ।
वें न होइ सुषी हरिचंद नृप दुषी वलि,
भूप कौं पताल स्वर्ग पूतना पठाई है ॥
संकर कौं विष विषधर कौं दयौ है पय,
पांडव पठाये जहां हेम अधिकाई है ।
हाल ठकुराइसि मैं पोलि को अचंभौ कहा,
ईश्वर के घर ही तें पोलि चलि आइ है ॥४५१॥

अथ द्वितिय विषम

पन्नगलता अति स्याम तें, उपजी कीरति सेत ॥४५२॥

मुकुंद

हिरण्यकस्यप कें हरि भगत, उग्रसेन कें कंस ॥४५३॥

अ०मा०

घन तऊ स्यामल देखियत, बरषत उज्जल नीर ॥४५४॥

सो०[मनाथ]

असित रावरे बिरह तें, जरद रँगी ब्रज-बाल ॥४५५॥

॥ सूरति कौ सवैया ॥

ये मग अंधनि हैं पग दा चलिबौ इहि नीके निही कौं निवारयौ ।
सूरति थाह बतावत वे इहि प्रेम अथाह के बारिधि डारयौ ॥
ये बस बास बसावत है इहि बास छुटाइ उजारिनि पारयौ ।
देखहु सो हरि की बंसुरी इहि कैसो सुवंस को वंस बिगारयौ ॥४५६॥

अथ तृतीय विषम(भा०)

ससि लायो घनसार तें, अधिक ताप तन देत ॥४५७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

नेह बढ़ैबे के लियें, लखी रावरी ओर ।
सो तुम हम सों भावते, मिरती गही मरोर ॥४५८॥

विहारी

[दोहा]

मार सुमार करी अरी, परी मरीहि न मारी ।
सींचि गुलाव घरी घरी, अरी वरीहि न वारि ।।४५९।।

अथ त्रि-विधि सम

जथा जोग्य कौ संग होइ, सो प्रथम । कारज मैं कारण की बांनि देपियै, सो दुतिय । श्रम विना कारज उद्दम करत ही सिद्धि होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम सम(भा०)

हार वास तिय उर करचौ, अपनें लायक जोइ ।।४६०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

जानिव रावरि साहिवी, चित चतुराई आनि ।
कीनी रवि सौं मित्रता, हिमकर नें सुष मांनि ।।४६२।।

अ०क०

[दोहा]

सागर तें कमला निकसि, निरषे आप समान ।
असुर सुरनि निदरे वरे, गुननि धान भगवान ।।४६२।।

मुकंद

पान पीक ओठनि बनें, नैंना काजर जोग ।।४६३।।

केशव

॥ सवैया ॥

नागरि-सी कान्ह तरुनिनि संग मैं चंद्र कलानि मैं चंद्रकला-सी ।
दामिनि-सी घनस्यांम समीप लसै तन स्यांम तमाललता-सी ॥
सोने की सी कसी दूरि भयें तें लगें उर हार विहार प्रभा-सी ।
साधिक औषधि-सी कहि कें सब काम के धाम मैं दीपसिखा-सी ॥४६४॥

अथ द्वितिय सम(ना०)

तीन संग अनिरुज नहीं, लछिमी जलजा आहि ॥४६५॥

म०क०

प्यारी चितवनि रावरी, रही अतुल रस भोइ ॥४६६॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मदन मनोहर स्यांम के, सुत सुंदर सुखदानि ।
क्यों न होइ प्रद्युम्न मैं, तिय वस करनी वानि ॥४६६॥

अथ तृतीय सम(ना०)

जग ही को उद्यम कियो, नीकैं पायो ताहि ॥४६८॥

म०क०

[दोहा]

होरी खेलन स्यांम सों, सांज सवारी बाल ।
तब ही लियो गुलाल कों, आय गये नंदलाल ॥४६९॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

अलवेले सुंदर सुघर, नित विनोद के धाम ।
जतन करत ही आप तें, सो वर पाये स्याम ।।४७०।।

इहां रुक्मिनीजू कौ समय है ।

अथ विचित्र

फल की इच्छा करि कैं अरु विपरीति को जतन कीजे, सो विचित्र ।

नवत उच्चता लहन कौं, जे हैं पुरुप पवित्र ।।४७१।।

अ०मा०

न्हात लेत अधगति वुड कि, यह उचगति की प्रीति ।।४७२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चाहत सुप संपति सदा, अमरनि की परसंग ।
छाडि जगत की गति जती, भसम लपेटत अंग ।।४७३।।

अ०क०

[दोहा]

पति-सेवा मैं रति रहति, नित हित चित सौं वाल ।
नवत ऊचाई लहन कौं, यह चतुरई बिसाल ।।४७४।।

का०लु०

मेरे पाय परे तेरे पाय परिवे के काज,
पाय परि गरें परिवे के दाय दीने हैं ॥४७४॥

अथ दु-बिधि अधिक

आधार तें आधेय अधिक होइ, सो प्रथम । आधेय तें आधार अधिक होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम अधिक(ना०)

सात दीप नव खंड में, कीरति नांहि समात ॥४७५॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कैसें ल्याऊं नवल तिय, सुनिये श्री ब्रजराज ।
झलकै पलक पछेलि कें, अँखियनि में तें लाज ॥४७६॥

अ०क०

[दोहा]

मोहन रसना एक सों, एकै बरन्यों जात ।
अगनित गुन हैं रावरे, त्रिभुवन में न समात ॥४७७॥

अथ दुतिय अधिक(ना०)

सप्त सिंधु केतो जहां, तुव गुन बरनें जात ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

व्यापक चौदह भुवन मैं, अनंत गति मित्त ।
सो रघुवीर सुजान के, हिय मैं विहरै नित्त ।।[४७८]

अ०क०

[दोहा]

अषिल लोक जाके उदर, भींतरि रहे समाइ ।
सो हरि तैं कैसैं अहे, राषे द्रगनि वसाइ ।।४७९।।

का०तु०

एते वडे द्रग होते न मेरे तौ, कान्ह कहौ तुम कैसें समाते ।।४८०।।

अथ अल्पाल्य

आधेय तें आधार सूक्षम होइ, सो अल्पाल्य ।

भा०

अँगुरी की मुंदरी हुती, भुज मैं करति विहार ।।४८१।।

सो[मनाथ]

[दोहा]

पिय वियोग तें तरुनि की, पियरानि मुष जोति ।
मृदु मुरवा की घूंघरी, कटि मैं किंकिनि होति ।।४८२।।

प्र०ऊ०

[दोहा]

मोहि सदा चाहत रही, चित सौं नंदकुमार ।
मो मन नाजुक नां सहै, नैंक रुपाई भार ॥४८३॥

प्र०मा०

छिगुनि छला पिय गवन सुनि, भयौ जु माला कार ॥४८४॥

अथ अन्योन्य

परसपर उपकार वर्निए, सो अन्योन्य ।

मा०

ससि सौं निसि नीकी लगै, निसि ही मैं ससि-सार ॥४८५॥

सो०[मताय]

[दोहा]

पावत सोभा सीस जब, धरियै मुकट बनाइ ।
होइ बडाई मुकट कौं, जब हरि सीस लगाइ ॥४८६॥

प्र०क०

पिय सौं नीकी तिय लगै, तिय सौं नीकौ नाह ॥४८७॥

।। रसपान कौ कवित्त ।।

छूट्यौ गृह-काज लोक-लाज मन मोहिनी कौ,
मोंहन कौ छूटि गयौ मुरली वजाइवौ ।
अव दिन द्वै में रसपांन वात फैलि जै हैं,
ए री ए कहां लौं चंद हाथनि छिपाइवौ ।।
कालिंदी के कूल कालिह मिले हे अचांनक ही,
दोउनि कौ दुहूं ओर मृदु मुसकाइवौ ।
दोऊ परें पैंयां दोऊ लेत हैं वलैयां उन,
भूलि दई गैयां उन गागरि उचायवौ ।।४८८।।

।। सवैया ।।

प्यारी विहारी पै हैं वलिहारि विहारी सरव्वसु प्यारी पें वारें ।
प्यारी के जीवनि मूरि विहारी विहारी कैं प्यारी ही प्रान पधारें ।।
प्यारी विहारी की है सव भांति विहारी प्रिया कौं गुंविद उचारें ।
प्यारी सजें सिर सांवरी सारी विहारी पितांवर कौं नित धारें ।।४८९।।

[सवैया]

छीर सौं नीर मिल्यौ जव छीर नें नीर वनायो है आप समानौं ।
छीर कैं आच दई तव नीर जर्यौ पहलें हित ही मैं लुभानौं ।।
नीर कैं दाधत भाजि कें छीर सुजान कृसान मैं कीनौं पयानौं ।
नीर दै छीर छिमायौ गुंविद मिताई के मित्त यहै गुन जानौं ।।४९०।।

देव०तु०

मोहि मोहि मोंहन कौ मन भयौ राधामय,
राधा मन मोहि मोहि मोंहन मई मई ।।४९१।।

अथ त्रि-विधि विसेष्य(भा०)

विना आधार आधेय होइ, सो प्रथम । थोरोई आरंभ अधिक सिद्धि कौं देई, सो दुतिय । एक वस्तु कौं अनेक ठौर वर्नन कीजै, सो तृतीय ।

अव प्रथम विसेप्य(मा०)

नभ ऊपर कंचनलता, कुसम स्वच्छ है एक ।।४९२।।

सो०[मनाग]

[दोहा]

लसत सरोवर गगन पै, निकट जमुन की धार ।
दुहूं ओर चकवा लसें, लपि द्रग भये सुमार ।।४८३।।

अ०मा०

अस्त भये हूं रवि तमहि, न सत दीप करि रूप ।।४९४।।

विहारी

[दोहा]

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
वसत सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित जग होइ ।।४९५।।

अथ दुय विशेप्य(मा०)

कल्पवृक्ष देप्यौ सही, तुम कौं देपत नैंन ।।४९६।।

सो०[मनाय]

सच कहु पायौ औचकां, भुज भरि भेटे लाल ।।४९७।।

अ०क०

[दोहा]

लगी लालसा रहति ही, निस दिन आठौं जाम ।
तुम देषै घनस्याम सौ, नैंननि निरष्यौ काम ॥४९८॥

मुकंद

[दोहा]

तीन पैंड भुव लेत ही, सरवसु लियौ छिनाइ ।
सकल मनोरथ सिद्धि मम, प्रभु तव दरसन पाइ ॥४९९॥

अथ तृतीय विसेष्य(भा०)

अंतर वाहिर दिसि विदिसि, उहै तिया सुष दैंन ॥५००॥

अ०क०

[दोहा]

नगर वगर वागनि डगर, नगनि किकुंजनि धाम ।
वंसी वट जमुना निकट, जित देषौं तित स्यांम ॥५०२॥

सो०[मनाथ]

नीर छीर थिर चरन मैं, लषियत नदकुमार ॥५०१॥

हरिवंस गुसाइजू[1]

ए दोउ पोर परिक गिरि गहवर विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ॥
५०३॥

---

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

॥ लाल कौ कवित्त ॥

प्यारी तेरे अंगनि की उमगी सुवास सोई,
लागी हरि चंदन मैं इंदिरा के घर मैं ।
मालती लता वन मैं सेवति गुलावनि मैं,
मृग मद घनसार अंबर अगर मैं ।
उछरि उछरि छवि छति पर छाय रही,
देपियत सोही मनि मानिक मुकर मैं ।
चंपक बनी मैं चिराकनि की अनी मैं चारु,
चंद की कला मैं चपला मैं चामी कर मैं ॥५०४॥

अथ व्याघात द्वि-विधि

और वस्तु तें और ही कारज कीजै, सो प्रथम । विरोधी तें कारज तुरत ही लीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम व्याघात

सुप पावत जा सौं जगत, ता सौं मारत मार ॥५०५॥

सो० [मनाय]

[दोहा]

जाके छ्वैवे तें डरैं, निर किंनर अमरेस ।
तां विषधर कौं सजत हैं, नित आभरन महेस ॥५०६॥

स०क०

[दोहा]

जिन किरनिनु सौं जगत कौं, वरसि सुधा सुप देत ।
तिन ही किरनिनु चंद तू, मोचित करत अचेत ॥५०७॥

मुकंद

जे प्रिय सुमरन सु तिन सरनि, मदन करत अति धाय ।।५०८।।

रसषांन

[सवैया]

संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन आनन धर्म वढ़ावैं ।
नेंकहि ये मधि आवत ही जड मूढ महा रसषांन कहावैं ।।
जाहि जपैं सव देव वरांगना वारति प्रान न वेर लगावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरी छाछि कौं नांच नचावैं ।।५०९।।

केसव

ता हरि पैं तू अहीर की वेटी महावर पाय-धुवाइ दिवावैं ।
हौं तौ वची अव हांसिनि हीं अैसें और जौ वूझै तौ उत्तर आवै ।।५१०।।

।। काहू कौ कवित्त ।।[1]

जाही पाप संतति सगर कें न वची एकौ,
जाही पाप ताछिक परीछित कौं पायौ है ।
जाही पाप फरसा सहस्र भुज षंड कीनी,
जाही पाप केतौ जदुकुल कौं सतायौ है ।।
जाही पाप राजा दसरथ कौ मरन भयौ,
जाही पाप देषौ इंदु कालिमा तें छायौ है ।
जाही पाप रौंना के न छौंना वचे भौंनां मांझ,
सोही पाप लोगनि पिलौंनां करि पायौ है ।।५११।।

1. मनवर-प्रति में 'काहू कौ कवित्त' ज्याहि पाप संतति·······नहीं है ।

अथ तृतिय व्याघात(ना०)

निहचै जानत बाल तू, करत काहि परि हार ॥५१२॥

बिहारी

[दोहा]

सीस सुम बैंनी गुही, नहीं सुरसरी धार ।
चंदन चंदन भाल यह, मैंन मैंन हर नारि ॥५१३॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हरि बनि गौरी कही, निरपि भस्मासुर कौ रंग ।
नांचै निज सिर हाथ धरि, तौ बिहरौं तुव संग ॥५१४॥

अ०क०

[दोहा]

सुधा हेत ह्वै मोहिनी, कहि असुरनि सौं मीठि ।
प्रथम सुरनि कौं प्याय हौं, नहि लगि जैहैं दीठि ॥५१५॥

अथ गुंफ

कारण ही जहां परंपरा होइ, सो गुंफ ।

ना०

निनि हि धन तिहि त्याग पुनि, तातैं सुजस उदोत ॥५१६॥

प्र०भा०

गुन तें धन धन तें सुदत, दत तें जस अवगाहि ।।५१७।।

सो०[मनाय]

[दोहा]

होति समय तें तरुनई, तातें बाढत नैंन ।
तातें सरस सुरूप मुष, लषि मोहे पिय ऐंन ।।५१८।।

प्र०क०

[दोहा]

दरसन ते लागै लगनि, लगनि लगें तें प्रीति ।
प्रीति लगे तें होति है, मन मिलाप की रीति ।।५१९।।

अथ एकावली

पद कौं छाडि कैं गृहण कीजे, सो एकावली ।

द्रग श्रुति लौं श्रुति बाहु लौं, बाहु जानु लौं जानि ।।५२०।।

केसव

धिक मंगन विन गुन नहि गुनहि धिक सुनत न रिझय ।
रिझय धिक विन मौज मौज धिक देत जु पिज्जिय ।।
देवो धिक विन सांच सांच धिक धरम न भावै ।
धरम सु धिक बिन दया दया धिक अरि पैं आवै ।।

अरि धिक चित्त न साल ह्वौ चित धिक जे न उदारमति ।
मति धिक के सज्ञान विन ज्ञान सु धिक विन हरि भगति ।।५२१।।

सो० [मनाय]

[दोहा]

तैं फूलनि गूंथे चिहुर, चिहुर चरण परमान ।
चरण महावर सौं रंगे, लपि बस भयौ सुजान ।।५२२।।

प्र० का०

[दोहा]

उर पर कुच कुच पर कँचुक कँचुक ऊपर हार ।
तहां जाइ मोहित भयौ, पिय मन करत विहार ।।५२३।।

अथ माला दीपक

दीपक अरु एकावली ए दोऊ मिलैं, सो माला दीपक ।

भा०

काम धाम तिय हिय भयौ, तिय हिय कौ तुव धाम ।।५२४।।

सो० [मनाय]

मेरो तुम सौं नेह पिय, तुम्हरो नेह सु अंत ।।५२५।।

मुकंद

मो मन प्रीतम में वसै, प्रीतम वसै विदेस ।।५२६।।

[सवैया]

दीपक नेह दसा सौं मिलै सो दसा मिलि जोति हि जोति जगावै ।
जागै सो जोतिन सैं तम ही तम हीं न सिकैं सुभता दरसावै ।।
सो सुभता रचै रूप को रूप करूपहि काम कला उपजावै ।
काम सु केसव प्रेम वढ़ावत प्रेम लै प्रान पियाहि मिलावै ।।५२७।।

का०तु०

भुज लागै चापनि सौं चाप लगे बाननि सो,
बांन लगे अरि अरि लगे भूमि पात हैं ।।५२८।।

मेरे तो चित्त मैं मित्त वसै, अरु मित्त के चित्त की जानैं विधाता ।
।।५२९।।

सार

उत्तरोत्तर उतकर्ष वर्निये, सो सार ।

मधु सौं मधुरी है सुधा, कविता मधुर अपार ।।५३०।।

म०क०

[दोहा]

धन सौं प्यारो धाम हैं, ता सौं प्यारो जीव ।
ता सौं प्यारो पुत्र है, ता सौं प्यारो पीव ।।५३१।।

मधु जल तातैं मधु सुधा, तातैं मधु वच मांनि ।।५३२।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

प्रथम सरस देह देह तें सरस नर,
नर तें सरस गऊ विप्र अवतार है ।
विप्र अवतारनि में कहियत सरस सोई,
जाकें जप तप वेद विद्या को विचार है ।।
विद्या तें सरस विधि विधि तें सरस वेद,
वेद तें सरस जज्ञ जासों ज्ञान सार है ।
ज्ञान तें सरस ध्यान ध्यान तें सरस दया,
दया तें सरस राम नाम जू अपार है ।।५३२।।

अथ जथा संख्य

अर्थ कौ निर्वाह अनुक्रम सौं कीजै, सो जथा संख्य ।

भा०

करि अरि मित्त विपत्ति कौ, गंजन रंजन भंग ।।५३३।।

अ०क०

[दोहा]

लपि नव जोवन जोति जुत, तुव मुष सुंदर चंद ।
पिय हिय सौं तिन सपिनु भो, हरष अनप आनंद ।।५३४।।

विहारी[1](?)

[दोहा]

अमी हलाहल मद भरे, सेत स्याम रत नाल ।
जिवें मरें झुकि झुकि परें, जित चितवत यह वाल ।।५३५।।

---

1. इससे पहले भी यह दोहा विहारी के नाम से चलता था आज भी बहुत से लोग इसे विहारी का दोहा ही कह देते हैं—वास्तव में यह दोहा 'रसलीन' का है ।
(सम्पादक)

का०

[दोहा]

सिद्धि सियारा धार वन, भाल अवधि ब्रजचंद ।।
गन रघु गोकुल नाथ जय, सिव दसरथ नंद नंद ।।५३५।।

सो०[मनाथ]

आनन भृकुटी वचन अधर अरु नाभि गवन पुनि,
चंद्र धनुष वीना प्रवाल सरवर गयंद गुनि,
सरद स्यांम तंत्रित रसाल सूछम सपुष्ट तन,
उदयनि गुन अरु सुघर पानि नव हेम तरुन पन,
पूरन मनोज बज्जित अरुन वृत्ति वहुरि मद वृंद की ।
लषि यह कामिनि आनंद निधि हिय हरषत ब्रजचंद कौं ।।५३७।।

अथ द्वि-बिधि पर्याय

क्रम सौं अनेक कौं आश्रय एक ही होइ, सो प्रथम । क्रम सौं एक को आश्रय अनेक होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पर्याय(भा०)

हुती तरलता चरन मैं, भई मंदता आइ ।।५३८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

प्रति वासर हरि होत हैं, तिय के सुघर सुभाय ।
हुती लरिकई अंग सो, वसी तरुनई आई ।।५३९।।

भ०मा०

जिहि द्रग पहलैं रिस लषी, अब तिहि रस सरसात ।।५४०।।

मुद्रंद

जब थल हे अब जल भये, सुनि सखि याही ठौर ॥५४१॥

प्रथ तृतिय पर्याय(ना०)

अंबुज तजि तिय वदन दुति, चंदहि रही बनाइ ॥५४२॥

सो०[मनाच]

[दोहा]

सुनहु राम तुव तेग की, कौंन करि सकै रीस ।
लगी समर में म्यान तजि, लसी अरिनि के सीस ॥५४३॥

प्र०क०

[दोहा]

जाइ बजाई बांसुरी, वन में सुंदर स्यांम ।
ता धुनि कुंजनि श्रवन ह्वै, आइ कियो मन धाम ॥५४५॥

केशव

॥ सवैया ॥

सौंह दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आंनि बसाये ।
जानैं को केशव काननि तैं कित ह्वै कब नैंननि मांझ सिधाये ॥
लाज के साज धरे ही रहे अरु नैंननि लै मन हीं सौं मिलाये ।
कैसी करौं अब क्यां निकसै री हरैं हीं हरैं हरै हिय में हरि आये ॥५४६॥

अथ परिव्रत

थोरीई सौ कछु दै कें वहुत सौ लीजै, सो परिव्रत ।

भा०

अरि इंदिरा कटाछि तुव, येक वान वर लेइ ॥५४७॥

प्र०क०

नेंक दरस ही देत हौ, सरवस लेत छिनाइ ॥५४८॥

प्र०भा०

नेंक द्रगनि की सेंन दै, सर्वसु मन हरि लीन ॥५४९॥

मुकंद

नेंक दिपाई दै भटू, सर्वसु लियौ छिनाइ ॥५५०॥

आनंदघन

तुम कौंन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेत पैं देत छटाक नही ।
॥५५१॥

अथ परसंप्या

वस्तु कौं एक ठौर वर्जि कें अरु दूसरी ठौर ठहराइयै, सो परसंप्या ।

भा०

नेह हानि हिय मैं नही, भई दिये मैं जाइ ॥५५२॥

दो०[मनाय]

कठिनाई उर में नही. भई उरोजनि आनि ।।५५३।।

मुकंद

गंजन में नहि चपलता, है तिय तुव द्रग मांहि ।।५५४।।

।। सूरति को कवित्त ।।[1]

सूरताई अंग में सुग्रढ़ताई पांहन मैं,
नासिका चनानि मध्य नाँन रह्यौ हाट मैं ।
धर्म रह्यौ पोथिनु बडाई रही वृद्धनि,
बंधे जव कपातिनि मैं पानी रह्यौ घाट मैं ।।
इह कलिकाल नें विहाल कियौ सब जग,
सूरति सुकवि कैसी बनी है कुठाठ मैं ।
रज रही पंथनि रजाई रही सीतकाल,
राई रही राइते रणाई रही भाट मैं ।।५५५।।

अथ दु-विधि समुच्चय

एक संग ही बहुत भाव उपजें, सो प्रथम । एक के लियै बहुतनि कौं अन्वय कीजे, सो दुतिय ।

अथ प्रथम समुच्चय

तुव अरि भाजत गिरत, फिरि भाजत हैं सतराइ ।

1. अलवर-प्रति में इसे 'नायक का कवित्त' बताया गया है ।

प्र०कं०

[दोहा]

आनि अचानक मींडि मुष, हसि भजि मुरि फिरि धाय ।
वाल छविले लाल पर, गई गुलाल चलाय ।।५५६।।

अ०मा०

कर पकरत पिय कैं चकी, जकी जु हरषी वाम ।।५५७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कर पकरत नंदलाल के, उर मैं सरस्यौ नेह ।
सकुची निरषि सषीनि पुनि, पुलकि थरहरी देह ।।५५८।।

केसव

[सवैया]

कौनें तृसै विहसै कहि कौनहि का पर कोपि कैं भौंह चढ़ावैं ।
भूलति लाज भटू कवहूं मुष अंचल मेलि दुरावैं ।
कौंन की लेति वलाइ ल्यौं तेरी दसा यह मोहि न भावै ।
अैसी तो तू कवहू न भई अव तोहि दई जिन वाय लगावै ।।५५९।।

सुंदर

रोइ रिसानी डरी थहरानी चकी सकुचानी चितै हसि दीनौं ।।५६०।।

भाव सवलता को, किल किंचित हाव को, समुच्चय अलंकार को, उदाहरण एक सौई है।

अथ द्वितिय समुच्चय

जोवन विद्या मदन धन, मद उपजावत आइ ॥५६१॥

सो० [मनाय]

[दोहा]

पावति सीप सपीनि की, तरुणाई रति नाह ।
ए सब मिलि तिय नवल कैं, उपजावत पिय चाह ॥५६२॥

गुन गुरुवाई चातुरी, जोवन रूप रसाल ।
ए सब विहसि परे परे, करत तोहि मद वाल ॥५६३॥

॥ देवीदास को कवित्त ॥

कोऊ कहूं मिलै ताहि जानि सनमान करै,
हसि दीठि जोरै अरु हिय सौं दिपावैं हेत ।
आपनौं गरव कहूं नंकु न जतावै अरु,
कोऊ नाहि जानें जैसें गुपत ही दान देत ॥
कोऊ उपकार करै ताकौं परकास करैं,
धरम नियम पर नित रहैं सावचेत ।
आप उपकार करि चुप रहै देवीदास,
एते सब गुन कुलवंत हि बतायें देत ॥५६४॥

[कवित्त]

पूरे कुल जनम निरोगल सरीर घर,
वैभव विसाल सुरसरी-तीर धाम हैं ।
पतिव्रता नारि सील साहसी सपूत सुप,
दायक कुटुंव करै पूरे मन काम हैं ॥
रामजू की भगति सकति दान दीवे ही की,
चाकर हुकमकारी जाको जस नाम है ।

देवीदास एते गुन पाइये जगत मैं तौ,
सूनसान मुक्ति ही कौं दूरि तें प्रनाम है ।।५६५।।

केसव

[कवित्त]

वाहन कुचाल चोर चाकर चपल चित्त,
मित्र मतिहीन सूंम स्वामी उर आनियें ।
परघर भोजन निवास वास कुपुरनि,
केसौदास बरषा प्रवास दुष दानियें ।।
पापिनु के अंग संग अंगना अनंग वस,
अपजस जुत सुत चित हित हानिये ।
मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि दारिद जु गई आधि,
इहां ही नरक नर-लोकनि वपानियें ।।५६६।।

।। ब्रह्म कौ सवैया ।।

पूत कपूत कुलच्छिनी नारि लराक परौसी लजावन सारौ ।
भाई वटोहित प्रोहित लंपट चाकर चोर अतीत धुतारौ ।।
साहिव सूंम अराक तुरंग कसान कठोर दिवानन कारौ ।
ब्रह्म भनैं सुनि ये नर नाइक वारौं ही वाधि समुद्र मैं डारौ ।।५६७।।

अथ विकल्प

उह अथवा यह या रीति सौं कहियै, सो विकल्प ।

भा०

करि हैं दुप कौ अंत सपि, जमकै प्यारौ कंत ।।५६८।।

सो० [सनाय]

[दोहा]

कै उह बसंत बहार की, प्रफुलित नूतक तार ।
कै निरपत हरपत हियौ, यह घुरवनि की धार ॥५६९॥

का०

॥ कवित्त ॥

कृष्ण जू तिहारे आगें लपहू चौरासी वेप,
नट लौं मैं तेरे रीझिवे के हेत आनें हैं ।
केते वेग पेचर के केते वेप भूचर के,
केते वेप नीरचर हू के पहचाने हैं ॥
केते वेप नीचे सिर केते वेप ऊंचे सिर,
उलटि पलटि ह्वै कें केते दरसाने हैं ।
यातें रीझि मोज दीजें नां तो मोहि मनें कीजें,
द्वै में एक कीजें आप जैसी मन मानें है ॥५७०॥

[कवित्त]

दीजियै कमंडल के राज मही मंडल कौ,
दीजियै तुरंग कै कुरंग छाला कटि कौं ।
दीजें गजराज कै बिराजिवे कौं वृंदावन,
दीजियै निवास कै अवास गंगा-तट कौं ॥
कंचन सिंघासन कै वाघंवर आसन कै,
चंदन चढ़ाऊं कै विभूति लाऊं घट कौं ।
मांनियै अरज मेरी बांकरै बिहारी लाल,
द्वै में एक कीजियै परयौ न बीच भट कौं ॥५७१॥

निपट

[कवित्त]

भूप लागै प्यास लागै घाम जल सीत लागै,
मो पै नांहि मिटै प्रभू मिटै तौ मिटाइयै ।
चाहै देह दीजै चाहै लीजै देह आपुनी कौं,
निपट निरंजन जू अंत न डुलाइयै ।।
रावरौ भिषारी ह्वै कै कौंन पै हौं मांगौं भीष,
भीष यह मांगौं मो पै भीष न मंगाइयै ।
साधनि कौं सिद्धनि कौ संत औ महंतनि कौं,
जौ लौं जीवै जीव तौ लौं जीवका तौ चाहियै ।।५७२।।

मुकंद

कै इत अैजै आप कै, लीजै मोहि बुलाई ।।५७३।।

अथ कारक दीपक

एक मैं अनेक भाव क्रम सौं जहां होंइ, सो कारक दीपक ।

भा०

जाति चितै आवति हसति, बूझति बात विवेक ।।५७४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पिय-वियोग चहु ओर लपि, चपला तमक समेत ।
छीन होति छिन छिन तिया, रिसति नैंन भरि लेति ।।५७५।।

घ:फ०

[दोहा]

चंचल बाल सपीनि मैं, बिलसति हसति लजाति ।
गावति ग्रैंडावति चलति, पिय तन चितवति जाति ।।५७६।।

।। काहू कौ कवित्त ।।

गहि गहि लेत पिय हिय सौं लगाय तिय,
ससकति जाति पुनि जिय ललचाति है ।
सेज मैं विराजैं नाथ साथ इतराति बत—
-राति तुतराति ग्रंगराति ग्ररसाति है ।।
नांही नांही करै सौंहैं देत हाहा पाति ग्रन-
-पाति ग्रकुलाति रसमांती न समाति है ।
हसति डराति नीवी पोलति लजाति कर,
ठेलति सिराति सतराति कतराति है ।।५७७।।[1]

केशव

चोरि चोरि चित चितवति मुप मोरि मोरि,
काहे तें हसति हिय हरप बढ़ायो है ।।इत्यादि।।[५७८]

---

1. अलवर-प्रति में इस कवित्त के उपरान्त दूलह का यह कवित्त ग्रोर है, किन्तु ग्रन्तिम चरण नहीं है ।

बोलत में नांहीं पर पोलत में नाही कवि,
दूलह उछाही कला लापनि लपाई है ।
चुंबन में नाहीं परिरंभन में नाहीं सब,
हास ग्रोर विलासनि में नांहीं ठीक ठांहि है ।
मेल गल बांही केलि कीनी मनभांई यह,
ह्यां तैं भलो नाही कहां तैं सीखि ग्राई है ।

अथ समाधिक्य

और कारण मिलि कैं कारज सुगंम हीं होइ, सो समाधिक्य ।

भा०

उत्कंठा तिय कौं भई, अथयौ दिन उद्दोत ॥५७९॥

सो[मनाथ]

[दोहा]

निरषन कौं तिय वदन दुति, पठई दीठि मुरारि ।
उत त्यौं त्रि-विधि समीर नैं, घूंघट दियौ उघारि ॥५८०॥

भ०भा०

सूंने घर दंपति मिले, ज्यौं घन तम छय आइ ॥५८१॥

भ०क०

[दोहा]

लाल मिलन कौं होति ही, तिय तन अधिक अधीर ।
तव ही टरि कितहूं गई, सव गुरजन की भीर ॥५८२॥

॥ राजा नागरीदास कौ सवैया ॥

भादौ की कारी अँध्यारी निसा झुकी वादर मंद फुहीं वरषावैं ।
स्यांमा जू आपुनी ऊंची अटा पैं छकी रस मीत मलारहि गावैं ॥
ता समैं नागर के द्रग दूरि तें आतुर रूप की भीष यौं पावैं ।
पौंन मया करि घूंघट टारैं दया करि दामिनी दीप दिपावैं ॥५८३॥

अथ समाहित

कारण तें कारज क्यों हूं उतपन्न होइ नही तव दैव जोग तें होइ, सो समाहित।

केसव

[कवित्त]

छवि सों छवीली वृषभान की कुमारि आज,
                रही हुती रूप मद मान मद छकिकैं।
मारहू तें सुकुमार नंद को कुमार ताहि,
                आयो री मनावन सयान सव तकिकैं॥
हंसि हंसि सौंहैं करि करि पाय परि परि,
                केसोराय की सौं जव रहे जिय जकिकैं।
ताही छिन उठे घन घोरि घोरि दामिनी ज्यों,
                लागी घनस्याम जू के उर सौं लपकिकैं॥५८४॥

अथ प्रत्यनीक

अरि सों वसाय नही तव अरि की पक्ष के कों दुप दीजे, सो प्रत्यनीक।

दो० [[illegible]]

[दोहा]

जय न वसानो पथ सों, औसर हिये विचारि।
भारत में अभिमन्य कों, लियों सत्रनि मिल मारि॥५८५॥

मुकंद

रवि सों चलै न चंद की, कंज प्रभा हरि लेत॥५८६॥

अ०फ०

[दोहा]

तो पर जोर चल्यौ न कछु, निवल अपनपौ मांनि ।
केलनि कौं तोरत करी, जंघनि की सम जानि ।।५८७।।

अ०मा०

जानि अजित द्रग अनुग श्रुति, कंजनि निज तर कीन ।।५८८।।

।। दयानिधि कौ सवैया ।।

रावरे रूप सौं जीत्यौ है काम औ चंद जित्यौ मुष चंद की वानि कैं ।
प्यारे तिहारे सिधारे पैं ए अब दोऊ मिले इक मो पर आनि कैं ।।
जौन्ह की पैंनी कृपान निकारि कैं फूल के चाप मैं वांन कौं तानि कैं ।
रापहु वेग दयानिधि केसव मारत हैं मुहि तेरी यै जानि कैं ।।५८९।।

अथ काव्यार्थापति

विसेष कौ निदरि कैं अरु सामान्य की बूझिये नही, सो काव्यार्थापति ।

भा०

मुष जीत्यौ वा चंद सौं, कहा कमल की वांन ।।५९०।।

अ०मा०

तुव कटाछ सर मदन के, जिते कहा सर आन ।।५९१।।

सो० [मनाय]

[दोहा]

हारि मानि अमरेस हू, हरि के परसे पाय ।
औरनि की चरचा कहा, जो वनियें बनाय ।।५६२।।

प्र०क०

[दोहा]

गति तैं जीते हंस हैं, कौन करी मद धाम ।
रति जीती तैं रूप तैं, कहा जगत की वाम ।।५६३।।

अथ काव्य-लिंग

अर्थ को समर्थन जुक्ति सौं कीजै, सो काव्य-लिंग ।

ता कौं मैं जीत्यौ मदन, मो हिय मैं सिव सोइ ।।५६४।।

सो० [मनाय]

[दोहा]

रे घन अब न बसाइगौ, जिन सोपे तुव सोत ।
सो मैं पूजे प्रीति करि, भये अगस्त उदोत ।।५६५।।

प्र०क०

[दोहा]

अनियारे हैं ही बहुरि, काजर लागी दैन ।
नायक मन बस करन कौं, नायक तेरे नैन ।।५६६।।

प्र०मा०

क्यों जीतैगो विरह-तम, चंद-मुषी मो चित्त ॥५९७॥

अथ काव्यप्रकास के मत को काव्य-लिंग

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पद समूह को हेत जहं, होत कवित्त मैं आइ ।
कै प्रति पद को हेत यौं, काव्य-लिंग द्वै भाय ॥[५९८]

अथ पद समूह को हेत

सो०[मनाथ]

[दोहा]

चैत चांदिनी कमल वन, कोकिल तृविध समीर ।
सबै हितू वैरी भये, विछुरत ही वलवीर ॥५९९॥

इहां एक तुक मैं हेतु 'वलवीर को विछुरिवौ' ।

ध्रुवदासजू[1]

[दोहा]

चंदन चंद समीर वन, कंज कपूर समेत ।
सब दिन तौ इन सुष दियौ, तुम विन अब दुष देत ॥६००॥

इहां हेतु 'राधाजू को मांन करिवो' ।

---

1. अलवर-प्रति में ध्रुवदासजू का यह दोहा नहीं है ।

अथ पद पद को हेतु

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पिले कमल निवरी निसा, करत मधुप मधु-पांन ।
चकई हरपी निरपि रवि, तउ ललचात सुजान ॥६०१॥

इहां 'कमल पिलिवे' को हेतु 'निसा निवरिवे' को हेतु 'चकई हरपिवे को हेतु 'रवि निरपिवो' ।

अथ द्वि-बिधि अर्थांतर न्यास

विसेप कहि कें अरु सामान्य सुभाव तें द्रढ़ कीजे, सो प्रथम । बडे के संग तें छोटे की वडाई होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम अर्थांतर न्यास(मा०)

रघुवर के गिरवर तरे, बडे करें न कहा सु ॥६०२॥

अ०मा०

नाप्यो वारिधि पवन सुत, कहा समरथ के लेप ॥६०३॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

बसन चोरि हरि द्रुम चढे, पुनि बनी बैठे साह ।
कहा न करि है ए सपी, प्रगट भयें हित चाह ॥६०४॥

प्र०फ०

[दोहा]

राधे आधे द्रगनि तैं, मोहन लीनें मोहि ।
रूप भरी अति गुन भरी, कहा कठिन है तोहि ॥६०५॥

॥ नंददासजू कौ कवित्त ॥

जमुना मैं जल-केलि करत कुवर कान्ह,
ऐसी छवि देषि देषि जिय जीजियत हैं ।
तीर ठाढ़ी रही कोऊ नवल नउढ़ा तिय,
पिय व्रजचंद कौं अनंद दीजियत हैं ॥
सषिन पकरि वारि मांझ डारि दीनी वाल,
भीत भरी नैंन मन मांझ पीजियत हैं ।
नंददास प्यारे कौं यौं धाय लपटानि उह,
विपति परें न कहा कहा कीजियत हैं ॥६०६॥

अथ द्वितिय अर्थांतर न्यास

अ०क०

[दोहा]

चली चली तू इहि गली, अली कढ़ी कहु आइ ।
तरवनि तर की रज पिया, नैंननि लई लगाइ ॥६०७॥

वृंद

ढाक पात संग पान कैं, चढ्यौ छत्रपति हाथ ॥६०८॥

॥ व्यास जू की साखि[1] ॥

वृंदावन को चूहरा, आंन गांउ को भूप ।
वा को सरिवर को करै, बेचि पात है सूप ॥६०६॥

अथ विकस्वर

विसेष कहि कैं फिरि सामान्य कौं विसेष कहिये, सो विकस्वर ॥६१०॥

मा०

हरि गिरि धारयौ सन पुरुष, भार सहै ज्यौं सेस ॥६११॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

राधे हरि हिय मैं बसी, रँगी रँगीले रँग ।
यही नेह की रीति है, हरि कैं तिय अरधंग ॥६१२॥

अथ दु-विधि प्रौढ़ोक्ति

बढे अकारन के विषैं कारण कौं कल्पित कीजै, सो प्रथम । वर्नन मैं अधिकायी को अधिकार होइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम प्रौढ़ोक्ति(मा०)

जमुना तीर तमाल से, तेरे बार असेत ॥६१३॥

---

1. प्रकाश-प्रति में 'व्यासजू की साखी' भी नहीं है ।

अथ का०

[दोहा]

अरुण सरस्वती कूल के, बंधु जीव के फूल ।
तैसेई तेरे अधर, लाल लाल अनुकूल ॥६१४॥

अथ दुतिय प्रौढ़ोक्ति(मा०)

केस अमावस रैंनि घन, सघन तिमिर के तार ॥६१४॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

श्री रघुबीर उदार जग, जाहर तेरे दान ।
तोरि जवर पापर करी, करकैं भूमि निदान ॥६१५॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

मथि कैं सिंगार रस सार तैं निकारी सुधा,
ता को सार लै कैं तेरौ वचन सुधारचौ है ।
कदली के पंभ ज्यौं निचोरि कैं सुधाकर कौं,
ता को मध्य सार लै वसन सेत सारचौ है ॥
तिमिर के थार कौ झकोरि गुन तामस मैं,
ता को सार लै कैं केस पास यौं पसारचौ[1] है ।
प्यारी तेरौ रूप ऐसौ रचि कैं विरंचि हाथ,
धोइ कैं कुमुद कंज पुंज विसतारचौ[2] है ॥६१६॥

---

1. घनपर-प्रति में 'विसतारचौ'; 2. 'प्रतिपारचौ'

[कवित्त]*

¹बेनी नैंन रोमावली या ही रंग कालिमा हैं,
कहत कलंक मृग जेते भोरे-वारे हैं ।
तरवा अधर एतो अरुण वरण राजें,
सांझ समैं प्यारेलाल देपिये उघारे हैं ।।
चाहि कहा रहे हो अकास के प्रकास हरि,
चाहो किन जाहि जेवे जग उजियारे हैं ।
प्यारी कों बनाइ विधि धोये हाथ ता को रंग,
जमि भयो चंदा हाथ झारें भये तारे हैं ।।६१७।।

अथ संभावना

अैसो होइ तो अैसें होइ यह क[ह]नो, सो संभावना ।

प्र०मा०

जो तू सब तजि हरि भजै, तो दुप रहै न कोइ ।।६१८।।

मा०

वक्ता हो तो सेस तो, कहतो गुनहि अपार ।।६१९।।

प०क०

[दो]

उद्धव जो हों तो कह्यौ, ब्रज-वासिनि सों प्यार ।
तो मथुरा सों आवते, कान्ह एक हू वार ।।६२०।।

*. मनयर-प्रति में यह कवित्त नहीं है।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

जितै दीठि अटकी अली, तितही कियौ पयान ।
हम सौं हौं तौ नेह तौ, इत आवते सुजान ।।६२१।।

मुकंद

[दोहा]

कहति रहति नित नेह सौं, सुनि असवेली बाल ।
आज चलै जो कुंज मैं, तौ तोहि मिलऊं लाल ।।६२२।।

का०

[दोहा]

दुष मैं तौ हरि कौं भजै, सुष मैं रहै जु सोइ ।
जौ सुष मैं हरि कौं भजै, तौ दुष काहे कौं होइ ।।६२३।।

का०

।। कवित्त ।।

सुनहु सुजान उह बावरो विरंचि विधि,
मैं हूं हुतौ तौ पैं विधि असी ही वनावतौ ।
मृगनि की नाभि पै जु कीनौं मृग-मद गंध,
सो तौ पल रसना पै नीकें कैं सुहावतौ ।
सागर के पांनी कौ करतौ सुधा सौ सुधाकर,
कौ कलंक लै कैं पांनी मैं वहावतौ ।
तरुनी तिया को नव जोवन मैं प्रीतम सौं,
कवहूं न कैसैं हू वियोग हौं न पावतौ ।।६२४।।

राजा नागरीदास

[कवित्त]

कीरति दारानी व्रषभान आदि गोप गोपी,
कैसें धन्य धन्य ह्वै कैं जग जस पावते ।
कौन तप करतो या व्रजवास वसिवे को,
कौन वैकुंठ लों के सुप विसरावते ॥
नागरि या राधिका जू प्रगत होती जौ पै स्यांम,
पर वाम हूं के विपती कहावते ।
छाग जाती जडता बिलाइ जाते कवि सव,
जरि जातो रस तौ रसिक कहा गावते ॥६२४॥

केसव

[सवैया]

बोलिबो बोलनि की सुनिवो अवलोकनि कों अवलोकति जो तें ।
नांचिबो गाइबो बैंन बजाइबो रीझि रिझाइबो जानति तोतें ॥
राग बिरागनि के परिरंभन हास बिलासनि त्यों रति को तें ।
तौ मिलतो हरि मित्रहि को सपि अैसे चरित्र जो चित्र में होतें ॥६२५॥

॥ कवित्त ॥

रोग दुप दूरि तहू दूरि दोरि दूरि है रे,
कोटिक जनम के कलंक कोटि कटि हैं ।
थैहै सब संपति बढ़ै है अति ही उमंग,
लै है पद उच्च श्री गुविंद के निकट है ॥
घरी घरी घन बरसै है घनें आनंद के,
सोभा सरसै है प्रेम पूरन प्रगटि है ।
पै है गुण गाथा जग सुजस अगाधा ह्वै है,
बाधा मिटि जै है जो तू राधा रटि है ॥६२६॥

अथ मिथ्याधिवसित

एक झूंठ के लियें अनेक झूठ कहियें, सो मिथ्याधिवसित ।

भा०

कर मैं पारद जौ रहै, करै नऊढा प्रीति ।

अ०क०

[दोहा]

द्वै कमलनि पर चरन धरि, चढ़ी नदी ह्वै पार ।
मुग्धा सौं कीनी सुरति, मोहित करि तिहि बार ।।६२७।।

मुकंद

सीलवंत औगुन गहै, तौ गुन गहै गुलाम ।।६२८।।

।। चंद कौ कवित्त ।।

महाराज तेरी सब कीरति बषानैं कवि,
चंद यह केवल अकीरति बषानै हैं ।
आंधरे नैं देषि देषि हम कौं बताइ दई,
बहिरे नैं सुनि जैसी हम हूं प्रमानैं हैं ।।
कछू पीके दूध ही के सागर पैं ताके गीत,
बांझ सुत गूंगे मिलि गावत यौं जाने हैं ।
तापैं केते बडे सस शृंग के धनुष वारे,
रीझि रीझि तिन्हैं मौज दै कें सनमाने हैं ।।६२९।।

अथ ललित

प्रस्तुत कौ विंब अप्रस्तुत कहियें, सो ललित ।

भा०

सेतु बांधि करि है कहा, अब तो उतरयो अंबु ॥६३०॥

प्र०ब०

[दोहा]

ग्रीषम दियो बिताइ कैं, एरी मेरी वीर ।
बरषावति पावस समैं, अब यह महल उसीर ॥६३१॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

पिय जोवन के अमल मैं, द्रग छकि रहे निदान ।
जुलम करत डरपत न ए, क्यों लहियत मद पानि ॥६३२॥

प्र०मा०

काजर दै करि है कहा, तिय तव द्रग अति स्याम ॥६३३॥

अथ त्रिविधि प्रहर्षन

बिना जतन वांछित फल की प्राप्ति होइ, सो प्रथम । वांछित हू तैं अधिक फल श्रम बिना लहियै, सो दुतिय । सोधन को जतन करत ही वस्तु प्राप्ति होइ, सो तृतीय ।

अथ प्रथम प्रहर्षन

जाकौं चित चाहत सु तौं, आई दूति होइ ॥६३४॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

व्याकुलता प्रगटी महा, ग्रीषम के दुष-दंद ।
नैननि सुधा तृषा भई, तब ही दरस्यौ चंद ॥६३५॥

अ०क०

[दोहा]

अली सहज ही बनि गयौ, जो मन हुतौ विचार ।
उहीं भांवते बांह गहि, करी नदी कैं पार ॥६३६॥

मुकंद

चित मैं चाह भई तबै, तुमहि मिले पिय आनि ॥६३७॥

॥ कवित्त ॥

हसत पेलत पेल मंद भई चंद दुति,
कहति कहानी अरु बूझति पहेली जाल ।
केसौदास नीद बस आप आपने घरनि,
हरैं हरैं उठि गई बालिका सकल बाल ॥
घोरि उठे गगन सघन घन चहूं दिसि,
उठि चले कान्ह धाय बोलि उठि तिहि काल ।
आधि राति अधिक अँध्यारे मांझ कैसें जै हौं,
राधिका की आधी सेज सोइ रहौ प्यारे लाल ॥६३८॥

सुंदर

॥ सवैया ॥

लोग बरात गये सिगरे तुम राति-जगे कौं चली सब कोऊ ।
सुंदर मंदिर सूंनों जु है इहां को रषवारी है ताहि न जोऊ ॥
सास कही तब ही लषि ही लहुरी दुलहि घर ही इहि सोऊ ।
फूलि गये सुनि बात यों गात समात न कंचुकी मैं कुच दोऊ ॥६३९॥

अथ द्रुतिय प्रहर्षन(ना०)

दीपक को उद्दम कियो, जो लग उदयो भांनु ॥६४०॥

प्र०प०

[दोहा]

अरे चितरे मित्र को, अब ही लिपि दै चित्र ।
कह्यो तिया तब ही दियो, दरसन प्यारे मित्र ॥६४१॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

निलक क्रियो चाहत हुते, नव तिय को हरि आज ।
भेटी भुज भरि आपु तें, गुवह सहित सुप साज ॥६४२॥

1. आधार-प्रति में इस सवैया का प्रथम चरण देकर इत्यादि लिख दिया है । अनेक स्थानों पर इस प्रकार के 'इत्यादि' की आवृत्ति हुई है ।

देवी[दास]

॥ कवित्त ॥

जलद सौं तीन चार बूंदनि की चातक नें,
चित चाहि टेरि टेरि कें गुहार करी है ।
त्यौं हीं दिसि ही तें उमडि घुमडि घन
आये इक छिन हीं मैं घटा नभ ढ़री हैं ॥
बरसन लाग्यौ इकटक ह्व मुसलधार,
जल कौन पार सब नद नदी भरी हैं ।
वडे कौ विचार कहा कीबौ करौ देवीदास,
छोटे के जनम सो न वडेनि को घरी है ॥६४३॥

अथ तृतीय प्रहर्षन(भा०)

निधि अंजन की औषधी, सोधत लही निदान ॥६४४॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

परसौं ते ढूंढत हुती, घर वन हरि कें हेत ।
सो मैं पाये आज अब, हिरदै भयौ सचेत ॥६४५॥

अ०क०

[दोहा]

पिय आवन हित पथिक सौं, कहन लगी समुझाइ ।
तब ही चल्यौ विदेस तें, मिल्यौ भावतो आइ ॥६४६॥

अथ विषाद

चित्त की चाह तें बिपरीत वस्तु की प्राप्ति होइ, सो विषाद।

मा०

नीवी परसत श्रुति परी, चरणायुध धुनि आइ ॥६४७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

राज लहन अभिलाप जिय, पहुँचे पितु के पास।
सुत सनेह तजि राम को, उन दीनों बनवास ॥६४८॥

अ०क०

[दोहा]

दिन हीं में निसि मिलन को, कियो मनोरथ बाल।
सांझ होत परदेस कों, चल्यो भांवतो लाल ॥६४९॥

पा०

॥ सोरठा ॥

ए आये घनस्याम, काहू कह्यो पुकारि कैं।
बिरहनि निकसी धाम, देषत दुष दूनों भयो ॥६५०॥

विहारी

[दोहा]

कन देवौ सौंप्यौ ससुर, वहू थुर हथी जानि ।
रूप रह चटैं लग लग्यौ, मांगन सब जग आनि ॥६५१॥

मुकंद

॥ सवैया ॥

चंड लगी रवि की किरनैं षलुआट की टाटि मुकंद तचावै ।
सो श्रम मेटन कौं तकि छांह सु विल्ल के वृछ तरैं चलि आवै ॥
त्यौं फल ऊंचे तैं टूटि महा सिर पैं परि फूटि कैं सब्द सुनावै ।
भाग विना नर सुष्ष कौ धावै पै दुष्ष दई तिहि दूनौं दिषावै ॥६५२॥

॥ काहू कौ कवित्त ॥

नीकैं मधु पीकैं मत्त मधुप सरोज ही मैं,
रुकि गयौ जब लुकि गयौ दिनमनि है ।
जानी जो है राति ह्वै है प्रात सरद सै है रवि,
विकसै है कंज तवही तौ निकसनि है ॥
एतैं गज आयौ उह पंकज उषारि पायौ,
भयौ भायौ विधि कौ किसन ध्यांन धनि हैं ।
यातैं वहुतेरी भैया चाहत वनायौ तू तौ,
तेरी वनाई वनैं वनि है सो वनि है ॥६५३॥

अथ चतुर्विधि उलसास —

एक के गुन तैं और कौं गुन होइ, सो प्रथम । एक के दोष तैं और कौं दोष होइ, सो द्रुतिय । एक के गुन तैं और कौं दोष होइ, सो तृतीय । एक के दोष तैं और कौं गुन होइ सो चतुर्थ ।

अथ प्रथम उल्लास

न्हाय मंत पावन करें, गंध धरें यह आस ।।६५४।।

अ०मा०

साध संग तें जन भये, पावन करत निवास ।।६५५।।

।। सवैया ।।

मत्त गयंदनि साथ सदा इन थावर जंगम जूथ विदारयो ।
ता दिन तें कहि केसव वेधन बंधन दे बहुधा विधि मारयो ।।
सो अपराध निवारण काज यही इन साधन सिद्धि विचारयो ।
पावन पुंज तिहारो हियो यह चाहत है अब हार विहारयो ।।६५६।।

निपटनि गंध यहै हार बंधु जीव को सु,
चाहत सुगंध भयो नेंक ग्रीव बनाइये ।।६५७।।

आकहू ढाक करीर बँबूर सबै मलयाचल या चल चंदन कीनें ।।६५८।।

अ०प०[1]

[दोहा]

बंधु जीव की माल यह, नेंक पहरि लै बाल ।
चाहति हौ न सुगंध यह, तो तन परसि रसाल ।।६५९।।

1. अलवर प्रति में यह दोहा इस स्थान पर नहीं है, अन्यत्र है। स्थानों का फेर-बदल कई अन्य प्रसंगों में भी देखा गया।

का०

[दोहा]

कहा न ह्वै सतसंग तें, देखी तिल अर तेल ।
मोल तोल सब बढ़ि गयौ, पायौ नाम फुलेल ।।६६०।।

अथ दुतिय उल्लास(अ०मा०)

महि विकार तें पार जल, भयौ सुनहु कवि लोइ ।।६६१।।

तुलसीदासजू

महिमा घटी समुद्र की, रावण वस्यौ परोस ।।६६२।।

अ०क०

[दोहा]

रही मनाइ मनैं नहीं, मांनीं नंदकिशोर ।
लै कठोरता स्याम की, मैं हूं हौहु कठोर ।।६६३।।

।। क० कवित्त ।।

सरल सौं सठ कहैं वक्ता सौं धीठ कहैं,
विनै करै तासौं कहैं धन को अधीन है ।
छमी सौं निवल कहैं दमी सौं अदत्ती कहैं,
मधुर वचन बोलैं तासौं कहैं दीन हैं ।।
दाता सौं दंभी निस्प्रेही सौं गुमानी कहैं,
तृष्णा घटावै तासौं कहैं भाग्यहीन है ।
नीके गुन देषे तौऊ औगुन लगाइ देत,
यातैं कछू दुर्जन को हृदै ही मलीन है ।।६६४।।

॥ सवैया ॥

आनंददायक चंदन मित्र वसै जिनि ह्यां यौं गुविंद विचारैं ।
या वन मैं दुरवस कठोर असार ह्वै इन की वढ़वारैं ॥
सो मव आपस मैं मिलि कैं अति ज्वाल की झाल कराल निकारैं ।
ह्वै मति-मंद सुगंध न लैं अपनैं कुल कौं पुनि ओर कौं जारैं ॥६६५॥

अथ तृतीय उल्लास

भई मलिन प्यारी जदपि, सुघर सौति सुनि कांन ॥६६६॥

प्र०क०

[दोहा]

लाज चतुरई सील जुत, तिय गुन रूप निदान ।
एते पैं रीझत नहीं, पिय हिय मैं न सयान ॥६६७॥

मुकंद

उदै होत ही सूर कैं, चंद मलिन दुति होति ॥६६८॥

विहारी

[दोहा]

देह दुलहिया की वढ़ै, ज्यौं ज्यौं जोवन जोति ।
त्यौं त्यौं लपि सौतैं सवै, वदन मलिन दुति होति ॥६६९॥

ज्यौं ज्यौं जोवन जेठ दिन, कुच नितंव सरसाति ।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छिपा, छीन परति नित जाति ॥६७०॥[1]

---

1. दतरा-प्रति में केवल एक दोहा है, यह दूसरा दोहा नहीं है ।

अथ चतुर्थ उल्लास(अ०मा०)

निसा धरति तम घोर पै, चंदहि करति प्रकास ।।६७१।।

अ०

[दोहा]

तुम तीपी चितवनि चितें, करी जाहि वेहाल ।
लाभ यही जीवति रही, उह ललना नंदलाल ।।६७२।।

मुकंद

कटुम सहित रावरण हत्यौ, मिल्यौ विभीषरण राज ।।६७३।।

अथ अवज्ञा

एक को गुन दोष और कौं नही लगै, सो अवज्ञा ।

मा०

परस सुधाकर किरनि कैं, कुलै न पंकज कोस ।।६७४।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

निसि वासर तरुनीनि मैं, विहरै परगट गोय ।
सूरवीर नर नेंक हू, हियें न कायर होइ ।।६७५।।

का०

धिक सुमेर तोहि कनक तन, पाहन सब परिवार ।।६७६।।

बिहारी

नागह मेलि कपूर में, हींग न होइ सुगंध ॥६७६॥

मन करि हारी सुर नारी यों गुविंद कहैं,
तदपि पुरारी को विकारी चित्त ना भयो ॥६७८॥

तुलसीदासजू

फूलै फलै न बेत, जदपि सुधा बरषें जलद ।
मूरख हृदै न चेत, जो गुरु मिलै बिरंचि सत ॥६७९॥

रूपे के सेलधिकार है तोहि धिकार ही कंचन मेरु कों दीनें ।
संग जिते तरु ते तरु हैं गुन रावरे नेंक लगै न नवीनें ॥६८०॥[1]

अथ अनुज्ञा

दोष कौं गुन मानि लीजे, सो अनुज्ञा ।

भा०

होहु बिपति जामें सदा, हिय चढ़त हरि आनि ॥६८१॥

---

1. दतवार प्रति में यह दोहा तुलसीदासजू के सोरठे के साथ नहीं है—

जोधपुर-प्रति में यह तुलसीदासजू के सोरठे के साथ मिलाकर लिखा गया है जो ठीक प्रतीत नहीं होता ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

विरह दियौ सु भली करी, हमहि छबीले लाल ।
टरै न छिन भरि द्रगनि तैं, उनको रूप रसाल ।।६८२।।

ग्र०मा०

सपि द्रग होहु निलज्जता, जौ हरि दरसन होइ ।।६८३।।

ग्र०क०

[दोहा]

उद्धव बिछुरन ही भलौ, मिलन चहत हम नांहि ।
नंद दुलारौ सांवरौ, सदा बसै मन मांहि ।।६८४।।

देव

लाज के ऊपर गाज परौ व्रजराज मिलैं सोइ लाज करौ री ।।६८५।।

जगजीवन

।। कवित्त ।।

दूनौं भलौ सुपथ कुपथ पैं न ऊनौं भलौ,
सूनौं भलौ घर पैं न पल साथ करियै ।
अनल की लपट झपट भलो नाहर की,
कपटी के कपट सौं दूरि ही तैं डरियै ।
यह जगजीवन परम पुरुषारथ है,
पर घर पैसि पुनि रस सौं निकरियै ।।

हारि मानि लीजै पै न कीजै वाद मूरष सौं,
सरवसु दीजै पै न परवस परियै ॥ ६८७॥[1]

अथ लेष दु-विधि

गुण मैं दोष की कल्पना कीजै, सो प्रथम । दोष मैं गुण की कल्पना कीजै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम लेष (भा०)

सुक यह मधुरी बानि तें, बंधन लह्यौ विसेष ॥६८८॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सुनहु सयानें छीर निधि, बचन चारु चित लाइ ।
रतननि संग्रह ते सुरनि, उदर मथ्यो तव आइ ॥६८९॥

अ०क०

[दोहा]

सुष सौं दध बेचति फिरैं, और सबै ब्रज-बाल ।
घेरि रहे हरि मोहि यह, रूप भयौ जंजाल ॥ ६९० ॥

अ०भा०

मधु बच सपि सुक पिंजरा, काक सुछंद विहार ॥ ६९१ ॥

1. अलवर-प्रति में निपट की तुक और है—

तो सौ उजियारो प्रभु मोसो न पतित भारो
मोहि जिनि तारो वैकुंठ लौं बिगारोगे ।

निपट

।। कवित्त ।।

हांसी मैं विषाद वसै विद्या मैं विवाद वसै,
भोग मांहीं रोग और सेवा मांही दीनता ।
आदर मैं मान वसै सुचि मैं गिलानि वसै,
आंवन मैं जान वसै रूप मांहि हीनता ।
जोग मैं अभोग औ संजोग मैं वियोग वसै,
पुन्य मांहि बंधन औ लोभ मैं अधीनता ।
निपट निरंजन प्रवीननि ए वीनि लीन,
हरिजू सौं प्रीति सबही सौं उदासीनता ।। ६९२ ।।

देव

[कवित्त]

देषैं अनदेषैं सुषदाइ भये दुषदाइ,
सूषत न आँसू सुष सोइबौ तरैं परचौं ।
पानी पान भोजन सदन गुरजन भूल्यौ,
देव दुरजन लोग हसत परैं परचौ ।।
कौंन पाप लाग्यौ पल एकौ न परति कल,
दूरि गयौ गेह न यौ नेह नियरैं परचौ ।
हौं तौ जौ अजान जौ पै जानतौ एती बिथा,
ए रे जिय जान तेरौ जानिवौ गरैं परचौ ।। ६९३ ।।

अथ दुतिय लेप

[दोहा]

रिस सौं गोरे वदन पर, भई अरुनई आइ ।
यह छवि मानिनि की रही, पिय हिय मांहि समाइ ।। ६९४ ।।

ना०[मनाथ]

[दोहा]

आप कलंकी ह्वै रह्यो, मृग को दियो अनंद।
निपुन बचन प्रतिपाल कों, अजहु कहावत चंद ।। ६९५ ।।

मुकंद

[दोहा]

हौं सब देखौं मोहि कौं, उनहि देपे इहि काल ।
तुव प्रसाद हौं सिद्ध भो, नमो दरिद्र दयाल ।। ६९६ ।।

पृथ्वीराज राजा

[दोहा]

कोटि कोटि सज्जन करौं, या दुरजन की भेट ।
रजनी को मेला कियो, विधि के अच्छर मेटि ।। ६९७ ।।

का०तु०

भोर को भांवती भूपी हुती सुभली करी तैं नैं हाहा तो पवाई ।। ६९८ ।।

अथ मुद्रा प्रस्तुत

प्रस्तुत पद में और ही अर्थ प्रकास करै, सो मुद्रा प्रस्तुत ।।

ना०

अली जाय किन पिय जहां, जहां रसीली वास ।।६९९।।

अ०क०

होइ बावरी जो सुनै, वंसी नाद रसाल ।।७००।।

सो०[मनाथ]

लाल लसति जिहि ठौर जह, नव मनि वनी बनाइ ।।७०१।।

अथ रत्नावली

प्रस्तुत अर्थ के और ही नांम जहां क्रम सौं होंइ, सो रत्नावली।

भा०

रसिक चतुर तुव भूमि पति, सकल ज्ञान को धाम ।।७०२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

असुर बिदारण तुम सदा, सिय नायक रणधीर ।
दीन दुष हरण कलपतरु, दया सिंधु रघुवीर ।।७०३।।

अ०क०

[दोहा]

वानी विधि कमला रवन, गौरी सिव अभिराम ।
तुम हीं सीता राम हौ, तुम राधा घनस्यांम ।।७०४।।

मुकंद

[दोहा]

कुंवर किसोरी लाडिली, श्री वृषभान कुमारि ।
प्रीतम प्यारी रसिकनी, त्रि-भुवन की सिरदारि ।।७०५।।

अथ तदगुन

अपनौं गुन तजि कैं अरु संगति को गुन लेइ, सो तदगुन ।

भा०

बेसरि मोती अधर मिलि, पदम राग छवि देइ ।।७०७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सरसति जानि सरीर पैं, रुचि सौं पहरी बाल ।
केसरिया रँग ह्वै रही, सेत कंचुकी लाल ।।७०८।।

विहारी

[दोहा]

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ दीठ पट जोति ।
हरित बांस की बांसुरी, इंद्र-धनुष रँग होति ।।७०९।।

अ०फ०

[दोहा]

मुक्तामाल दई जु तुम, रुचि सौं पहरी बाल ।
तन दुति मिलि पुखराज की, भई माल नँदलाल ।।७१०।।

मतिराम

[दोहा]

तरुनि अरुन एडीनि के, किरनि समूह उदोत ।
वेनी मंडन मुक्त के, पुंज गुंज रुचि होत ।।७११।।

।। कवित्त ।।

मोतिन को हार मैं सवारि दियौ प्यारी हाथ,
तव लग्यौ लालनि कौं विन उपचार है ।
पहरयौ हरषि हिय हाटक कौ ह्वै रह्यौ,
हसै तें लस्यौ हीरनि कौ सरस सुढ़ार है ।।
अधरनि विद्रुम द्रगनि छवि नीलमनी,
अंग अंग अंग और उदित अपार है ।
श्री गुविंद नंद कौ कुमार रिझवार भयौं,
प्यार सौं निहारि बलिहारि वार वार है ।।७१२।।

।। का० सवैया ।।

वेले कौ हार दियौ गुहि मालिनि प्यारी के हाथ गुलाव दिपानौं ।
लायौ हिये तव चंपे कौ ह्वै गयौ मंद हसी तव कुंद कौ जान्यौं ।।
नैननि कौ प्रतिविव परैं गुल सोसन की दुति ह्वै गई मानौं ।
एतौ कछू पलट्यौ अँग मैं रंग देषत ही मन मेरौ विकानौं ।।७१३।।

अथ अतदगुन

संगति भये तें गुन नही लगै, सो अतदगुन ।

भा०

पिय अनुरागी ना भये, वसि रागी मन मांहि ।।७१४।।

गो० [मनाथ]

[दोहा]

सिगरी निसि नव कंज मैं, कीनें रह्यो निकेत ।
निरख्यो तऊ भयो नही, स्यामल मधुकर सेत ।।७१५।।

।। कवित्त ।।

चंदन की खौरि चारु अंग राग घनसार,
अंग अंग सुमन सिंगार मन मोहियै ।
मोतिनु मुकट धरें हीरनि के हार गरें,
पायजेव पाय निज रायनि के जोहिये ।।
चटक मटक पट पीत की फहरानि,
कहत गुबिंद उपमान आंन टोहिये ।
गोरिनु के रंग रंगे आठौं जाम घनस्यांम,
तौ हू घनस्यांमनि तें घने स्यांम सोहियें ।।७१६।।

केसोदास दिग्गज के बैठी मद पंक बीच,
नेंक हू न कारी भई कीरति महेश की ।।७१७।।

अथ पूर्वरूप-द्विविध

संगति को गुन लेइ तजि कैं फिरि अपनौं ही लेइ, सो प्रथम । मिटिवे के उपाय किये हूं न मिटै, सो दुतिय ।

अथ प्रथम पूर्वरूप(भा०)

रंग स्यांम ह्वैं मिल गरें जल तें उज्जल होत ।।७१८।।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

चौकी हीरनि जटित पर, चरन धरैं नव नारि ।
लसी अरुण छवि हास तैं, भई सेत उनहारि ।।७१६।।

अ०क०

[दोहा]

राधे तन दुति मिलि भये, तुम गोरे घनस्यांम ।
फिरि उन सौं अंतर भये, रहे स्याम के स्याम ।।७२०।।

का०

[दोहा]

अधरनि दुति विद्रुम निरषि, नासा मुक्ता गुंज ।
रह्यौ जलज कौ जलज ही, हसति मालती पुंज ।।७२१।।

अथ दुतिय पूर्व रूप(भा०)

दीप मिटायें हूं कियौ, रस नामनि उद्दोत ।

सो० [मनाथ]

[दोहा]

विरह तमैं तिय जानि कैं, व्यथा जौंन्ह की होति ।
दुरी सदन प्रगटी तऊ, अति सरीर की जोति ।।७२२।।

बिहारी

[दोहा]

अंग अंग नग ज[ग]मगै, दीप सिपा-सी देह ।
दिया बढ़ायें हूं रहै, वडो उजारी गेह ।।७२२।।

बैठी हुती प्रभा भरी, बाल चांदिनी मांहि ।
ससि अथयें हूं रूप की, मिटि उज्यारी नांहि ।।७२३।।

का०तु०

ज्यौं ज्यौं प्यारी करत अँध्यारी रस रंग हेत,
त्यौं त्यौं प्यारी करत उज्यारी बिहसानि तैं ।।७२४।।

अथ अनगुन

संगति भये तें अपनौं हीं गुन सरसावै, सो अनगुन ।

ना०

मुक्त मालहि हास तें, अधिक सेत ह्वै जाइ ।।७२५।।

अथ क०

[दोहा]

गई चांदिनी चनक बनि, प्यासे प्रीतम पास ।
ससि दुति मिलि सो गुन भयौ, भूपन बसन प्रकास ।।७२६।।

ध०मा०

प्रभु तव कीरति मिलि सरस, विमल जौंन्ह दरसाति ।।७२७।।

तुलसीदासजू

[दोहा]

गृह गृहीत पुनि वात वस, ते पुनि बीछी मार ।[1]
ताहि पिवायें वारुणी, कहौ कवन उपचार ।।७२८।।

देवीदास

।। कवित्त ।।

पहलें तो वादर है वाय भरचौ वावरौ,
बीछू षायौ बूढ़ी बंस बुरौ विकरार है ।
मदिरा हू प्यायें अरु विजिया चवायें वीज,
वीसक धतूरे हू के षायें वेसुमार हैं ।।
ताहू पें कटाछि पाग्यौ डौलें भाग्यौ ताहि,
एते पर भूत लाग्यौ ऐसौ कु प्रकार है ।
देवीदास कहै ताकौं बैंदन बुलावौ कोऊ,
करौ धौं विचार या कौ कहा उपचार है ।।७२९।।

अथ मीलित

सादृश्य तें भेद लषियें नही, सो मीलित ।

भा०

अरुन वरन तिय चरन पर, जावक लष्यौ न जाइ ।[७३०]

1. अलवर-प्रति में इस प्रकार दिया गया है—

गृहै नीच घर वाय वस, ते पुनि वीछो मार ।

बिहारी

[दोहा]

निसि परछाहीं जोन्ह मैं, रहे दुहुनि के गात ।
हरि राधा इक संग ही, चले गली मैं जात ॥७३१॥

मतिराम

जोन्ह न लखाइ निसि चंद की उज्यारी मुख-
चंद की उज्यारी तन छांहौं छिपा जाति है ॥७३२॥

मोहन छबीले सों मिलन चली ऐसी छबि,
छांह ज्यों छबीली छिपि जाति अंधियारी मैं ।

अथ सामान्य

सादृश्य में विशेष जानि परै नही, सो सामान्य ।

सा०

नाहिं फरक श्रुति कमल अरु, तिय लोचन अनमेष ॥७३३॥

बिहारी

[दोहा]

बरन बास सुकुमारता, सब बिधि रही समाइ ।
पखुरी लगी गुलाब की, गात न जानी जाइ ॥७३४॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

लपिये पिय निसि मैं नवल, कौतुक सुप सरसात ।
हिम कर अरु तिय वदन मैं; अंतर लह्यो न जात ।।७३५।।

अ०मा०

जानैं जात न कमल अरु, तिय मुष सषि सरमांहि ।।७३६।।

अथ उन्मीलित

साद्रस्य तैं भेद फुरै, सो उन्मीलित ।

भा०

कीरति आगैं तुहि न गिरि, छियें परत है जानि ।।७३७।।

विहारी

[दोहा]

दीठि न परत समान दुति, कनक कनक से गात ।
भूषरण करकस लगैं, परस पिछानैं जात ।।७३८।।

कहि लहि कौंन सकै दुरी, सौं न जाइ मैं जाइ ।
तन की सहज सुवासना, देती जो न बताइ ।।७३५।।

मिलि चंदन वेंदी रही, गोरे मुष न लपाइ ।
ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै, त्यौं त्यौं उघरति जाइ ।।७३६।।

मीलित [मिलाना]

[दोहा]

पीके चरनों रंग मुनि, प्रीतम नंदकुमार ।
मनमान आन्यो तिय हियें, सुबरन हिम कर हार ।।७३७।।

उन्मीलित

उदा॰

[दोहा]

भूखन सुबरन तन बरन, मिलि लपाइ हैं नांहि ।
परस कियें कोमल कठिन, एरी जांनें जांहि ।।७३८।।

।। का॰ कवित्त ।।

तन की गुराई तरुनाई की निकाई छाई,
जाकी उजराई तें उज्यारी हू लजाति है ।
सरद निसा में प्यारी उज्जल सिंगार साजें,
गज-गमनी की नीकी सोभा सरसाति हैं ।।
चली अनुरागी मन मोहन के मिलिबे कों,
चांदिनि में मिलि गई क्यों हू न लपाति है ।
लपट सुगंध की अछेह उपटति अंग,
ताही की तरंग लगी सखी संग जाति है ।।७३९।।

सामान्य विसेष

समता में विसेष फुरै, सो विसेष ।

सा॰

निस मुख सम पंकज लगें, ससि दरसन तें सांझ ।।७४०।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

विमल वरन सव एक से, नीर निकट रहे ठांनि ।
वगुलनि संग सुत हंस के, लिये चलन तैं जानि ।।[७४१]

विहारी

[दोहा]

रंच न लषियत पहरियत, कंचन सेत न वाल ।
कुमिलानी जानी परति, उर चंपे की माल ।।७४२।।

श्र०क०

[दोहा]

सर मैं कमलनि मधि वदन, तिय को परत न जानि ।
मुसकावनि लावन्यता, वतरावनि पहिचानि ।।७४३।।

देवीदास

।। कवित्त ।।

मांथो वन्यौं मुह वन्यौं मूंछ वनी पूछ वनी,
लाघव वन्यौं हैं सव वाघ सम तूल कौं ।
रंग्यो चंग्यो अंग वन्यौं लांक वनी पंजा वने,
कृतृम वन्यौं है सव सिंघ ही के मूल कौ ।।
कूजिवे की वेर मौंन गहि वैठ्यौ देवीदास,
तैसोई सुभाव कूद फांद फैल फूल को ।
कुंजरक कुंभहि विदारिवे की वेर कैसें,
कूकर पैंनि वहैगो स्वांग शारदूल कौ ।।७४४।।

[illegible]

जिन में कछु भाव को धरि कें अग उत्तर दीजै, सो गूढ़ोत्तर।

[illegible]

उन गैलनि में पथिक तू, उतरन लायक जोइ ।।७४५।।

सो० [मनाय]

[दोहा]

जहां न लगियें सांवरे, दिनकर तेज कछूक ।
बनी रहति दिन राति नित, अति कोकिल की कूक ।।७४६।।

अ०क०

[दोहा]

जल फल फूल भरयो परो, सुपद सघन आराम ।
इन ह्वैं जो निकसत पथिक, बिरमि निवारत घांम ।।७४७।।

केशव

॥ कवित्त ॥

केसोदास घर घर नाचत फिरत गोप,
एक परे छकि कें मरेई गनियत हैं ।
बागनी के बस बलिदाऊ किये सपा सब,
संग लै को जैये दुप सीस धुनियत हैं ।
मोहि तो गयें हीं बनें दीह दीपमाला पाय,
गायनि सँभारि कों चित्त चुनियत हैं ।।
जो न जैये गोन नैनी लेन वा मरेई सब,
परिक परेई आज सूने सुनियत हैं ।।७४८ ।।

साथ लै सपानि वन जै वो हम छाड्यौ अब,
पेलिवे कौं संग सपा सापा मृग कीनें हैं ।।७४६।।[1]

कविंद्र

॥ कवित्त ॥

सहर मझावत पहर द्वैक लागि जै हैं,
वसती के छोर मैं सराइ है उतारे की ।
भनत कविंद्र मग मांझ ही परैगी सांझ,
पवरि उडानी है वटोही द्वैक मारे की ।।
प्रीतम हमारे परदेस कौं सिधारे यातें,
मया करि वूझति हौं रीति राह हारे की ।
करपैं नदी कैं वरवर कैं तरैं तूं वसि,
चौंकै मति चौकी इत पाहरू हमारे की ।।७५०।।

का० तु०

सांवन की राति मेरौ हियरा डरात जागि,
जागि रे वटोही इहां चोरनि कौ डर है ।।७५१।।

अथ चित्र

प्रष्ण अरु उत्तर ए दोऊ एक ही वचन मैं होंइ, सो चित्र ।

---

1. अलवर-प्रति में इस छंद की शेष पंक्तियां इस प्रकार है—

आपनेंई आये कियें सोहत सरीखवे ए,
केसौदास दास ज्यौं चलत चित्त लीनें हैं ।
आप ही अगाऊ कैंक लेत नाम मेरो ए,
वापुरे मिलाप के सलाप करि दीने हैं ।।
राधे कौं सुनाइ कैं कहत असैं घनस्याम,
सुबल को लै लै नाम काम भय भीने हैं ।

।। सवै[या] ।।

[illegible] मनि [illegible] लगि राहु सु कोकिल बोलति है मृदु बानी ।
सो [illegible] दुतिया निन जागिनि कोक लहै सो महा रस ग्यानी ।।
[illegible] मथुरा नगरी गा ब्रज मैं ब्रजचंद गुविंद जू के मन मानी ।
फागुन मैं निज [illegible] लाज रगै घर कौन मैं बैठि सयानी ।।७५२।।

अनेक प्रश्न कौ एक ही उत्तर

।। चतुर विहारी कौ कवित्त ।।

चतुर बिहारी जू पै मिलि आंई बाला सात,
मांगति हैं आज कछू हम कौं दिवाइये ।
गोद लेहु फूल देहु नांकं पहराय मोती,
पाननि की पातरिहु ता सन हूं ल्याइये ।।
ऊंचे से अवास के झरोपे बीच बैठिये जू,
सेज स्याम चलिये जू रति पति ध्याइये ।
च्यारि समुझाइबे कौं उत्तर जु दीनौं एक,
उक्ति विसेप भांति वारी नहि आइयै ।।७५३।।

सं०पा०

[दोहा]

राधा रहित कहा कहाँ, को है सुरपति धाम ।
रुचिर हिये पर को लसी, कहौ उरबसी स्यांम ।।७५४।।

अथ बहिर्लापिका

बाहिर सौं उत्तर दीजै, सो बहिर्लापिका ।

[दोहा]

पान सरै घोरा अरै, विद्या वीसरि जाइ ।
जगरा मैं वाटी वरै, कहु चेला कहि दाय ।।७५५।।

उत्तर—फेरी नही ।

अ०मा०

विष्णु वरन को सलिल गति, रद अंवर कहा चाहि ।।७५६।।

उत्तर—अधर

अथ अंतरलापिका

भीतरि सौं उत्तर दीजै, सो अंतर्लापिका ।

अ०मा०

नट सिपवत कहा नचत कौ, पावस मध्य कलापि ।।७५७।।

केसव

[छप्पै]

कहा न सज्जन ववत कहा, सुनि गोपी मोहि[त],
कहा दास कौ नाम कवित्त, मैं कहियत को हित,
को प्यारो जग मां कहा, संग लाग्यौइ आवै,
को वासर कौं करै कहा, संसारहि भावै,
कहि काहि देपि कायर कपै, आदि अंत जानहु वरन,
यह उत्तर केसोराय दिय, सवै जग सोभा धरन ।।७५८।।

अथ व्यस्त समस्त (प्रतिलोम)

या को उत्तर सांकर की उनहारि है ।

केसव

[छप्पै]

को शुभ अक्षर कौंन तिया जोधनि बस कीनी,
विजय सिद्धि संग्राम राम कहि कौंनें दीनी,
कंसराज जदुवंस बसत कैसें केसवपुर,
बट सौं कहियै कहा नाम जानहु अपनें उर,
कहि कौंन जननि गनपति की कमल-नैंनि सुंदर बरुनि ।
सुनि बेद पुराननि मैं कही सनकादिक सकर तरुनि ॥७५९॥

अथ व्यस्त गतागत

या को उत्तर गतागत है ।

॥ हवी को छप्पै ॥

का दूती सौं कहत पुरुष कहा गुहत मंग तिय,
कौंन गंध कौं लहत मधुप कहं रहत हरपि हिय,
कहा सुर-वधू नाम ज्ञान तें को कहि भागत,
कहा प्रात को नाम कहा लपो करि मांगत,
कहि कहा मीन बेधत हियो का कहि लेत हुलास री ।
कहि हवी कौंन मोही वधू कहति लाल की बांसुरी ॥७६०॥

अथ सूक्षम

परायो आसै कछु भाव सौं सैननि मैं लखियै, सो सूक्षम ।

भा०

मैं देख्यौ उहि सीस-मणि, केसनि लियौ छिपाय ॥७६१॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

सनमुष ह्वै मीड़े करनि, श्रीफल रसिक मुरारि ।
कसकि उठि तिय वदन पैं, घूंघट असित सुधारि ॥७६२॥

॥ पुरान कौ कवित्त ॥

वांसुरी के वीच एक भौर डारि लाई सषी,
मूंदि वट पट पल्लव तैं महा वुद्धि भारी सौं ।
भनत पुरान या मैं आपु ही तैं धुनि होति,
कांन दैं कैं सुनौं कह्यौं राधे सुकुमारी सौं ॥
रीझि रीझि वारि ताहि देषत मगन भई,
नभ तन चितै मुष ढांप्यौ स्याम सारी सौं ।
आंचर मैं गांठि दै विहसि उठि चली आली,
प्यारी कह्यौ आज ह्यांही रहौ नैं हमारी सौं ॥७६३॥

केसव

॥ सवैया ॥

वैठी हुति वृषभान कुमारि सषीनि के मंडल मध्य प्रवीनी ।
ताही समैं कुमिलानी-सी कंज कली लै मिलि इक ग्वालि नवीनी ॥
चंदन सौं छिरक्यौ उन वा कहँ पान दये करुणा रस भीनी ।
चंदन चित्र कपोलनि लोपि कैं अंजन आंजि विदा करि दीनी ॥७६४॥

मतिराम

[सवैया]

जिय जानत चोर सु चोरनि की गति, साह की साह वली की चली ।
ठग की ठग कामक काम की, छल की छल छैल छली की छली ।।
पुनि लंपट जानत लंपट को, मतिराम न जानें कहां धौं चली ।
उन फेरि दियो नथ को मुकता, उन फेरि कें फूंकी गुलाब कली ।।७६५।।

अथ पिहित

पराई वात कौं छिपी जानि कें अरु भाव सौं लपावै, सो पिहित ।

मा०

प्रातहि आये सेज पिय, हसि दावति तिय पाय ।।७७६।।

सो०[मनाय]

[दोहा]

विथुरे कच रति रंग मैं, समुझि सपी मुप मोरि ।
दई तरुनि कौं विहसि कें, अरुण पाट की डोरि ।।७६७।।

अ०क०

[दोहा]

प्रीतम आये प्रात ही, अनतें रैनि विहाइ ।
वाल दिपायो आदरस, आदर सौं वैठाइ ।।७६८।।

अ०मा०

पिय ही प्रात आवत सुघर, सेज सवारति भीर ॥७६९॥

नरोत्तम

॥ कवित्त ॥

आये मन मौंहन विताइ रैंनि अनतें सु,
काहू सौति जावक लगाइ दियौ भाल कौं ।
सुकवि नरोत्तम जलज नैंनी आदर सौं,
देषत ही मिली उठि मदन गुपाल कौं ॥
अंचल सौं झारि पग चंदन नयन लाइ,
हसि मुष पौंछि वैंन रिसन रसाल कौं ।
कह्यौ हसि धाय तव सहचरी जाय नीकें,
आरसी के महल विछौंनां किये लाल कौं ॥७७१॥

केसव

॥ सवैया ॥

आवत देषि लिये उठि आगें ह्वै आपु ही आनि कें आसन दीनौं ।
आप ही पाय पषारि भलें जल पानी कौ भाजन लाय नवीनौं ॥
वीरा वनाय कें आगें धरे तव ही कर कोमल वीजना लीनौं ।
वांह गही हरि अैसें कह्यौ हसि मैं तो इतो अपराधु न कीनौं ॥७७२॥

अथ व्याजोक्ति

आकार दुराइ कै कछु और विधि वचन कहियै, सो व्याजोक्ति ।

मा०

सषि सुष कीने कर्म ए, मानिक जानि अनार ॥७७३॥

[illegible]

[दोहा]

फूल लेन कों आज मैं, सांझ गई ही बीर ।
फल चित्र फल जानि कें करे अधर छत कीर ॥७७४॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

मृग छौंना सुंदर निरषि, लियो अंक मैं आज ।
पुरकी लगी पुरोट उर, सषि करि कछू इलाज ॥७७५॥

मतिराम

[दोहा]

भलो नही यह केवरो, आली गृह आराम ।
बगन फटे कंटक लगे, निसि दिन आठौं जाम ॥७७६॥

॥ का० कवित्त ॥

कहा तू हसै है सब जगत हसते है री,
मेरो मन भांति भांति सरमनि मारयो है ।
मेरी ओर देषि मुसकात नटि जात मेरे,
घर करि सात इन नित व्रत धारयो है ॥
छतियां चढी हूं तोहू बतियां बनावतु है,
दतियां लगावत हू हियरा न हारयो है ।
छोडगो मु हू जो यह निहनै बिचारयो है,
कन्हैया जू कों आज तो मैं पंकरि पछारयो है ॥७७७॥

अथ गूढ़ोक्ति

औंर के मिस औंर सौं कहियै, सो गूढ़ोक्ति ।

भा०

कालिह सपी हौं जांउगी, पूजन देव महेस ।।७७८।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

कही टेरि समुझाइ उत, निरपि छवीलौ छैल ।
कालिह अकेली जांउगी, अलि मधुवन की सैल ।।७७९।।

सुंदर

[सवैया]

सुंदर जानि कैं मदिर के पिछवारै ही आनि कैं ठाढे कन्हाई ।
चाहै कछू कह्यौ पैं सकुचै तव कीनी है वातनि मैं चतुराई ।।
पूछि परोसिन को मिसु कैं पुनि वाही मैं पी कौं सहेट वताई ।
साथ तिहारी ए कालिह हौं जांउगी देवी के देहरै पूजन माई ।।७८०।।

अथ विवृतोक्ति

पराये छिपे श्लेप कौं परगट कीजै, सो विवृतोक्ति ।

भा०

पूजन देव महेस कौ, कहा सिपावत सैंन ।

ग० ह०

[दोहा]

गरजत कहुँ बरसत कहूं, दरसत कहुँ घनस्यांम ।
कहुँ तरसावत ही रहत, कहत जाति यौं बाम ॥७८२॥

बिहारी

[दोहा]

चिरंजीव जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभरी ।
उह वृषभान कुमारिका, तुम हलधर के बीर ॥७८३॥

फगुन हार हियें लसैं, सनकी बेंदी भाल ।
गणपति पेत परो परी, परे उरोजन बाल ॥७८४॥

के०तु०

कानी ये दानहि चाहत चाष्यो सुअंत तऊ तुम कुंज बिहारी ॥७८५॥

मुकंद

कहूं उघर घुमडत कहूं घनस्यांम कहूं,
गरजत कहूं रंग बरसात हौं ॥७८६॥

अथ जुक्ति

क्रिया करि कैं अरु कर्म कौं छिपाइये, सो जुक्ति ।

ना०

पीय चलन आंसू चले, पौंछत नैन जँभात ॥७८७॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हरि कौं पनघट मैं निरषि, पुलकित भयौ शरीर ।
तिय नें अंचल ओट दै, रोक्यौ तृविधि समीर ।।७८८।।

अ०क०

[दोहा]

चित्र मित्र को लिषत ही, कामिन सुमति निधान ।
निरपि सपी कौं लिषि दिये, कुसुम धनुष कर वान ।।७८९।।

अ०क०

सुक निसिरव मधि कहत, तिय मन चैन्नुहि दीन ।।७९०।।

मतिराम

।। सवैया ।।

मौंहन सौं दिन द्वैक ही तें मतिराम भयौ अनुराग सुहायौ ।
वैठी हुती तिय मायके मैं ससुरा को काहू संदेस सुनायौ ।।
नाह कें व्याह की चाह सुनी उर मांझ छवीली कें आनँद छायौ ।
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा दुष को मिसु कें सुष वाल छिपायौ ।।७९१।।

अथ लोकोक्ति

लोक की कहनावति कहियै, सो लोकोक्ति ।

भा०

नैंन मूंदी पट मांस लौं, सहियै विरह विपाद ।।७९२।।

मुरद

जिन की तन में सरस छबि, जग-मग जग-मग होति ॥७६३॥

सो०[मनाग][1]

[दोहा]

आवति है उर में अली, कीजै यही उपाय ।
जित है नंदकिसोर नित, जंयें पंथ लगाय ॥७६४॥

॥ देव को कवित्त ॥

सहर सहर सौंधो सीतल सुगंध बहै,
घहर घहर घन घोरि कें गहरियां ।
झहर झहर झुकि झीनों झर लायो देव,
छहर छहर छोटी बूंदनि छहरियां ॥
हहर हहर हसि हसि कें हिंडोरें चढ़े,
थहर थहर तन कोमल थहरियां ।
फहर फहर होत प्रीतम को पीतांबर,
लहर लहर करें प्यारी को लहरिया ॥७६५॥

अथ छेकोक्ति

लोकोक्ति कछु अर्थ सहित होइ, सो छेकोक्ति ।

---

1. अलवर-प्रति में सोमनाथ से पूर्व अलकार कण्ठाभरण से यह उदाहरण और दिया गया है --

८०२० उदय कछु दिन बनि गयो, या कपटी संग भोग ।
कहां कान्ह अब हम कहां, नदी नाव संजोग ॥

भा०

जो गायनि कौं फेरि है, ताहि धनंजय जानि ॥७९६॥

सो०[मनाथ]

[दोहा]

ग्वारनि सौं वतरात हो, गहैं कदम की डार ।
हौं मोही मुसकाइ कैं, अलि उहि नंदकुमार ॥७९७॥

अ०क०

[दोहा]

उद्धव तुम जानत कहा, जानत कहा अहीर ।
जानति नीकी भांति है, विरहनि विरहनि पीर ॥७९८॥

का०

जादव कुल को राषि लै, मति ह्वै जाइ अहीर ॥७९९॥

अथ वक्रोक्ति

स्वर के लेप सौं अर्थ फेर होइ, सो वक्रोक्ति ॥८००॥

भा०

रसिक अपूर वहो पिया, बुरो कहत नहि कोइ ॥८०१॥

केशव

॥ सवैया ॥

तं जु कह्यो मुप मोहन को अरविंद सो है सुतो चंद सो है सुतो चंद सो
देप्यो ॥८०१॥

अथ सुभावोक्ति

जाति को सुभाव वर्निये, सो स्वभावोक्ति ।

मा०

हंसि हंसि देषति फिरि झुकति, मुह मोरति इतराइ ॥८०२॥

अ०मा०

द्रग नायें अंगनि ढ़कें, लसति कुल वधू मौंन ॥८०२॥

अ०क०

[दोहा]

धरि कपोल पर आंगुरी, बात कहति मुसकाइ ।
एरी ए तेरी अदा, मो पर वरनि न जाइ ॥८०३॥

॥ का० कवित्त ॥

दोहन के समैं मन मोहन लला की उह,
ललित लुनाई कवि वरनि कहा कहै ।
कबहूं किलकि धाय नंद के निकट आइ,
कर उचकाई मुप तोतले बबा कहैं ॥
ता को ब्रजरांनी देषि लोचन सिरानी मुप,
बोलैं मृदुबानीं सौं वलैया लैउ मा कहै ।

गैया की ओट ह्वै ललैया विलुकैया लैकें,
जसुमति मैया सौं कन्हैया जब ता कहै ।।८०४।।

सुरत भवन लौं गवन की अवधि सपी,
श्रवन लौं वचन अवधि जिय जानियें ।
चित्त की अवधि श्रीगुविंद कंत परजंत,........इत्यादि ।।८०५।।

अथ भाविक

भूत भविष्य वर्त्तमान जो प्रत्यक्ष भली प्रकार देषियें, सो भाविक ।

भा०

वृंदावन मैं आज वह, लीला देषी आइ ।।८०६।।

अ०क०

[दोहा]

पूरन प्रेम परे भरे, राधा नंदकुमार ।
लषि आई चलि लषि भट्ठ, अब लौं करत विहार ।।८०७।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

हम सौं अैसी जतन कहि, सूधौ निपट विचारि ।
वरसानें मैं आज उह, वहुरि भेटियै नारि ।।८०८।।

अ०भा०

लषत विदेस हु जनु प्रिया, देति समित जुत पांन ।।८०९।।

अथ उद्दात

उपलक्षण दै कै अधिकारी कौं सोधियै, सो उद्दात ।

गो०

तुम जाके बस होत हो, गुनत तनक-सी बात ।।८१०।।

गो०[मनाय]

[दोहा]

नीठि करी है सुमन उह, जसुमति नैं समुझाइ ।
तुम आये हो आज हरि, जाको मांपन पाई ।।८११।।

अथ श्लाघ्य चरित्र उद्दात

चरित्रन की प्रसंसा कीजै, सो श्लाघ्य चरित्र उद्दात ।

ग०क०

[दोहा]

बृंदावन विहरत भलें, वनितन मैं ब्रजराज ।
सुर नारी मोहित भई, जोहत सकल समाज ।।८१२।।

रामायण सूचनिका[1]

[दोहा]

स्वर्न सिंघासन छत्र जुत, सोभित सीताराम ।
लषन भरत ढारन चँवर, वरषि सुमन सुरवाम ।।८१३।।

देव

।। कवित्त ।।

पामरीनि पांवड़े परे हैं पुर पौरि लग,
धाम धाम धूपनि की धूम धुनियत है ।
कस्तूरी अतर सार चोआर सघन सार,
दीपक हजारनि अँध्यार लुनियत है ।।
मधुर मृदंग राग रंग के तरंगनि मैं,
अंग अंग गोपिनु के गुन गनियत हैं ।
देव सुष साज व्रजराज महाराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियत है ।।८१४।।

[छप्पं]

सुनत मदन मन लज्यौ तज्यौ पति व्रत व्रजनारी,
सिव समाधि छुटि गई वेद-धुनि ब्रह्म बिसारी,
पसु न चरत तृण छकित चकित नभ चंद उडगगन,
थकित पवन पुनि जमुन नीर गिरि चले पुलकि तन,
पय पिवत न बालक वच्छ सब पग मृग रस वस अति मुदित ।
वंशी गुविंद व्रजचंद की वृंदावन बाजत विदित ।।८१५।।

1. अलवर-प्रति में नहीं है ।

नागरीदास गजा[1]

[सोरठा]

हौं गये नर थिर अचर चर, सरद पूरन ससि चढ्यौ ।
नाग नागर रास औसर, वृंदावन सोभा वढ्यौ ॥८१६॥

अथ रिद्धवंत चरित्र उद्दात

रिद्धवंत चरित्र वर्नियै, सो रिद्धवंत चरित्र उद्दात ।

य०क०

[दोहा]

वसन जरी के पहरि कैं, वैठी सुवरन धाम ।
निकट गये हूं संगिनि हूं, नीठि निहारी वाम ॥८१७॥

कोरि कोरि कला गुप चंद तैं सरस प्यारी,
वादला फरस रूप झला-झल वरसै ।

अथ अत्युक्ति

अर्थ को अतसै वर्नन कीजे, सो अत्युक्ति ।

य०क०

[दोहा]

नंद दिये नंद भयें, मनि कंचन के ढेर ।
कामधेंनु गोपी भई, जाचक भये कुमेर ॥८१८॥

1 [illegible]-प्रति मे नही है ।

ना०

जाचक तेरे दान तें, भये कलपतरु भूप ।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

पेलत चलत सिकार तू, जब जब ह्वै असवार ।
सहस-फनी के सीस पैं परकति हय षुरतार ।।८१९।।

नंददासजू

[दोहा]

अष्ट सिद्धि बहु कष्ट करि, बिरलैं काहू दीष ।
सो संपति वृषभान घर, परति भिषारिनु भीष ।।८२०।।

केसव

।। कवित्त ।।

कापि उठ्यौ आप निधि तपन हूं ताप चढ़ी,
सीरी ए सरीर गति भई रजनीस की ।
अजहूं न ऊंचौ चाहै अनिल मलिन मुष,
लागी रही लोक लाज मानौं मन वीस की ।।
छल सौं छबीली लछि छाती मैं छिपाई हरि,
छूटि गई दान गति कोरि हूंति तीस की ।
केसौदास तिही काल कारोई ह्वै गयौ काल,
सुनत श्रवन वकसीस एकईस की ।।८२१।।

[कवित्त]

पूत भये आज महाराज दशरत्थ साजि,
दीनें गज बाजिर थकि मति विसेस के ।
भोर निधि विधि सु कांपे कहि आवै श्रीगुविंद,
कौ सौं देषि गरे गरव सुरेस के ।।
विदा होइ बंदी निज घरनि सिधारे भोर,
दलनि निहारि भूप भजे देस देस के ।
भूपन निहारि तब इन यों उचारि तुम,
डरो जिन हम हैं भिषारी कोसलेस के ।।८२२।।

अथ निरुक्ति

जोग तें अर्थ की कल्पना होइ, सो निरुक्ति ।

या०

उद्धव कुवजा बस भये, निरगुन उहे निदान ।।८२३।।

मो०[मनाथ]

[दोहा]

उतही चितहि लग्यो रहै, नेंकु न रुचत निकेत ।
नित प्रति जैवो परिक मैं, यही सुगोर सहेत ।।८२४।।

अ०क०

[दोहा]

निसि वासर विहरत फिरौ, बहु वनितनि के धाम ।
नीकी बानि गही कियो, सही विहारी नाम ।।८२५।।

अथ प्रतिषेध

प्रसिद्ध अर्थ को निषेध कीजे सो प्रतिषेध ।

भा०

मोहन कर मुरली नहीं, कछु इक वडी वलाइ ॥८२६॥

सो० [मनाथ]

[दोहा]

निरपत ही रस वस भये, हरि कुल-कानि विगोइ ।
नहि तिय की मुसकानि यह, और वस्तु ही होइ ॥८२७॥

केसव

॥ सवैया ॥[1]

चंदन ही विषकंद है केसव राहु इहीं गुन लीलि न लीनौं ।
कुंभज पावन जानि अपावन धोवें पियौ पच्चि जान न दीनौं ॥
या सौं सुधाधर सेस विषद्धर नाम धरचौ विधि है वुधि हीनौं ।
सूर सौं माई कहा कहिये यह पाप लै आप वरावरि कीनौं ॥८२८॥

अथ 'वधि[2]

सिद्धि अर्थ कौं फेरि साधिये, सो विधि ।

भा०

कोकिल है कोकिल जवै, रितु मैं करि है टेर ॥८२९॥

---

1. अलवर-प्रति में केवल एक पंक्ति है ।
2. अलवर-प्रति में 'अथ विधि' न लिख कर लक्षण ही लिख दिया है जिससे स्पष्ट नहीं होता ।

[illegible]

[दोहा]

जैसी पावस मैं लगैं, तैसी अब कछु नांहि ।
तैसी है केकी करै, जब केका रितु मांहि ॥८३०॥

सो० [सनाम]

[दोहा]

चरन गावरे प्रीति सौं, नित सेवत चित लाइ ।
दीन बंध तब जोस जी, मो अति दीन सहाय ॥८३१॥

॥ का० कवित्त ॥

कारे कारे काक अरु कोकिल हैं कारे कारे,
दोऊन को भेद कोऊ कवहूं पिछानैं हैं ।
काक हैं सो काक अरु कोकिल सु कोकिल हैं,
या को भेद लोग रितुराज ही मैं जानै हैं ॥
कोऊ कगमार काच बांधतू हैं सीस पर,
मनिनु के भूषन लै चरन मैं ठाने हैं ।
लैन दैन समैं जब किमति परिक्षा होति,
काच है सु काच मनि मनि मही प्रमानै हैं ॥८३२॥

देवीदास

[कवित्त]

ऐसे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ,
कीजियै न मैलो मन काहू जो कछू करी ।
चोरन बिरानैं घर गये को सुभाव यही,
मांन अपमान काहू रे करी कि जू करी ॥

श्रौर सब लोग सो तौ जात हैं नृपति पास,
तो कौं जौह टौकदेवी काहू पल दू करी ।
द्वारै गजराज ठाढ़ौ कूकरी सभा के बीच,
कूकरीस कूकरी पैं तू करी सु तू करी ।।८३३।।

अथ द्वि-विधि हेतु

कारण सहित कारज वर्नियैं, सो प्रथम । कारन अरु कारज ए दोऊ एक ही वस्तु के अंग हौंइ, सो दुतिय ।

अथ प्रथम हेतु

उदित भयौ ससि मानिनि, मांन मिटावन मानि ।।८३४।।

अ०क०

[दोहा]

कामिन अति हँसित भई, फरकत बांयौं नैंन ।
जानी आइ विदेस तैं, मिलि है पिय सुष दैंन ।।८३५।।

सो० [मनाथ]

सषि इहि जल के परस तैं, आवत त्रिविधि समीर ।।८३६।।

हरिवंसजू

वर हिंडोर झकोरनि, कामिनि अधिक डराति ।।८३७।।

केसव भेटत ही भरि अंक, हसी सब कोक दै गोपकुमारी ।।८३७।।

॥ के० कवित्त ॥[1]

ऐसा होत क़ूर कलपतरु थूहर,
परमहंस चूहर की होत परपाटी कौं ।
भूलनि मगरा होत ठाढ का मगैया होत,
गजमद चुवत सु चेरो होत चांटी कौं ।
याहे कवि केसोराय पुन्य कियें पाप होत,
वैरी निज बाप होत सांप होत सांटी कौ ।
स्यार मग शेर होत निर्धन कुमेर होत,
दिननि कौ फेर होत मेर होत मांटी कौ ॥८३८॥

अथ द्वितिय हेतु(भा०)

मेरे रिद्धि समृद्धि सब तेरी कृपा बपानि ॥८३९॥

सो०[मनाय]

[दोहा]

सांची बात यही सुनौं, दसरथ राजकुमार ।
बीज वृक्ष सुर नर सबै, तेरी कला अपार ॥८४०॥

प्र०प्र०

[दोहा]

जा तन तुम चितवत तनक, मंद मः मुसकाइ ।
ताहि तुरत सब भांति सौं, नव निधि सुप सरसाइ ॥८४२॥

अथ अनुमान

कछु वस्तु को अनुमान कीजे, सो अनुमान ।

---

1. [illegible]-प्रति में नहीं है।

सो०[मनाथ]

॥ सवैया ॥

कूवरी के रस रंग छके ससिनाथ जू वे सुष साजनि साजि हैं ।
जोग हमैं तुम ही कहौ उद्धव ए बतिया उन कौं पुनि छाजि हैं ॥
ह्यां निसि मैं असुवानि कौ सिंधु बढ़ै मति कौंन नई उपराजि है ।
जानति हैं वा अषै वट ज्यौं वंसुरी वट मैं ब्रजराज विराजि हैं ॥८४३॥

इहां 'जानति हैं' यह अनुमान ।

के० तु० :

नैंसिकु दूध कौं राष्यौ जु बांधि सु जानति हौं माई जायौ न तेरौ ।
॥८४४॥

अथ उरजस्वित

आभास अंग होइ अरु रसादिक मुष्य होइ, सो उरजस्वित ।

कुलपति

[दोहा]

राम लषन कर धनुष लषि, अरिगन अधिक अधीर ।
तजत सार सज्जत नदी, शूर-बीर द्रग नीर ॥८४५॥

इहां भाव कौ अंग 'भावाभास' है ।

[दोहा]

इक चुंबत कुच गहत इक, आलिंगिति भरि वांह ।
तुव वैरिनु की अंगना, भ्रमति फिरति बिन नाह ॥८४५॥

इहां भाव कौ अंग 'रसाभास' है ।

॥ सोरठा ॥

सुमन मलिन लै हाथ, जुवति कौंन पूजन चली ।
नाहनि विश्व के नाथ, पिय संग कासी बास दै ॥८४६॥

इहां श्रृंगार को अंग 'देव रति भाव ध्वनि' है ।

वैभव

॥ सवैया ॥

को कपुरा जु मिल्यो है विभीषण है कुल दूषन जीवैंगो को लौं ।
कुंभकरन मर्‌यो मघवा रिपु तौर कहा डर है जम सौ लौं ॥
श्री रघुनाथ के सुंदर गातनि जानहि तू कुसरात न तो लौं ।
गाल सबै दिगपालनि को कर रावण कें करवाल है जो लौं ॥८४७॥

इहां वीर को अंग 'गर्व' है ।

अथ रसवत

जहां रस अंग होइ अरु मुख्य कोऊ ओर होइ, सो रसवत ।

॥ कु० दोहा ॥

सुपनों है संसार यह, रहत न जानैं कोइ ।
पिय मिलि मन भाये करौ, कल्हि कहां धौं होइ ॥८४८॥

इहां 'सांति रस' सृंगार को अंग है ।

॥ कवित्त ॥

आगम औ चुंबन अलिंगन हथ्यार साजि,
प्रफुलित मन सो अधर मधुपान कें ।

अंग अंग श्रौं कल मचाये वहु भांतिन सौं,
पूरि राषौं मंदिर मनित सुरतानि कें ।।
इहि वस कीनौं जग याहि वस करौं आज,
कैसें हूं न छाडि हौं उदैहूं भयें भांन कें ।
मदन महीप के बिथोरि तोरि पांचौ वांन,
करौं आंन आंन अव सुरत निदांन कें ।।८४९।।

इहां शृंगार कौ अंग 'वीर' है ।

।। सवैया ।।

जा करि कें सुष पावति ही रसना सु यहै कर है सुषदांनी ।
इत्यादि ।।८५०।।

एक धरें कमलासनि पें कर, एक सुदर्शन चक्र धरें हैं ।
एक बिषातुर संभु के सीस, समुद्र मथान मैं एक अरें हैं ।।
इत्यादि [८५१]

अथ जात्य

जैसौ जा कौ शृंगार होइ तैसोई वर्नियै सो, जात्य ।

विहारी

[दोहा]

सीस मुकट कटि कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
यह बानिक मो मन सदा, वसौ विहारी लाल ।।८५२।।

सो०[मनाथ]

[दोहा]

केसरि रँग भीनें वसन, कटि गुलाल की फैंट ।
इहि वानक नँदलाल सौं, आज ह्वै गई भेंट ।।८५३।।

।। का० कवित्त ।।

माथे पै मुकुट देषि चंद्रिका चटक देषि,
छबि की लटक देषि रूप रस पीजियै ।
लोचन बिसाल देषि गरे गुंज माल देषि,
अधर सु लाल देषि चितै चोंप कीजियै ।।
कुंडल हलन देषि अलकैं बलनि देषि,
पलकैं चलन देषि सरबसु दीजियै ।
पीतांबर छोर देषि मुरली की घोर देषि,
सांवरे की ओर देषि देषिबोई कीजियै ।।८५४।।

।। छप्प ।।

किरीट कुंडल अरु तिलक भाल राजत छबि छाजत,
पीत बसन तन स्यांम काम कोटि लषि लाजत,
कंठ त्रिबली श्री बत्स वक्ष सोहत मन मोहत,
बैजंती बन—माल कौंन उपमा कबि टोहत,
संख चक्र गदा पद्मधर अमित रूप गुन गरुड धुज ।
गोबिंद चरन बंदित सदा जय जय जय श्री चत्रभुज ।।८५५।।

अथ सुसिद्ध

सिद्धि कौं साधि मरैं ओर अरु भोगैं ओर, सो सुसिद्ध ।

केसव

।। छप्पय ।।

सर्धा सचि सचि मरैं महूर मधुपांन करत सुष,
षनि षनि मरत गवार कूप जल लोग पिवत सुष,
बाग मान बहि मरैं फूल बाधत उदार नर,
पचि पचि मरत सुवार भूप भोजन निकरत बर,
सुगन सुनार गढ़ि गढ़ि मरैं भांमिनि भूपित करति तन ।
कहि केसव लेषक लिषि मरैं पंडित पढ़त पुरान गन ।।८५६।।

अ०मा०

थवई पचि पचि मरत सुष, मंदिर लहत धनेस ॥८५७॥

फा०

पनि पनि मरै जु ऊंनरौ, औरु भोगवै भुजंग ॥८५८॥

अथ प्रसिद्ध

साधन कौं साधै एक अरु भोगैं अनेक, सो प्रसिद्ध ।

केसव

॥ सवैया ॥

मात कौ मोह पिता परतोषन केवल राम भरे रिस भारे ।
और गुन एकहि अर्जुन कौ भुव मंडल के सव छत्रिय मारे ॥
देवपुरी कहँ औधिपुरी जन केसवदास बडे अरु वारे ।
सूकर स्वान समेत सवै हरीचंद के सत्त सदेह सिधारे ॥८५९॥

तत्व वेता[1]

पिता पछ चौवीस, माता के मानौं ।
षोडस तिय उनमान, मास पुत्री के जानौं ॥
एकादस कुल वहिन, सुदस भूवा के पेषौं ।
मात वहिन कुल आठ, सुरति संमृति करि लेषौ ॥
तत वेता हितु लोक मैं, करि विचार अैसैं कही ।
भक्त होइ जा वंस मैं, इक सत वंस उधरै सही ॥८६०॥

---

1. अलवर-प्रति में केवल अन्तिम पंक्ति ही दी गई है ।

दो०

...रै पाती पैठ नै, बूड़ै निगरी नाव ॥८६१॥

अथ अमित

साधन की सिद्धि साधन हूँ कै भोगै, सो अमित।

केशव

॥ सवैया ॥

आनन सीकर-सी कहि काहे तैं तोहि तकौं अति आतुर आई।
फीकी परयो मुख ही मुख राग क्यों तेरे पिया बहु बार बकाई॥
प्रीतम को पट क्यौं लपट्यो सखि केवल तेरी प्रतीति कौं ल्याई।
सौंहैं ही केसव नाइक सौं रमि नाइका बातनि हीं बहराई ॥८६२॥

अ०सा०

पठई पिय हिय लगन हित, पाती अपुनहि लाग ॥८६३॥

अथ विपरीति

सिद्धि के साधिबे कौं साधन बाधक होइ, सो विपरीति।

केशव

[कवित्त]

साथ न सयानौ कोऊ हाथ न हथ्यार रघु-
-नाथ जू के जन को तुरंग गहि राप्योई।
कांपनि कछोटी छोटी काक पक्ष पांच ही,
बरन किनु छत्र अभिलाप्योई॥

नल नील अंगद सहित जांमवंत हनु—
-मंत से अनंत जिन नीर निधि नांघ्यौई ।
केसीदास दीप दीप भूपनि सौ रघुकुल,
कुस लव जीति कें विजय-रस चाष्यौई ॥८६४॥

प्रश्न

॥ टीका कर्त्ता कौ दोहा ॥

साथ सयानौ नांहि नें, हाथ हथ्यार न कोइ ।
हितू नही जय कौ सु क्यौ, नहि विभावना होइ ॥८६५॥

उत्तर

[दोहा]

तहां इहां कुस लव तनय, प्रभु के कारण आहि ।
जय के तिनहि विजय लही, यौं विपरीति सु चाहि ॥८६६॥

अ०मा०

मैं पठई पर दूति यह, चूक सु मो मन मांहि ॥८६७॥

अथ विरुद्ध

विरुद्ध धर्म वर्नियै, सो विरुद्ध ।

केसव

॥ सवैया ॥

कृष्ण हरें हरयें हरें संपति संभु विपत्ति यहै अधिकाई ।
जातक काम अकामिनु के हितू घातक काम सकाम सहाई ॥

...ानी मैं न...न्द्र दुरावति वे ए फिरावत हैं सव के सँग धाई ।
ज...पि ...सव एक तऊ हरि तें हर सेवक कों सुपदाई ॥८६८॥

अथ प्रेम

कपट निपट मिटि जाइ अरु पूरण प्रीति प्रगटै, सो प्रेम ।

॥ सवैया ॥

उह वात सुनें सपनेंहू वियोग की हाँ न कहै दोइ टूक हियो ।
मिलि पेलियै जासहु वालक सौं कहि तासौं अवोलो क्यों जात कियो ।
कहियें[1] कवि केसव नैंननि कौं विन काजहि पावक पुंज पियो ।
सगि तू वरजै अरु लोग हसैं कहि काहे कौं प्रेम को नेम लियो ॥८६५॥

[सवैया]

सांवरे रँग रँगे सु रँगे पुनि प्रेम पगे सु पगेई पगे हैं ।
रूप अनूप समुद्र अपार मझार पगे सु पगेई पगे हैं ॥
और कहा कहौं आली अवै अति ठीक ठगे सु ठगेई ठगे हैं ।
या व्रजचंद गुविंद की सैंन सौं नैंन लगे सु लगेई लगे हैं ॥८६६॥

अ० मा०

गपि मन भावति हि कहन, जिनि देपहु यह लोग ॥८६७॥

अथ जुक्ताजुक्त

जुक्त मैं अजुक्त वर्निए, सो जुक्ताजुक्त ।

केसव

[सवैया]

पाप की सिद्धि सदा रिन वृद्धि सु कीरति आप की आप कही की ।
दुप को दान औ सूतक न्हान सु दासी की संतति लागति फीको ।।
बेटी को भोजन भूषन रांड को केसव प्रीति सदा पर ती की ।
जुद्ध मैं लाज दया अरि की पुनि बांभन जाति सौं जीति न नीको ।।८६८।।

अजुक्ताजुक्त

अजुक्त मैं जुक्त बर्नियें, सो अजुक्ताजुक्त ।

केसव

।। सवैया ।।

पातक हानि पितानि सौं हारिबौ गर्व की सूलनि सौं डरियै जू ।
तालनि कौ बंधिबौ बधरौरि कौ नाथ के साथ चिता जरियै जू ।।
पत्र फटै जौ कटैरिन केसव कैसें हूं तीरथ जौ मरियै जू ।
गारी सदा नीकी लागै सगेन की दंड भलौ जो गया भरियै जू ।।८६९।।

अथ उत्तर

परसपर प्रति उत्तर होइ, सो उत्तर ।

केसव

।। सवैया ।।

वन जैयै चलौ कोऊ ठालो है केसव हौ तुम हो तौ अरि हौ ।
कछु पेलियै पेलन आवत आज ही भूल्यौ न भूल्यौ गरें परि हौ ।।
हितु है हिय मैं हितू नांहि कहूं हितु नांहि हियें तौ लला लरि हौ ।
हम सौं यह बूझियै ऐसी कहा जू कही तौ कही बकहा करि हौ ।।८७०।।

अथ आसिष

माता, पिता, गुरुदेव, मुनि इत्यादिक सुप पाइकैं कछू कहै, सो आसिष।

।। केसव कवित्त ।।

मलया मिलित वास कुंकुम कलित जुत,
जावक सुनप पद पूजित ललित कर।
जटित जराउ को जँजीर बीच नील मनि,
लागि रहे लोकगि के नैंन मांनौं मीन हर।
चिरु निरु सोहै रामचंद्र के चरण जुग,
केसौदास दीवौ करैं आसिप असेप नर।
हय पर गय पर पालिक सु पीठ पर,
अरि उर पर अवनीशनि के सीस पर ।।८७१।।

आनंदघन

रानी तेरो चिरुजीयो गोपाल ।।८७२।।

गुसाईं हरवंसजू

हित हरिवंस असीस देत मुप चिरु जिवौ भूतल या जोरी ।।८७३।।

मुकंद

[दोहा]

चिरंजीव जोरी सदा, जोबन रूप रसाल।
कुंज विहारनि लाडिली, कुंज विहारी लाल ।।८७४।।

---

*यहां गुसाईं हित हरवंशजी का आशीर्वाद प्राप्त किया है।

अथ संकर

वहुत अलंकार जहां मिलें सो संकर ।

सोमनाथ

॥ कवित्त ॥

सौंने सो सरीर ता पें आसमानी रंग चीर,
औरें ओप कीनी रवि रतन तरौंना द्वै ।
सोमनाथ कहैं इंदिरा-सी जग-मगै बाल,
गाढे कुच ठाढ़े मनौं ईस जुग मौंन द्वै ॥
कारी घुघरारी मंद पवन झकोर लागें,
फरहरें अलक कपोलनि के कौंना द्वै ।
सो छवि अमंद मनौं पान सुधा बुंद करि,
इंदु पर षेलत फनिदनि के छौंना द्वै ॥८७५॥

इहां उपमा रूपक उत्प्रेक्षा वृत्यानुप्रास ए मिलि कैं संकर हैं ।*

॥ सवैया ॥

निंदत हे सु तौ वंदत हैं प्रतिकूल करें अनकूल की वातें ।
जाहि जु हारि तौ हौं घर जाइ सु आइ कैं पाइ परै तजि घातें ।
दुष्प अनेकहु तें पहलें अव हैं अति आनंद गोविंद यातें ।
रीति सवै सुधरी है हमारी पियारी विहारी तिहारी कृपा तें ॥८७६॥

इहां पर्याय अरु हेतु ये दोऊ मिलि कैं संकर हैं ।

---

*अलवर-प्रति में यहीं समाप्त हो गया है और अंत में लिखा है—
ऐसें और हू ठौर जथासंभव जान लीजे ।
इति श्री अलंकार संपूर्णम् । शुभमस्तु ॥ दीर्घायुभव :। शुभं भवतु ।
हा० पुस्तकशाला सरकार अलवर ।

॥ छप्पय ॥

सदाचार के सदन भगति दसधा के मंडन,
संप्रदाय के रत्न तुलित मनु सनक सनंदन,
प्रगट कृपा के रूप सरस विद्या के सागर,
इन गुन तें करनाम सुजस सब जगत उजागर,
प्रनतपाल अरविंद पद आनंद कंद गुविंद भनि ।
श्री सर्वेश्वर प्रफुलित वदन रसिक अनंन्यनि मुकटमनि ॥८७७॥

इहां [र]त्नावली, उत्प्रेक्षा, उद्दात ए मिलि कैं संकर हैं ।

॥ दोहा ॥

रच्यौ गुविंदानंद घन, रसिक गुविंद विचारि ।
भूल चूक कछु होइ तौ, लीजौ सुकवि सुधारि ॥८७८॥

इति श्री मद्वृंदावन चंद्रवर चरणारविंद मकरंद पानानंदित अलि रसिक गुविंद कविराज विरचितं श्री गोविंदानंदघन गुण अलंकार निरूपणं नाम चतुर्थ प्रबंधः ॥४॥ शुभंमस्तु ॥

गन नाम	स्वामी	फल	जन्म तिथि	जन्म नक्षत्र	जन्म वार	कुल	वर्ण	गन-देस	जन्म-पुरी	गन-वास
मगन	भूमि	लक्ष्मी प्राप्ति	१०	रोहिनी	शनि	शूद्र	मिश्रित	जालंधर	आकासपुरी	शैलाधि परवत
यगन	जल	पुत्र प्राप्ति	१२	ज्येष्ठा	सोम	वैश्य	कृष्ण	कौशल	विपुलावती	वंश कैवर्त्त परवत
रगन	अग्नि	विरोध	६	अश्विनी	रवि	छत्री	रक्त	महेंद्र	मकरंदपुरी	मलयगिरि
सगन	पवन	देसाटन	६	पूर्वा भाद्र पद	बुद्ध	वैश्य	नील	विडंबर	कंकेरपुरी	सेतुबंध परवत
तगन	आकास	धन नास	३	रेवती	मंगल	शेष	धूम्र	कुंतल	चंपावती	कर्णगिरि
जगन	सूरज	व्याधि	५	श्रवन	शुक्र	ब्रह्म	रक्त	प्रवल	विचित्रावती	उदयाचल
भगन	चंद्रमा	जस	१३	रेवती	गुरु	देव	स्वेत	शुक्ल	प्रभावती	विभारगिरि
नगन	नाग तथा स्वर्ग	आयु	१५	अनुराधा	बुध	छित्री	कनक बर्ण	क्रौंच	कांची	चंद्र परवत

कवि-नामानुक्रमणिका

(निरन्तर)

क्रमांक	कवि-नाम	पृष्ठांक
		151, 152, 154, 156, 157, 159, 161, 167, 168, 169, 175, 183, 185, 188, 190, 193, 202, 203, 221, 224, 225, 229, 252, 259, 268, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 287, 298, 315, 317, 336, 344, 348, 354, 355, 356, 358, 361, 365, 370, 379, 381, 386, 389, 391, 394, 396, 406, 434, 437, 438, 439, 441, 448, 453, 455, 458, 460, 462, 463, 464, 465, 467
15.	गंग	131
16.	गदाधरजू	359
17.	गिरधर	223, 344, 345
18.	गोविन्द/गुविन्द कवि	6, 7, 10, 13, 15, 16, 17, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 27, 32, 33, 34, 36, 38, 39, 41, 44, 45, 48, 49, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 120, 121, 122, 123, 124,

(निरन्तर)

(निरन्तर)

(निरन्तर)

(निरन्तर)

